मोक्ष का मार्ग

संत थियोफान एकांतवासी

विषय-सूची:

परिचय 1

के माध्यम से ईसाई जीवन की शुरुआत पर पवित्र बपतिस्मा 3

हमारे भीतर ईसाई जीवन कैसे आरंभ होता है? 3

बपतिस्मा के संस्कार द्वारा ईसाई जीवन कैसे आरंभ होता है? 7

पश्चाताप के माध्यम से ईसाई जीवन की शुरुआत 27

पश्चाताप की संस्कार में ईसाई जीवन कैसे शुरू होता है? 27

पापी की दशा 28

ईश्वर की कृपा का कार्य 30

पापी का पाप की निद्रा से जागना 31

पापियों को उनकी पापी निद्रा से जगाने में ईश्वर की अनुग्रह की असाधारण क्रियाएँ 32

प्रेरक अनुग्रह का वरदान प्रदान करने का सामान्य तरीका 39

पाप को त्यागने और स्वयं को ईश्वर की प्रसन्नता के लिए समर्पित करने के संकल्प तक की उन्नति 52

पाप त्यागने के संकल्प की ओर आरोहण 52

ईश्वर को समर्पित करने के संकल्प का प्रभात 58

पश्चातापी को पाप-क्षमा संस्कार में पूर्ण क्षमा प्रदान की जाती है 62

पश्चातापी पवित्र सहभाग के संस्कार के पास जाता है 65

ईसाई जीवन हमारे भीतर कैसे साकार होता है, परिपक्व होता है और मजबूत होता है 68

ईसाई जीवन हमारे भीतर कैसे आकार लेता है, परिपक्व होता है और मजबूत होता है? 68

ईश्वर के प्रति उत्साह की भावना को बनाए रखने पर 79

भीतर बने रहना 80

दूसरी दुनिया का एक दृष्टिकोण 82

उन भावनाओं में दृढ़ रहना जिन्होंने संकल्प तक पहुँचाया है 84

व्यक्ति की आध्यात्मिक और शारीरिक शक्तियों को मजबूत करने में योगदान देने वाले अभ्यासों के लिए एक मार्गदर्शिका 87

ईसाई जीवन की भावना के अनुसार आत्मा की शक्तियों के निर्माण में योगदान देने वाले अभ्यास 91

नए जीवन की आत्मा के अनुसार शरीर का संचालन 97

नए जीवन की आत्मा के अनुरूप बाह्य जीवन का क्रम 99

लगातार उपवास की ओर 103

वासनाओं के विरुद्ध संघर्ष के नियम, या आत्म-प्रतिरोध के सिद्धांत 105

ईश्वर के साथ जीवंत संचार की ओर प्रथम कदम 118

ईश्वर के साथ जीवंत संयोग मौन की उस अवस्था में होता है जो निर्लिप्तता की ओर ले जाती है 122

परिचय

'ईसाई नैतिकता की रूपरेखा' उन भावनाओं और प्रवृत्तियों को निर्धारित करती है जो हमारे लिए अनिवार्य हैं, लेकिन यह हमारे उद्धार को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक सभी कुछ नहीं है। हमारा मुख्य कार्य मसीह की आत्मा में एक सच्चा जीवन जीना है। लेकिन यदि कोई केवल इस पर थोड़ी सी भी छुअन करता है, तो कितनी ही उलझनें प्रकट होंगी, और इसलिए कितनी मार्गदर्शन की आवश्यकता होगी—और वह भी लगभग हर मोड़ पर!

यह सच है कि मनुष्य का अंतिम लक्ष्य वहाँ बताया गया है—ईश्वर के साथ एकता—और इसका मार्ग भी बताया गया

है: यह ईश्वर की कृपा की मदद से आज्ञाओं के प्रति आज्ञाकारिता के साथ जुड़ा विश्वास है। कोई बस इतना कह सकता है: यह रास्ता है! चलो!

यह कहना आसान है: 'रास्ता यही है, जाओ!' लेकिन यह कैसे किया जाए? ज़्यादातर मामलों में, जाने की इच्छा ही नहीं होती। आत्मा, किसी वासना से बहक कर, हर तरह के दबाव और हर पुकार को जिद पर अड़कर ठुकरा देती है; वह अपनी दृष्टि ईश्वर से हटा लेती है और उन्हें देखने से इनकार कर देती है। मसीह का विधान उसे पसंद नहीं है; वह इसके बारे में सुनने का भी इच्छुक नहीं है: आत्मा, जैसा कि कहा जाता है, सही मानसिक स्थिति में नहीं है। प्रश्न यह है, तो फिर हम उस बिंदु तक कैसे पहुँच सकते हैं जहाँ मसीह के मार्ग द्वारा परमेश्वर के पास जाने की इच्छा जन्म लेती है; हम यह कैसे सुनिश्चित कर सकते हैं कि यह व्यवस्था हृदय पर अंकित हो जाए और कोई व्यक्ति, इस व्यवस्था के अनुसार कार्य करते हुए, अपनी इच्छा से, बिना किसी जबरदस्ती के, ऐसा करे, ताकि यह व्यवस्था उस पर बोझ न बने, बल्कि उससे भीतर से ही प्रवाहित हो?

लेकिन क्या कोई ईश्वर की ओर मुड़ जाए, उनका विधान प्रेम करने लगे; क्या ईश्वर की ओर की यह यात्रा, मसीह के विधान के मार्ग पर चलना, केवल इसलिए आवश्यक और सफल होना तय है क्योंकि हमने इसकी इच्छा की है? नहीं। इच्छा के अलावा, किसी के पास कार्य करने की शक्ति और कौशल भी होना चाहिए: सक्रिय बुद्धिमत्ता की आवश्यकता है। जो कोई भी ईश्वर को प्रसन्न करने के सच्चे मार्ग पर निकलता है, या ईश्वर की कृपा से, मसीह के पूर्वनिर्धारित कानून के मार्ग पर ईश्वर की ओर बढ़ने का प्रयास शुरू करता है, उसे अनिवार्य रूप से एक चौराहे पर भटकने, रास्ता चूकने और नष्ट हो जाने का खतरा होगा, जबकि वह खुद को बचा हुआ समझता है। ये चौराहे, परिवर्तित लोगों में भी बनी रहने वाली पापी प्रवृत्तियों और व्यक्ति की शक्तियों के विक्षिप्त होने के कारण अपरिहार्य हैं, जो इस अवस्था में भी, चीजों को विकृत रूप में प्रस्तुत करके एक व्यक्ति को धोखा देने और नष्ट करने में सक्षम हैं। इसके अतिरिक्त शैतान की चापलूसी भी है, जो अपने शिकारों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं है; और जब उसकी दुनिया से कोई मसीह के प्रकाश की ओर बढ़ता है, तो वह उसका पीछा करता है और उसे फिर से पकड़ने के लिए हर तरह के जाल बिछाता है—और अक्सर इसमें सफल भी हो जाता है। परिणामस्वरूप, उन लोगों के लिए भी जो पहले से ही प्रभु की ओर इंगित मार्ग का अनुसरण करने की इच्छा रखते हैं, इस मार्ग पर सभी संभावित भटकावों को इंगित करना अभी भी आवश्यक है, ताकि यात्री को पहले से चेतावनी मिल सके, वह आगे आने वाले खतरों को देख सके, और यह जान सके कि उनसे कैसे बचना है।

मोक्ष के मार्ग पर सभी के लिए ये अपरिहार्य बाधाएँ, ईसाई जीवन के लिए विशिष्ट मार्गदर्शक सिद्धांतों की आवश्यकता को आवश्यक बनाती हैं, जो यह परिभाषित करें: ईश्वर के साथ एकता की उद्धारकारी इच्छा और उसमें बने रहने का उत्साह कैसे प्राप्त करें, और इस मार्ग के हर चरण पर आने वाले सभी चौराहों के बीच ईश्वर की ओर सुरक्षित रूप से कैसे बढ़ें — दूसरे शब्दों में: एक ईसाई जीवन कैसे शुरू किया जाए और, शुरू करने के बाद, उसमें कैसे दृढ़ रहा जाए। यह मार्गदर्शन एक व्यक्ति को ईश्वर के बाहर से लेकर, उसे उसकी ओर मोड़कर, फिर उसे उसकी उपस्थिति में लाना चाहिए; इसमें ईसाई जीवन को उसके विभिन्न रूपों में, व्यवहार में, शुरू से अंत तक, यानी यह कि यह कैसे संकल्पित होता है, विकसित होता है, परिपक्व होता है और पूर्णता को प्राप्त करता है, उसका अनुसरण करना चाहिए; या—जो कि एक ही बात है—इसमें प्रत्येक ईसाई के सक्रिय जीवन का इतिहास प्रस्तुत करना चाहिए, यह दिखाते हुए कि प्रत्येक मामले में उसे अपनी बुलावा में दृढ़ रहने के लिए कैसे कार्य करना चाहिए।

ईसाई जीवन की शुरुआत और विकास प्राकृतिक जीवन से मौलिक रूप से भिन्न हैं। यह ईसाई जीवन की विशिष्ट प्रकृति और हमारे मानवीय स्वभाव के साथ इसके संबंध से उत्पन्न होता है। कोई व्यक्ति ईसाई के रूप में पैदा नहीं होता, बल्कि जन्म के बाद वह ईसाई बनता है। मसीह का बीज एक ऐसे हृदय की मिट्टी पर गिरता है जो पहले से ही धड़क रहा है। लेकिन जैसे एक स्वाभाविक रूप से जन्मा हुआ व्यक्ति दोषपूर्ण होता है और मसीहीपन की मांगों का विरोधी होता है—जबकि, उदाहरण के लिए, एक पौधे में जीवन की शुरुआत बीज के अंकुरण में निहित होती है, मानो सुप्त शक्तियों का जागना—वैसे ही एक व्यक्ति में सच्चे मसीही जीवन की शुरुआत एक निश्चित पुनर्निर्माण, नई शक्ति और नए जीवन के प्रदान में निहित होती है। इसके अलावा, मान लीजिए कि ईसाई धर्म को एक कानून के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है, यानी ईसाई जीवन जीने का संकल्प लिया जाता है: जीवन का यह बीज (यह संकल्प) एक व्यक्ति के भीतर इसके अनुकूल तत्वों से घिरा नहीं होता है; और फिर भी पूरा व्यक्ति—शरीर और आत्मा—इस नए जीवन के लिए अकुशल बना रहता है, मसीह के जुए के प्रति अडिग रहता है; इसलिए, इसी क्षण से, एक व्यक्ति का कठिन श्रम शुरू होता है—अपने पूरे अस्तित्व और सभी शक्तियों को मसीही तरीके से ढालने के लिए। यही कारण है कि, जहाँ उदाहरण के लिए, पौधों में वृद्धि ऊर्जा का एक क्रमिक, आसान और सहज विकास है, वहीं एक ईसाई के लिए यह स्वयं के साथ एक कठिन संघर्ष है—तनावपूर्ण और दुःखद—और मनुष्य को अपनी ऊर्जा उस दिशा में लगाना पड़ता है, जिसकी ओर वह स्वाभाविक रूप से प्रवृत्त नहीं है: एक योद्धा की तरह, उसे आत्म-

अनुशासन और आत्म-प्रतिरोध की द्विधारी तलवार का उपयोग करते हुए, लड़ाई के माध्यम से अपने दुश्मनों से हर एक इंच जमीन—यहाँ तक कि अपनी ही—छीननी पड़ती है। अंत में, लंबे परिश्रम और प्रयास के बाद, ईसाई आरंभ विजयी साबित होते हैं; बिना किसी विरोध के शासन करना, मानव स्वभाव के पूरे ताने-बाने में व्याप्त होना, उससे उन मांगों और आकांक्षाओं को बाहर निकालना जो उनसे शत्रुता रखती हैं, और उसे निर्लिप्तता और पवित्रता की अवस्था में लाना, उसे हृदय से शुद्ध लोगों के आनंद में भागीदार बनाना—अपने भीतर ईश्वर को देखना, उनके साथ अत्यंत सच्ची सहभागिता में।

हमारे भीतर ईसाई जीवन की ऐसी ही स्थिति है। इसके तीन चरण हैं, जिन्हें उनकी प्रकृति के अनुसार इस प्रकार नाम दिया जा सकता है: पहला — ईश्वर की ओर रूपांतरण; दूसरा — शुद्धिकरण या आत्म-सुधार; तीसरा — पवित्रता। पहले चरण में, एक व्यक्ति अंधकार से प्रकाश की ओर, शैतान के राज्य से ईश्वर की ओर मुड़ता है; दूसरे में, वह अपने हृदय के मंदिर को सभी अशुद्धियों से शुद्ध करता है, ताकि आने वाले प्रभु मसीह को ग्रहण कर सके; तीसरे में, प्रभु आते हैं, हृदय में वास करते हैं और उसके साथ प्रभु भोज में भाग लेते हैं। ईश्वर के साथ आनंदमय मिलन की यह अवस्था सभी परिश्रमों और प्रयासों का लक्ष्य है!

इन सभी बातों को स्पष्ट करना और नियमों द्वारा परिभाषित करना ही *मोक्ष का मार्ग* दिखाना है / इस मामले में एक पूर्ण मार्गदर्शक पाप के चौराहे पर खड़े व्यक्ति को लेता है, उन्हें शुद्धिकरण के अग्निमय पथ पर ले चलता है, और उन्हें मसीह की परिपूर्णता के मापदंड के अनुसार, उनके लिए संभव पूर्णता की डिग्री तक उठाता है। इसके अलावा, इसे यह दिखाना चाहिए:

1) मसीही जीवन हमारे भीतर कैसे आरंभ होता है;
2) यह कैसे परिपूर्ण होता है—परिपक्व और मजबूत होता है; और
3) इसकी पूर्ण परिपूर्णता में यह कैसा होता है।

के माध्यम से ईसाई जीवन की शुरुआत पर पवित्र बपतिस्मा

अपने पालन-पोषण के दौरान इस अनुग्रह को कैसे बनाए रखें, इस पर मार्गदर्शन के साथ

हमारे भीतर ईसाई जीवन कैसे आरंभ होता है?

हमें स्वयं यह समझना आवश्यक है कि एक सच्चा ईसाई जीवन कब और कैसे आरंभ होता है, ताकि हम देख सकें कि इस जीवन की शुरुआत हमारे भीतर हुई है या नहीं, और यदि नहीं, तो हमें यह जानना चाहिए कि इसे कैसे आरंभ किया जाए, जहाँ तक यह हम पर निर्भर है। यदि कोई स्वयं को ईसाई कहता है और मसीह की कलीसिया का सदस्य है, तो यह अभी मसीह में सच्चे जीवन का निश्चित संकेत नहीं है। *जो मुझ से 'हे प्रभु, हे प्रभु' कहते हैं, वे सब स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं करेंगे...* (मत्ती 7:21)। और *इज़राइल के सब वंशज सचमुच इज़राइली नहीं हैं* (रोमियों 9:6)। ईसाइयों में गिने जाने के बावजूद ईसाई न होना भी संभव है। यह हर कोई जानता है।

हमारे जीवन के दौरान एक क्षण आता है—और वह भी एक बहुत ही विशिष्ट क्षण—जो बहुत स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आता है, जब कोई व्यक्ति ईसाई जीवन जीना शुरू करता है। यह वह क्षण है जब उस व्यक्ति में ईसाई जीवन की विशिष्ट विशेषताएँ प्रकट होने लगती हैं। ईसाई जीवन में उत्साह और हमारे प्रभु यीशु मसीह में विश्वास के द्वारा, परमेश्वर की कृपा से, और उनके पवित्र नाम की महिमा के लिए उनकी पवित्र इच्छा को पूरा करके, परमेश्वर के साथ सक्रिय संगति में बने रहने की शक्ति होती है। ईसाई जीवन का सार हमारे प्रभु यीशु मसीह के माध्यम से परमेश्वर के साथ एकता में निहित है—एक ऐसी एकता जो, शुरुआत में, आमतौर पर न केवल दूसरों से बल्कि स्वयं से भी छिपी रहती है। इस संगति का दृश्यमान, या आंतरिक रूप से महसूस किया जाने वाला, प्रमाण सक्रिय उत्साह का जोश है, जो एक ईसाई के रूप में विशेष रूप से परमेश्वर को प्रसन्न करने के लिए समर्पित है, और इसके विपरीत सभी चीजों से पूर्ण आत्म-त्याग और घृणा के साथ है। इस प्रकार, जब उत्साह का यह जोश शुरू होता है, तो ईसाई जीवन गति में आ जाता है; और जो कोई भी इससे लगातार प्रेरित होता है, वह एक ईसाई जीवन जीता है।

हमें इस विशिष्ट लक्षण पर थोड़ी और देर तक विचार करना चाहिए।

मसीहा कहते हैं, *'मैं पृथ्वी पर आग लाने आया हूँ, और काश कि यह पहले से ही जल उठी होती!'* (लूका 12:49)। वह मसीही जीवन के बारे में बात कर रहे हैं, और वह यह इसलिए कहते हैं क्योंकि इसका दृश्यमान साक्ष्य परमेश्वर को प्रसन्न करने का जोश है, जो परमेश्वर के आत्मा द्वारा हृदय में प्रज्वलित किया जाता है, जो आग के समान है; क्योंकि जैसे आग उस पदार्थ को भस्म कर देती है जिसमें वह प्रवेश करती है, वैसे ही मसीह में जीवन का जोश उस आत्मा को भस्म कर देता है जिसने इसे प्राप्त किया है। और जैसे आग लगने पर लपटें पूरी इमारत को घेर लेती हैं, वैसे ही उत्साह की आग, एक बार जल उठने पर, एक व्यक्ति के पूरे अस्तित्व को आलिंगन कर लेती है और भर देती है।

अन्यत्र, प्रभु कहते हैं: *'हर एक पर आग से नमक डाला जाएगा...'* (मरकुस 9:49)। और यह पवित्र आत्मा की आग का संदर्भ है, जो उत्साह के माध्यम से, हमारे पूरे अस्तित्व में व्याप्त हो जाती है। जिस प्रकार नमक, एक नश्वर पदार्थ में घुसकर, उसे सड़ने से बचाता है, उसी प्रकार उत्साह की आत्मा, हमारे पूरे अस्तित्व में व्याप्त होकर, पाप को—जो आत्मा और शरीर दोनों में हमारे स्वभाव को भ्रष्ट करता है—उसके सबसे छोटे-छोटे छिद्रों और भंडारों से भी बाहर निकाल देती है, और इस प्रकार हमें नैतिक भ्रष्टता और पतन से बचाती है।

प्रेरित पौलुस आज्ञा देते हैं: *'आत्मा को न बुझाओ'* (1 थिस्स. 5:19), *और 'भलाई करने से थके न हो'; उत्साह से जलने* (रोमियों 12:11)—वह सभी मसीहियों से यह आज्ञा देते हैं, ताकि वे याद रखें कि आत्मा का जलना, या अथक उत्साह, मसीही जीवन का एक अनिवार्य गुण है। अन्यत्र, वह अपने विषय में कहते हैं: *'w , जो पीछे हैं उसे भूलकर और जो आगे है उसकी ओर बढ़ते हुए, मैं ईसा मसीह में परमेश्वर की स्वर्गीय बुलावा का इनाम पाने के लिए लक्ष्य की ओर दौड़ता रहता हूँ* (फिलि. 3:13-14); और वह दूसरों को प्रोत्साहित करते हैं: *'इस प्रकार दौड़ो कि तुम जीतो* (1 कुरि. 9:24)। इस प्रकार, ईसाई जीवन में, उत्साह की प्रबलता के परिणामस्वरूप, एक निश्चित आध्यात्मिक तत्परता और जोश होता है, जिसके साथ कोई व्यक्ति परमेश्वर को प्रसन्न करने वाले कार्यों को हाथ में लेता है, स्वयं को नकारते हुए और स्वयं को बख्शे बिना परमेश्वर को स्वेच्छा से हर प्रकार की मेहनत अर्पित करता है।

इस समझ के आधार पर, यह निष्कर्ष निकालना आसान है कि चर्च के विधानों का ठंडे दिल से पालन, एक गणना करने वाले मन द्वारा निर्धारित कार्यों में नियमितता, और आचरण में परिश्रम, शिष्टाचार और ईमानदारी, यह दर्शाने वाले निर्णायक संकेत नहीं हैं कि हमारे भीतर एक सच्चा ईसाई जीवन कार्य कर रहा है। यह सब अच्छा है, लेकिन जहाँ तक यह मसीह यीशु में जीवन की आत्मा को नहीं समाहित करता, यह परमेश्वर के सामने कोई मूल्य नहीं रखता। इस प्रकार के कर्म, मानो, निर्जीव मूर्तियाँ हैं। एक अच्छी घड़ी सुचारू रूप से चलती है; लेकिन कौन कहेगा कि उसमें जीवन है?! यहाँ भी ऐसा ही है: अक्सर *उन्हें केवल 'जीवित' कहा जाता है,* जबकि वास्तव में *वे मृतक* हैं (प्रकाशितवाक्य 3:1)। व्यवहार की यह बाहरी उचितता सबसे अधिक संभावना रखती है कि वह व्यक्ति को धोखे में डाल दे। इसका वास्तविक महत्व किसी के आंतरिक स्वभाव पर निर्भर करता है, जिसमें धार्मिक कार्य करते हुए भी आवश्यक सत्य से महत्वपूर्ण विचलन संभव हैं। जैसे कोई व्यक्ति बाहरी रूप से पापपूर्ण कर्मों से परहेज़ कर सकता है, जबकि अपने दिल में उन के प्रति लगाव या आनंद रखता है, वैसे ही, बाहरी रूप से धार्मिक कर्म करते हुए भी, किसी के मन में उन के प्रति सच्ची भावना का अभाव हो सकता है। केवल सच्चा उत्साह ही पूर्ण और शुद्ध रूप से अच्छाई करने का प्रयास करता है, और पाप को उसके सबसे छोटे से रूप में भी पीछा करता है। यह पहले वाले का अनाज की रोटी की तरह खोज करता है, जबकि दूसरे वाले को एक घातक दुश्मन की तरह मानता है। एक दुश्मन अपने शत्रु से न केवल स्वयं नफरत करता है, बल्कि वह उसके रिश्तेदारों और परिचितों से, यहाँ तक कि उसकी संपत्ति और उसके पसंदीदा रंग से भी नफरत करता है—संक्षेप में, हर उस चीज़ से जो किसी भी तरह से उसे उसके दुश्मन की याद दिलाती है। परमेश्वर को प्रसन्न करने के लिए सच्चा उत्साह भी ऐसा ही होता है: यह पाप का उसके सबसे छोटे से संकेत या इशारे पर भी पीछा करता है; क्योंकि यह पूर्ण पवित्रता के लिए उत्साही होता है। यदि यह न होता, तो हृदय में कितनी अशुद्धता जड़ जमा सकती थी!

और जब ईश्वर की सेवा के लिए ईसाई सेवाभाव में प्रबल उत्साह नहीं होगा, तो कोई सफलता कैसे प्राप्त हो सकती है? जो कुछ भी प्रयास की मांग नहीं करता, वह तो पूरा हो ही जाएगा; लेकिन जैसे ही कोई कठोर परिश्रम या आत्म-त्याग की मांग होती है, आत्म-नियंत्रण की अक्षमता के कारण तुरंत ही इनकार हो जाता है। क्योंकि तब स्वयं को एक अच्छे कार्य के लिए प्रेरित करने हेतु भरोसा करने के लिए कुछ भी नहीं रहेगा; आत्म-दया सभी समर्थन को कमजोर कर देगी। हालाँकि, यदि उल्लेखित उद्देश्य के अलावा कोई अन्य उद्देश्य मिश्रित हो जाता है, तो यह एक अच्छे कार्य को भी बुरे कार्य में बदल देगा। मूसा द्वारा भेजे गए जासूस डर गए थे क्योंकि वे स्वयं पर तरस खाते थे। शहीद स्वेच्छा से अपनी मृत्यु को प्राप्त हुए क्योंकि वे एक आंतरिक अग्नि से दहल रहे थे। एक सच्चा उत्साही केवल कानून का पालन नहीं करता, बल्कि वह आत्मा पर गुप्त रूप से

अंकित हर अच्छी प्रेरणा और परामर्श पर भी ध्यान देता है; वह केवल मन में आने वाली बात पर ही अमल नहीं करता, बल्कि भलाई के लिए रचनात्मक होता है, और एक ही, स्थायी, सच्चे और शाश्वत भले के प्रति पूरी तरह से समर्पित रहता है। संत जॉन क्राइसोस्टोम कहते हैं, "हर जगह, हमें उत्साह और आत्मा के महान जोश की आवश्यकता है, जो स्वयं मृत्यु के खिलाफ हथियार उठाने के लिए तैयार हो; क्योंकि अन्यथा राज्य प्राप्त करना असंभव है" (प्रेरितों के काम पर उपदेश 31)।

भक्ति और ईश्वर के साथ संचार का मार्ग एक श्रमसाध्य और दर्दनाक मार्ग है, विशेष रूप से शुरुआती चरणों में। इन सभी कष्टों को उठाने के लिए कोई व्यक्ति शक्ति कहाँ से प्राप्त कर सकता है? ईश्वर की कृपा की मदद से—उत्कट उत्साह में। एक व्यापारी, एक सैनिक, एक न्यायाधीश, एक विद्वान सभी ऐसे कर्तव्य निभाते हैं जो चिंताओं और कड़ी मेहनत से भरे होते हैं। वे अपने कार्यों में खुद को कैसे बनाए रखते हैं? — अपने काम के प्रति उत्साह और प्रेम के द्वारा। धर्मपरायणता के मार्ग पर खुद को बनाए रखने का कोई और तरीका नहीं है। इसके बिना, हम ईश्वर की सेवा में थकान, नीरसता, उबाऊपन और उदासीनता पाएंगे। और धीमी गति वाला जीव चलता है, लेकिन दर्द के साथ, जबकि तेज हिरण या चपल गिलहरी के लिए, गति और यात्रा एक आनंद है। ईश्वर की उत्साही सेवा उसकी ओर एक आनंदमय, उत्साहवर्धक यात्रा है। इसके बिना, पूरा प्रयास बर्बाद हो सकता है। हमें सब कुछ ईश्वर की महिमा के लिए करना चाहिए, हमारे भीतर बसने वाले पाप के विरोध में; और इसके बिना, हम सब कुछ केवल आदत से, शिष्टाचार की भावना से कर देंगे, क्योंकि हमेशा से ऐसा ही होता आया है और दूसरे भी ऐसा ही करते हैं। हमें **सब कुछ** करना चाहिए; अन्यथा, हम कुछ चीजों को करेंगे और दूसरों की उपेक्षा करेंगे, और इसके अलावा, हमारे द्वारा छोड़ी गई चीजों के लिए कोई पछतावा या जागरूकता भी नहीं होगी। हमें हर काम ध्यान और सावधानी से करना चाहिए, जैसे कि **यह सबसे महत्वपूर्ण कार्य हो**; अन्यथा, हम चीजों को लापरवाही से करेंगे।

इसलिए यह स्पष्ट है कि उत्साह के बिना, एक ईसाई एक कमजोर ईसाई है—सुस्त, ढीला, निर्जीव, न तो गर्म और न ही ठंडा—और ऐसा जीवन कोई जीवन ही नहीं है। यह जानते हुए, आइए हम स्वयं को सत्कर्मों के लिए सच्चे उत्साही साबित करने का प्रयास करें, ताकि हम वास्तव में परमेश्वर को प्रसन्न कर सकें, जिसमें कोई मलिनता या दुराचार, या इस तरह की कोई भी चीज़ न हो।

इस प्रकार, ईसाई जीवन का सच्चा लक्षण परमेश्वर को प्रसन्न करने के लिए सक्रिय उत्साह की आग है। अब प्रश्न उठता है: यह आग कैसे प्रज्वलित होती है? इसके प्रज्वलक कौन हैं?

इस प्रकार का उत्साह अनुग्रह के कार्य से उत्पन्न होता है, फिर भी यह हमारी स्वतंत्र इच्छा की भागीदारी के बिना नहीं होता । ईसाई जीवन एक प्राकृतिक जीवन नहीं है। इसी प्रकार इसकी शुरुआत, या इसका पहला जागरण भी होना चाहिए। जैसे ही नमी और गर्मी इसके भीतर छिपे अंकुर में प्रवेश करती है, वैसे ही एक बीज में पौधे का जीवन जागृत हो जाता है, और उनके माध्यम से—जीवन की सर्व-पुनर्स्थापना करने वाली शक्ति—उसी प्रकार दिव्य जीवन हमारे भीतर जागृत होता है जब परमेश्वर का आत्मा हृदय में प्रवेश करता है और वहाँ आत्मा के अनुसार जीवन की नींव रखता है, परमेश्वर की प्रतिमा के धुंधले और टूटे हुए रूपों को शुद्ध करते हुए और एक साथ लाते हुए। इच्छा और स्वतंत्र खोज जागृत होती है (एक बाहरी प्रभाव से); फिर अनुग्रह अवतरित होता है (संस्कारों के माध्यम से) और, स्वतंत्रता के साथ मिलकर, एक शक्तिशाली उत्साह को जन्म देता है। और कोई यह न सोचे कि वह अपने दम पर ऐसी जीवन-दायक शक्ति ला सकता है: इसके लिए प्रार्थना करनी चाहिए और इसे प्राप्त करने के लिए तैयार रहना चाहिए। शक्ति के साथ उत्साह की आग प्रभु की कृपा है। परमेश्वर का आत्मा, हृदय में उतरकर, उसमें केवल एक भस्म कर देने वाले उत्साह से ही नहीं, बल्कि एक सर्व-व्यापी उत्साह से काम करना शुरू करता है।

कुछ लोगों के मन में यह विचार आता है: यह अनुग्रह का कार्य आवश्यक क्यों है? क्या हम स्वयं अच्छे कर्म नहीं कर सकते? हमने यहाँ यह या वह अच्छा कार्य किया है। हम जीते रहेंगे और कुछ और करेंगे। शायद ही कोई ऐसा होगा जिसने इस प्रश्न पर विचार करने के लिए ठहराव न किया हो। अन्य कहते हैं कि हम अपनी इच्छा से कुछ भी अच्छा नहीं कर सकते। लेकिन यहाँ मामला व्यक्तिगत अच्छे कर्मों का नहीं है, बल्कि किसी के पूरे जीवन के पुनर्जन्म का है, एक नए जीवन का है, संपूर्ण जीवन का है—एक ऐसा जीवन जो मोक्ष की ओर ले जाता है। कभी-कभी, कुछ करना, यहाँ तक कि कुछ बहुत अच्छा करना भी, मुश्किल नहीं होता, ठीक वैसे ही जैसे अन्यजातियों ने किया। लेकिन कोई भी जानबूझकर सदाचार का अभ्यास करने का संकल्प ले, परमेश्वर के वचन के अनुसार उसका क्रम स्थापित करे—एक महीने या साल के लिए नहीं, बल्कि जीवन भर के लिए—और इस क्रम का दृढ़ता से पालन करने का संकल्प ले; और फिर, जब वे इसके प्रति वफादार रहे हों, तो वे अपनी ताकत का घमंड करें; लेकिन इसके बिना, क्या यह बेहतर नहीं होगा कि वे चुप रहें? अपने दम पर ईसाई जीवन को गढ़ने और व्यवस्थित करने के कितने प्रयास हुए हैं, और होते रहते हैं? और उन सभी का अंत, और होता भी रहेगा, कुछ भी नहीं में हुआ है। कोई व्यक्ति अपने नव-चुने हुए जीवन के तरीके पर थोड़ी देर तक कायम रहता है — और फिर उसे छोड़

देता है। और यह और कैसे हो सकता है? अपनी कोई शक्ति नहीं है। केवल परमेश्वर का अनंत सामर्थ्य ही हमें क्षणिक परिवर्तन की अनवरत लहरों के बीच हमारे संकल्प में दृढ़ता से बनाए रखने में सक्षम है। इसलिए, हमें इस सामर्थ्य से भरना चाहिए, इसे खोजना चाहिए और उचित क्रम में इसे प्राप्त करना चाहिए—और यह हमें ऊपर उठाएगा और इस वर्तमान युग के क्लेश से हमें मुक्ति देगा।

एक बार फिर अनुभव पर लौटें और विचार करें: आत्म-संतोष के ऐसे विचार कब उत्पन्न होते हैं? जब कोई व्यक्ति शांति की अवस्था में होता है, जब उसे कुछ भी परेशान नहीं करता, कुछ भी उसे लुभाता नहीं है या पाप की ओर आकर्षित नहीं करता, तो वह सबसे पवित्र और शुद्ध जीवन शैली के लिए तैयार होता है। लेकिन जैसे ही वासना या प्रलोभन की एक हलचल होती है—वे सभी व्रत कहाँ चले गए?! क्या कोई व्यभिचारी जीवन जीने वाला व्यक्ति अक्सर खुद से नहीं कहता: 'मैं अब ऐसा नहीं करूँगा'? लेकिन एक बार जब जुनून शांत हो जाता है, तो एक नई इच्छा उत्पन्न होती है, और वे खुद को फिर से पाप में पाते हैं। जब सब कुछ हमारी मर्जी के मुताबिक चल रहा हो, और हमारा अहंकार भी शांत रहे, तो अपमान सहने की बात करना तो बहुत अच्छी लगती है। ऐसे हालात में, दूसरों द्वारा अपमान सहने की भावना अजीब लग सकती है। लेकिन अगर हम खुद ऐसी ही किसी स्थिति में पड़ जाएँ, तो एक नज़र भी—एक शब्द तो दूर की बात है—हमें पागल कर देगी। इस प्रकार, अपने आत्मविश्वास में, हम इस बात का सपना देख सकते हैं कि हम दैवीय सहायता के बिना, अपने आप एक ईसाई जीवन जी सकते हैं, जब हमारी आत्मा में शांति हो। लेकिन जब हृदय की तह में बसा बुराई हवा में उड़ती धूल की तरह उड़ने लगता है, तो हर कोई अपने अनुभव से ही अपने अहंकार की निंदा को पाएगा। जब विचार पर विचार, इच्छा पर इच्छा—प्रत्येक पिछली से भी बदतर—आत्मा को कष्ट देना शुरू कर देती है, तो हर कोई खुद को भूल जाएगा और अनजाने में भविष्यवक्ता के साथ पुकार उठेगा: *'... जल मेरी आत्मा तक आ पहुँचे हैं। मैं गहरे कीचड़ में डूब गया हूँ* (भजन संहिता 68:2)। *हे प्रभु, मुझे बचा! हे प्रभु, शीघ्र कर!* (भजन संहिता 117:25)।

क्या अक्सर ऐसा नहीं होता कि कोई व्यक्ति आत्म-विश्वास से भरकर, अच्छाई पर दृढ़ रहने का सपना देखता है? लेकिन फिर किसी व्यक्ति या वस्तु की एक छवि मन में आती है, एक इच्छा जन्म लेती है, एक जुनून जागृत हो जाता है; वह व्यक्ति बहक जाता है और गिर जाता है। इसके बाद, जो कुछ बचता है वह केवल खुद को देखना और कहना है: 'यह कितना दयनीय है!' लेकिन फिर मनोरंजन का कोई अवसर आ जाता है, और वह फिर से खुद को खोने के लिए तैयार हो जाता है। इसके अलावा, यदि कोई उनका अपमान करता है, तो झगड़ा, एक-दूसरे पर दोष मढ़ना और निर्णय करना शुरू हो जाता है; यदि कोई अन्यायपूर्ण लेकिन लाभदायक सौदा सामने आता है, तो वे उस पर टूट पड़ते हैं: वे एक व्यक्ति को अपमानित करते हैं, दूसरे के साथ बाँटते हैं, तीसरे को बाहर कर देते हैं—और यह सब तब, जब वे ऊपर से किसी विशेष मदद के बिना, अपने दम पर धार्मिक रूप से आचरण करने की अपनी क्षमता का ढिंढोरा पीटते हैं। तो फिर, ताकत कहाँ है? — *'आत्मा तो इच्छुक है, पर शरीर दुर्बल है'* (मत्ती 26:41)। आप अच्छा जानते हैं और फिर भी बुरा करते हैं: *'क्योंकि मैं वह भलाई नहीं करता जो मैं चाहता हूँ, पर वह बुराई करता हूँ जो मैं नहीं करना चाहता—और मैं उसे ही करता रहता हूँ'* (रोमियों 7:21)। हम दासत्व में हैं: हे प्रभु, हमें छुड़ाओ!

हमारे विरुद्ध दुश्मन की पहली निंदाओं में से एक आत्मविश्वास का विचार है—यानी, यदि खुले तौर पर अस्वीकृति नहीं, तो अनुग्रह-भरी मदद की आवश्यकता की जागरूकता की कमी। दुश्मन ऐसा कहता प्रतीत होता है: 'वहाँ मत जाओ—प्रकाश की ओर, जहाँ वे तुम्हें कुछ नई शक्ति देना चाहते हैं! — तुम मेरे साथ जैसे हो वैसे ही ठीक हो।' और इस प्रकार एक व्यक्ति आत्मसंतोष के आगे झुक जाता है। इस बीच, दुश्मन—यहाँ वह एक पत्थर फेंकता है (परेशानियाँ), वहाँ वह किसी को फिसलन भरी ज़मीन पर ले जाता है (वासनाओं का आकर्षण), और कहीं और वह फूलों के भेष में छिपे जाल बोता है (एक उज्ज्वल और प्रसन्न वातावरण)। पीछे मुड़कर देखे बिना, एक व्यक्ति लगातार और आगे बढ़ने का प्रयास करता है, इस बात से अनजान कि वह लगातार और नीचे गिरता जा रहा है, जब तक कि अंत में वह बुराई की गहराइयों तक नहीं पहुँच जाता — नरक के द्वार तक। ऐसे में, क्या हमें उनके लिए भी पुकार नहीं लगानी चाहिए, जैसा हमने पहले आदम से किया था: 'हे मनुष्य, तुम कहाँ हो? तुम भटक कहाँ गए?' यही आह्वान अनुग्रह का कार्य है, जो पापी को स्वयं पर पहली, ईमानदार नज़र डालने के लिए विवश करता है।

तो, यदि आप एक ईसाई जीवन जीना शुरू करना चाहते हैं, तो अनुग्रह की खोज करें। वह क्षण जब अनुग्रह अवतरित होता है और आपकी इच्छा के साथ एक हो जाता है, वह ईसाई जीवन के जन्म का क्षण होगा—मजबूत, दृढ़ और फलदायी।

जीवन देने वाले अनुग्रह को कोई कहाँ पा सकता है, और उसे कैसे प्राप्त कर सकता है? — अनुग्रह की प्राप्ति और उसके द्वारा हमारे स्वभाव का पवित्रिकरण संस्कारों में होता है। यहाँ हम स्वयं को परमेश्वर की क्रिया के अधीन करते हैं, या अपने अयोग्य स्वभाव को परमेश्वर के समक्ष प्रस्तुत करते हैं — और वह, अपनी क्रिया के द्वारा, उसे बदल देते हैं। ईश्वर को

यह उचित लगा कि हमारे घमंडी मन को वश में करने के लिए, उन्होंने सच्चे जीवन की शुरुआत में ही अपनी शक्ति को साधारण भौतिक वस्तुओं के आवरण के नीचे छिपा दिया। हम यह नहीं समझ पाते कि यह कैसे होता है, लेकिन समस्त ख्रीस्तीय जगत का अनुभव इस बात की गवाही देता है कि यह अन्यथा नहीं हो सकता।

दो संस्कार हैं जो मुख्य रूप से ईसाई जीवन की शुरुआत से संबंधित हैं: **बपतिस्मा** और **प्रायश्चित**। अतः, एक सच्चे ईसाई जीवन की शुरुआत से संबंधित नियम, एक ओर, बपतिस्मा के इर्द-गिर्द और दूसरी ओर, प्रायश्चित के इर्द-गिर्द समूहित हैं।

बपतिस्मा के संस्कार द्वारा ईसाई जीवन कैसे आरंभ होता है?

बपतिस्मा ईसाई धर्म का पहला संस्कार है, जो ईसाई को अन्य संस्कारों के माध्यम से अनुग्रह के उपहारों में भाग लेने के योग्य बनाता है। इसके बिना कोई ईसाई जगत में प्रवेश नहीं कर सकता — अर्थात् चर्च का सदस्य नहीं बन सकता। शाश्वत बुद्धि ने पृथ्वी पर अपने लिए एक घर बनाया है: इस घर में प्रवेश का द्वार बपतिस्मा का संस्कार है। इस द्वार के माध्यम से, कोई न केवल ईश्वर के घर में प्रवेश करता है, बल्कि उसे इसके योग्य वस्त्र भी पहनाए जाते हैं; उसे एक नया नाम प्राप्त होता है और बपतिस्मा लेने वाले व्यक्ति के पूरे अस्तित्व पर एक चिह्न अंकित हो जाता है, जिसके द्वारा स्वर्गीय और सांसारिक दोनों प्राणी बाद में उन्हें पहचान और पहचान कर सकते हैं।

...'*जो कोई मसीह में है, वह एक नई सृष्टि है*,' प्रेरित सिखाते हैं (2 कुरिन्थियों 5:17)। बपतिस्मा के द्वारा ही एक मसीही यह नई सृष्टि बनता है। जो व्यक्ति बपतिस्मा के पात्र में प्रवेश करता है, वह उससे बाहर निकलने पर पूरी तरह से अलग व्यक्ति बन जाता है। जैसे प्रकाश का विरोध अंधकार से है, और जीवन का मृत्यु से, वैसे ही बपतिस्मा पाए हुए का विरोध अबपतिस्मा वालों से है। अधर्म में गर्भ धारण किया और पाप में जन्म लिया, बपतिस्मा से पहले एक व्यक्ति अपने भीतर पाप का पूरा विष, और उसके परिणामों का पूरा बोझ लिए रहता है। वे परमेश्वर की अप्रसन्नता में होते हैं, स्वभाव से क्रोध के सन्तान होते हैं; अपने भीतर भ्रष्ट, अपनी शक्तियों और सामर्थ्यों के संतुलन में, और अपनी प्रवृत्ति में, जो मुख्य रूप से पाप के संवर्धन की ओर होती है, विक्षिप्त होते हैं; शैतान के प्रभाव के अधीन, जो उसके भीतर निवास करने वाले पाप के कारण उसमें शक्तिशाली रूप से कार्य करता है। इन सबका परिणाम यह है कि मृत्यु पर, वह अनिवार्य रूप से नरक के लिए नियत है, जहाँ उसे अपने स्वामी और उसके अनुचर और सेवकों के साथ पीड़ा सहनी होगी।

बपतिस्मा हमें इन सभी बुराइयों से मुक्ति दिलाता है। यह मसीह के क्रूस की शक्ति से श्राप को दूर करता है और आशीष को पुनर्स्थापित करता है: बपतिस्मा ग्रहण करने वाले परमेश्वर की संतान हैं, क्योंकि प्रभु स्वयं ने उन्हें ऐसा कहलाने और ऐसा होने का अधिकार दिया है। *और यदि बच्चे, तो वारिस—परमेश्वर के वारिस और मसीह के सह-वारिस* (रोमियों 8:17)। स्वर्ग का राज्य बपतिस्मा लेने वाले व्यक्ति का, बपतिस्मा के ही कारण है। वे शैतान के अधिकार से मुक्त हो जाते हैं, जो अब उन पर अपनी शक्ति और उनमें मनमानी करने की अपनी क्षमता खो देता है। कलीसिया—शरण-स्थल—में प्रवेश करके, नव-बपतिस्मित व्यक्ति के द्वार शैतान के विरुद्ध बंद हो जाते हैं। यहाँ वे एक सुरक्षित घेरे के भीतर की तरह हैं।

ये सभी आध्यात्मिक और बाहरी लाभ और उपहार हैं। भीतर क्या होता है? — पाप की बीमारी और क्षति का उपचार। कृपा की शक्ति भीतर प्रवेश करती है और वहाँ दिव्य व्यवस्था को उसकी पूरी सुंदरता में पुनर्स्थापित करती है; यह शक्तियों और अंगों की संरचना और संबंधों दोनों में, और स्वयं से ईश्वर की ओर प्राथमिक अभिविन्यास में अव्यवस्था को ठीक करती है—ईश्वर की महिमा और अच्छे कार्यों की वृद्धि के लिए। यही कारण है कि बपतिस्मा पुनर्जन्म या नया जन्म है, जो एक व्यक्ति को एक नवीनीकृत अवस्था में स्थापित करता है। प्रेरित पौलुस सभी बपतिस्मा लेने वालों की तुलना जी उठे हुए उद्धारकर्ता से करते हैं, जिससे यह संकेत मिलता है कि उनमें भी एक ऐसी प्रकृति है जो अपने नवीनीकरण में उतनी ही तेजस्वी है, जितनी कि मानवता ने प्रभु यीशु में उनकी महिमा में पुनरुत्थान के माध्यम से प्रकट की थी (रोमियों 6:4)। कि बपतिस्मा लेने वाले व्यक्ति के जीवन की दिशा भी बदल जाती है, यह उसी प्रेरित के शब्दों से स्पष्ट है, जो कहीं और कहते हैं कि वे अब *अपने लिए नहीं जीते, बल्कि उनके लिए जीते हैं जो उनके लिए मरे और फिर जी उठे* (2 कुरिन्थियों 5:15)। *क्योंकि यद्यपि वह मरा, तो पाप के लिए एक बार ही मरा; परन्तु यद्यपि वह जीवित है, तो परमेश्वर के लिए जीवित है* (रोमियों 6:10)। *हम बपतिस्मा के द्वारा मृत्यु में उसके साथ दफ़नाए गए* (रोमियों 6:4), और: *हमारा पुराना स्व उसके साथ सूली पर चढ़ाया गया, ताकि पाप का शरीर निष्क्रिय हो जाए, ताकि हम अब पाप के दास न रहें* (रोमियों 6:6)। इस प्रकार, बपतिस्मा की शक्ति से, सभी मानवीय गतिविधि स्वयं से और पाप से हटकर ईश्वर और धार्मिकता की ओर मुड़ जाती है।

प्रेरित के शब्द उल्लेखनीय हैं: *'ताकि हम फिर पाप के दास न रहें*... और दूसरा: *'पाप तुम पर राज्य न करे* (रोमियों 6:14)। यह हमें यह समझने के लिए प्रेरित करता है कि हमारी भ्रष्ट और पतित प्रकृति में, जो शक्ति हमें पाप की ओर खींचती है, वह बपतिस्मा में पूरी तरह से समाप्त नहीं हो जाती है, बल्कि केवल ऐसी स्थिति में ला दी जाती है जिसमें उसकी हम पर कोई शक्ति नहीं होती, वह हम पर हावी नहीं होती, और हम उसकी सेवा नहीं करते। यह हमारे भीतर बनी रहती है, जीवित रहती है और कार्य करती है, लेकिन एक स्वामी के रूप में नहीं। अब से, प्रभुत्व ईश्वर की कृपा और उस आत्मा का है जो सचेत रूप से स्वयं को इसके हवाले कर देता है। बपतिस्मा की शक्ति की व्याख्या करते हुए संत डायडोचस कहते हैं कि बपतिस्मा से पहले पाप हृदय में निवास करता है, जबकि कृपा बाहर से कार्य करती है; लेकिन बपतिस्मा के बाद, कृपा हृदय में स्थापित हो जाती है, जबकि पाप बाहर से लुभाता है। इसे हृदय से एक दुर्ग से शत्रु की भाँति बाहर निकाल दिया जाता है, और यह बाहर, शरीर के अंगों में निवास कर लेता है, जहाँ से यह छिटपुट हमलों के माध्यम से खंडित रूप में कार्य करता है। इसीलिए यह एक अनवरत प्रलोभक और बहकाने वाला बना रहता है, लेकिन अब एक शासक नहीं रहता: यह परेशान और क्लेश पहुँचाता है, लेकिन आज्ञा नहीं देता।

इस प्रकार बपतिस्मा के द्वारा नया जीवन जन्म लेता है! इस संबंध में एक व्यक्ति से क्या अपेक्षित है, या वे बपतिस्मा के द्वारा कैसे नवीनीकृत होते हैं, इसका वर्णन *ए आउटलाइन ऑफ़ क्रिश्चियन मॉरैलिटी* में, विशेष रूप से 'द स्टैंडर्ड ऑफ़ द क्रिश्चियन लाइफ़' नामक अध्याय में किया गया है। यहाँ इसका दोहराव नहीं किया गया है, क्योंकि बपतिस्मा ग्रहण करने वाला वयस्क एक ऐसे पापी के समान है जो पश्चाताप करके ईश्वर की ओर मुड़ गया है; और इस दूसरे विषय पर बाद में, दूसरे खंड में विस्तार से चर्चा की जाएगी। तब इस मामले के बारे में सभी की जिज्ञासा पूरी तरह से संतुष्ट हो जाएगी।

यहाँ, इस बात पर ध्यान आकर्षित किया गया है कि जिन लोगों का शिशु रूप में बपतिस्मा होता है, उनमें ईसाई जीवन बपतिस्मा के माध्यम से कैसे शुरू होता है, जैसा कि हमारे बीच प्रचलित रूप से होता है। क्योंकि यहाँ ईसाई जीवन की शुरुआत अनुग्रह और स्वतंत्रता के बीच के संबंध से उत्पन्न एक विशिष्ट विशेषता द्वारा चिह्नित होती है।

आप पहले से ही जानते हैं कि अनुग्रह स्वतंत्र इच्छा और खोजी हृदय पर अवतरित होता है, और यह केवल उनके पारस्परिक मिलन के माध्यम से ही है कि अनुग्रह का एक नया जीवन, जो अनुग्रह और एक स्वतंत्र प्राणी की प्रकृति के अनुरूप है, शुरू होता है। प्रभु अनुग्रह को एक उपहार के रूप में प्रदान करते हैं; लेकिन वे यह अपेक्षा करते हैं कि कोई व्यक्ति इसे खोजे और स्वेच्छा से इसे ग्रहण करे, तथा स्वयं को पूरी तरह से ईश्वर को समर्पित कर दे। इस शर्त की पूर्ति वयस्कों के पश्चाताप और बपतिस्मा में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। लेकिन शिशुओं के बपतिस्मा में यह कैसे पूरी होती है? एक शिशु में तर्क या स्वतंत्र इच्छा का उपयोग नहीं होता है; परिणामस्वरूप, यह अपने हिस्से से ईसाई जीवन की शुरुआत के लिए शर्त को पूरा नहीं कर सकता है, अर्थात् स्वयं को ईश्वर को समर्पित करने की इच्छा। फिर भी यह शर्त निश्चित रूप से पूरी होनी चाहिए। जिस तरीके से यह शर्त पूरी होती है, उसके कारण शिशुओं के बपतिस्मा के माध्यम से जीवन की शुरुआत एक निश्चित विशिष्ट विशेषता के साथ होती है। अर्थात्:

अनुग्रह शिशु की आत्मा पर अवतरित होता है और उसमें **पूरी तरह से अपनी इच्छा से** कार्य करता है, मानो इसमें स्वतंत्रता भी शामिल हो, केवल इस आधार पर कि भविष्य में यह शिशु—जो वर्तमान में अपने बारे में अनजान है और अपनी इच्छा से कार्य नहीं करता—जब चेतना में आएगा, स्वैच्छिक रूप से स्वयं को ईश्वर को समर्पित कर देगा, अपने भीतर इसकी क्रियाओं को खोजकर आनंदपूर्वक अनुग्रह ग्रहण करेगा, इसकी उपस्थिति पर हर्षित होगा, इसके लिए धन्यवाद देगा, और यह स्वीकार करेगा कि यदि उसे बपतिस्मा के समय तर्क और स्वतंत्रता प्रदान की गई होती, तो वह भी वैसा ही करता जैसा किया गया है, और उसने कुछ और चाहा भी नहीं होता। ऐसे भविष्य के ईश्वर को स्वेच्छा से समर्पित होने और स्वतंत्रता के अनुग्रह के साथ मिलन के लिए, दिव्य अनुग्रह शिशु पर पूर्ण रूप से प्रदान किया जाता है और, उसकी भागीदारी के बिना, उसमें वह सब कुछ उत्पन्न करता है जो उसे उत्पन्न करना उचित है, यह केवल इस आश्वासन पर आधारित है कि ईश्वर के प्रति आवश्यक इच्छा और समर्पण निस्संदेह होगा, — एक आश्वासन जो धर्म-माता-पिता द्वारा चर्च के समक्ष ईश्वर से यह प्रतिज्ञा करने पर दिया जाता है कि यह शिशु, वयस्क होने पर, अनुग्रह के लिए आवश्यक रूप से अपनी स्वतंत्रता का प्रयोग करेगा, और इस प्रकार शिशु को ग्रहणशीलता की उस अवस्था में लाने का दायित्व ग्रहण करते हैं।

इस प्रकार, बपतिस्मा के माध्यम से, मसीह में जीवन का बीज शिशु में रोपा जाता है और उसमें निवास करता है; फिर भी यह, ऐसा कह सकते हैं, अभी उसका अपना नहीं है — यह उस शक्ति के रूप में कार्य करता है जो उसे आकार देती है। शिशु के भीतर बपतिस्मा की कृपा से प्रज्वलित आध्यात्मिक जीवन, व्यक्ति का अपना हो जाएगा और यह न केवल कृपा के अनुसार बल्कि एक तर्कशील प्राणी की प्रकृति के अनुसार भी, उस क्षण से अपनी पूर्ण रूप में प्रकट होगा, जब, चेतना प्राप्त करने के बाद, वह अपनी स्वतंत्र इच्छा से स्वयं को ईश्वर को समर्पित करता है और, एक आनंदमय आनंदमय और कृतज्ञ

स्वीकृति के साथ, वह अपने भीतर पाई जाने वाली अनुग्रह-पूर्ण शक्ति को आत्मसात कर लेता है। उस समय तक, एक सच्चा ईसाई जीवन उसके भीतर कार्य कर रहा होता है, लेकिन मानो उसकी जानकारी के बिना; यह उसके भीतर कार्य कर रहा होता है, फिर भी यह अभी तक वास्तव में उसका नहीं होता; लेकिन आत्म-जागरूकता और पसंद के क्षण से, यह उसका अपना हो जाता है—केवल अनुग्रह से ही नहीं, बल्कि स्वतंत्र रूप से चुने हुए भी।

बपतिस्मा और ईश्वर को समर्पित होने, जो कि ईसाई नैतिक जीवन की शुरुआत है, के बीच इस अधिक या कम लंबे अंतराल के कारण, शिशुओं में, कह सकते हैं, बपतिस्मा की कृपा के माध्यम से ईसाई नैतिक जीवन की शुरुआत का विस्तार हो जाता है, एक अनिश्चित अवधि के दौरान, जिसके दौरान शिशु परिपक्व होता है और पवित्र चर्च के भीतर ईसाइयों के बीच एक ईसाई के रूप में ढला जाता है, ठीक वैसे ही जैसे वह पहले अपनी माँ के गर्भ में शारीरिक रूप से विकसित हुआ था।

प्रिय पाठक, इस विचार को दृढ़ता से अपने हृदय में धारण करें। जब यह निर्धारित करने की आवश्यकता होगी कि माता-पिता, गॉडपेरेंट्स और अभिभावकों को पवित्र चर्च और प्रभु द्वारा उनके सुपुर्द किए गए बपतिस्मा प्राप्त शिशु के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, तो हमें इसकी बहुत आवश्यकता होगी।

यह तो कहने की आवश्यकता नहीं है कि, शिशु के बपतिस्मा के बाद, माता-पिता और धर्म-माता-पिता के सामने एक बहुत महत्वपूर्ण कार्य है: बपतिस्मा प्राप्त बच्चे का इस तरह से मार्गदर्शन करना कि, वयस्क होने पर, वह अपने भीतर अनुग्रह की शक्तियों को पहचान सके, उन्हें आनंदित उत्सुकता के साथ स्वीकार कर सके, साथ ही उनसे जुड़े कर्तव्यों और उनके लिए आवश्यक जीवन-शैली को भी अपना सके। यह हमें ईसाई पालन-पोषण के प्रश्न के सामने लाता है, या बपतिस्मा की कृपा की मांगों के अनुसार पालन-पोषण, जिसका उद्देश्य उस कृपा को संरक्षित रखना है।

उपरोक्त उद्देश्यों के लिए एक बपतिस्मा प्राप्त शिशु के साथ कैसा व्यवहार किया जाना चाहिए, यह स्पष्ट करने के लिए, हमें पहले बताई गई बात को याद करना होगा: कि अनुग्रह हृदय पर तब अवतरित होता है और उसमें तब वास करता है, जब पाप और स्वयं से मुंह मोड़कर ईश्वर की ओर रुख किया जाता है। सक्रिय रूप से प्रकटित इस प्रवृत्ति के ही लिए, अनुग्रह के अन्य सभी उपहार और धन्य लोगों के सभी लाभ बाद में प्रदान किए जाते हैं: ईश्वर की कृपा, मसीह के साथ सह-वारिस होने का अधिकार, शैतान के प्रभुत्व से मुक्ति, और नरक में दंडित होने के खतरे से स्वतंत्रता। लेकिन जैसे ही मन और हृदय की यह प्रवृत्ति कम हो जाती है या खो जाती है, पाप तुरंत ही एक बार फिर से हृदय पर कब्जा करने लगता है; और पाप के माध्यम से, शैतान के बंधन थोप दिए जाते हैं, और ईश्वर की अनुकंपा तथा मसीह के साथ सह-वारिस होने का अधिकार वापस ले लिया जाता है। शिशु में अनुग्रह पाप को वश में करता है और दबा देता है; लेकिन यदि उसे पोषण और स्वतंत्रता दी जाए तो वह फिर से जीवित हो सकता है और उठ सकता है। इसलिए, उन सभी का पूरा ध्यान, जिन पर बपतिस्मा के कुंड से प्राप्त ईसाई बच्चे की अखंडता को बनाए रखने का कर्तव्य है, इस बात पर केंद्रित होना चाहिए कि पाप पर बच्चे पर फिर से हावी न हो, बल्कि हर तरह से उसे दबाया और निष्प्रभावी किया जाए, साथ ही बच्चे की ईश्वर की ओर उन्मुखता को बढ़ावा दिया और मजबूत किया जाए। इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि परिपक्व होते ईसाई के भीतर ऐसा स्वभाव विकसित हो—हालाँकि दूसरों के मार्गदर्शन में, फिर भी उसकी अपनी इच्छा से—ताकि वह ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए पाप पर विजय प्राप्त करने और उस पर काबू पाने का, और आत्मा तथा शरीर की शक्तियों का इस तरह उपयोग करने का आदी होता जाए कि यह पाप के लिए परिश्रम न हो, बल्कि ईश्वर की सेवा हो। कि यह संभव है, यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि जो जनम लेता है और बपतिस्मा लेता है, वह अपनी संपूर्णता में, भविष्य का एक बीज या बीजों से भरी मिट्टी है। बपतिस्मा की कृपा द्वारा स्थापित नई प्रवृत्ति केवल काल्पनिक या आरोपित नहीं, बल्कि वास्तविक है; अर्थात्, यह भी जीवन का एक बीज है। यदि हर बीज अपनी प्रकृति के अनुसार विकसित होता है, तो बपतिस्मा प्राप्त व्यक्ति के भीतर अनुग्रह के जीवन का बीज भी विकसित हो सकता है। यदि उनमें ईश्वर की ओर मुड़ने का बीज—जो पाप पर विजय प्राप्त करता है—बोया जाता है, तो उसे भी अन्य बीजों की तरह पोषित किया जा सकता है और फलित किया जा सकता है। इसके लिए केवल प्रभावी साधनों का उपयोग करने या बपतिस्मा प्राप्त शिशु को प्रभावित करने के लिए उचित तरीका निर्धारित करने की आवश्यकता है।

जिस उद्देश्य के लिए यह सब निर्देशित किया जाना चाहिए, वह यह है कि यह नया व्यक्ति, वयस्क होने पर, स्वयं को केवल एक मानव, एक तर्कशील और स्वतंत्र प्राणी के रूप में ही नहीं, बल्कि एक ऐसे व्यक्ति के रूप में भी पहचाने जो प्रभु के साथ एक वाचा में प्रवेश कर चुका है, जिसके साथ उसकी शाश्वत नियति अटूट रूप से जुड़ी हुई है; न केवल स्वयं को ऐसा पहचानना, बल्कि इस प्रतिबद्धता के अनुसार कार्य करने में स्वयं को सक्षम पाना और अपने भीतर इसके प्रति एक प्रमुख प्रवृत्ति को महसूस करना। प्रश्न उठता है: इसे कैसे प्राप्त किया जाए? बपतिस्मा लेने वाले व्यक्ति के साथ कैसे व्यवहार किया जाए ताकि वयस्कता तक पहुँचने पर, वे एक सच्चे ईसाई बनने के अलावा और कुछ न चाहें? या—एक बच्चे का ईसाई धर्म में पालन-पोषण कैसे किया जाए?

इसके उत्तर में, हम हर बात की विस्तार से जांच करने का प्रयास नहीं करेंगे। हम ईसाई पालन-पोषण के पूरे विषय का केवल एक सामान्य अवलोकन ही करेंगे, ताकि यह बताया जा सके कि प्रत्येक मामले में बच्चों में अच्छे गुणों को कैसे पोषित और मजबूत किया जाए और बुरे गुणों को कैसे कमजोर और दबाया जाए।

यहाँ, सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण, हमारा ध्यान पालने में पड़े शिशु की ओर जाता है, इससे पहले कि उसकी कोई भी क्षमता जागृत हुई हो। शिशु जीवित है; परिणामस्वरूप, उसके जीवन को प्रभावित करना संभव है। यहाँ पवित्र संस्कारों की भूमिका आती है, जिसके बाद चर्च का संपूर्ण जीवन आता है; और इनके साथ-साथ माता-पिता का विश्वास और धार्मिकता भी।

यह सब, एक साथ मिलकर, शिशु के चारों ओर एक उद्धारकारी वातावरण बनाएगा। इन सभी साधनों के माध्यम से, शिशु के भीतर गर्भ में संकल्पित अनुग्रह-पूर्ण जीवन को रहस्यमय रूप से स्थापित किया जाता है (प्रेरित, संप्रेषित। *एड।*)।

मसीह के पवित्र रहस्यों का बार-बार सेवन (कहा जा सकता है: यथासंभव अधिक बार) उनके सबसे पवित्र शरीर और रक्त के माध्यम से, उनके शरीर के इस नए सदस्य को प्रभु के साथ जीवंत और प्रभावी ढंग से एक करता है; यह बच्चे को पवित्र करता है, उसकी आत्मा में शांति लाता है, और उसे अंधकार की शक्तियों से अप्रभावित बनाता है।

जो लोग इस तरह आगे बढ़ते हैं, वे देखते हैं कि जिस दिन बच्चा कम्युनियन ग्रहण करता है, वह सभी प्राकृतिक जरूरतों के तीव्र प्रकटीकरण के बिना, एक गहरी शांति में डूब जाता है, यहाँ तक कि उन जरूरतों के भी जो बच्चों में अधिक स्पष्ट होती हैं । कभी-कभी वह आनंद और एक चंचल भावना से भर जाता है, जिसमें वह सभी को अपना मानने के लिए तैयार रहता है। पवित्र सहभागिता अक्सर चमत्कारों के साथ होती है। क्रीट के संत एंड्रयू अपने बचपन में लंबे समय तक नहीं बोलते थे। जब उनके व्याकुल माता-पिता ने प्रार्थना और अनुग्रह के साधनों का सहारा लिया, तो पवित्र सहभागिता के दौरान प्रभु ने, अपनी कृपा से, उनकी जीभ के बंधन ढीले कर दिए, जिसके बाद उन्होंने चर्च को वाक्पटुता और ज्ञान की धाराओं से भर दिया। एक डॉक्टर ने अपने अवलोकनों के आधार पर गवाही दी कि बचपन की अधिकांश बीमारियों में बच्चों को पवित्र सहभागिता प्राप्त करने के लिए लाया जाना चाहिए, और उन्होंने बहुत ही कम मामलों में बाद में चिकित्सा उपचार का सहारा लेना आवश्यक पाया।

चर्च में बार-बार जाना, पवित्र क्रॉस, सुसमाचार और प्रतिमाओं को छूना, और पवित्र जल का छिड़काव बच्चों पर बहुत बड़ा प्रभाव डालता है; इसी तरह घर पर भी — उन्हें अक्सर प्रतिमाओं के सामने लाना, बार-बार क्रॉस का चिह्न बनाना, पवित्र जल छिड़कना, धूप जलाना, पालने, भोजन और उनसे जुड़ी हर चीज़ को क्रॉस के चिह्न से आशीर्वाद देना, पुरोहित का आशीर्वाद लेना, चर्च से प्रतिमाएँ घर लाना और प्रार्थना सभाएँ आयोजित करना; आम तौर पर, चर्च से जुड़ी हर चीज़ चमत्कारिक रूप से बच्चे के अनुग्रह के जीवन को गर्म और पोषित करती है, और हमेशा अदृश्य अंधेरी शक्तियों के प्रलोभनों के खिलाफ सबसे सुरक्षित और सबसे अभेद्य रक्षा के रूप में काम करती है, जो अपनी साँस से संक्रमित करने के लिए विकसित हो रही आत्मा में प्रवेश (घुसपैठ, जड़ जमाना / *संपादक*) करने के लिए हमेशा तैयार रहती हैं।

इस दृश्य सुरक्षा के नीचे एक अदृश्य सुरक्षा भी है: संरक्षक देवदूत, जिसे प्रभु ने बपतिस्मा के क्षण से ही शिशु के लिए नियुक्त किया है। वह बच्चे पर नजर रखता है, अपनी उपस्थिति से अदृश्य रूप से उस पर प्रभाव डालता है, और, जब आवश्यक हो, तो माता-पिता को प्रेरित करता है कि अत्यंत आवश्यकता के समय में अपने बच्चे के लिए क्या किया जाना चाहिए।

फिर भी, इन सभी मजबूत रक्षाओं, इन शक्तिशाली और प्रभावी प्रेरणाओं को माता-पिता के अविश्वास, लापरवाही, अधार्मिकता और दुष्ट जीवन शैली द्वारा नष्ट किया जा सकता है और बच्चे को उनके लाभ से वंचित किया जा सकता है। यह आंशिक रूप से इसलिए है क्योंकि, ऐसे मामलों में, इन साधनों का या तो बिल्कुल भी उपयोग नहीं किया जाता है या उनका अनुचित उपयोग किया जाता है; लेकिन यह विशेष रूप से एक आंतरिक प्रभाव के कारण है। यह सच है कि प्रभु दयालु हैं, विशेष रूप से निर्दोषों के प्रति; फिर भी माता-पिता की आत्माओं और उनके बच्चों के बीच एक ऐसा संबंध है जो हमारी समझ से परे है, और हम यह निर्धारित नहीं कर सकते कि पूर्व का प्रभाव उत्तरवर्ती पर किस हद तक फैला है; और न ही, साथ ही, यह कि पूर्व के भ्रष्ट करने वाले प्रभाव के सामने, ईश्वर की दया और सहनशीलता उत्तरवर्ती तक किस हद तक फैली है। कभी-कभी ऐसा होता है कि यह प्रभाव समाप्त हो जाता है, और फिर जो कारण संचित किए गए हैं वे अपना फल देते हैं। इसलिए, माता-पिता में विश्वास और भक्ति की भावना को उनके बच्चों में अनुग्रह के जीवन को संरक्षित करने, पोषित करने और मजबूत करने का सबसे शक्तिशाली साधन माना जाना चाहिए।

एक शिशु की आत्मा, यूं कहें तो, पहले दिनों, महीनों, या यहां तक कि वर्षों तक सक्रिय नहीं होती है। सामान्य साधनों से उसे कुछ भी आत्मसात करने के लिए देना असंभव है। लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से उस पर प्रभाव डालना संभव है।

एक विशेष तरीका है जिससे आत्माएँ हृदय के माध्यम से संवाद करती हैं। एक आत्मा दूसरे को भावना के माध्यम से

प्रभावित करती है। शिशु की आत्मा पर ऐसा प्रभाव तब और भी अधिक प्रभावी होता है, जब माता-पिता का हृदय पूरी तरह से और गहराई से शिशु की ओर उन्मुख हो। पिता और माता स्वयं को बच्चे में खो देते हैं और, जैसा कि कहा जाता है, उसके प्रति पूरी तरह से समर्पित हो जाते हैं। और यदि उनकी आत्मा धर्मपरायणता से परिपूर्ण है, तो यह अपने आप ही बच्चे की आत्मा को अपनी तरह से प्रभावित किए बिना नहीं रह सकती। इसके लिए सबसे अच्छा बाहरी माध्यम दृष्टि है। जहाँ एक ओर आत्मा अन्य इंद्रियों में छिपी रहती है, वहीं आँख इसे दूसरे की दृष्टि के सामने प्रकट कर देती है। यही वह बिंदु है जहाँ एक आत्मा दूसरी से मिलती है। माता-पिता की पवित्र भावनाओं से भरी आत्माएँ, इस द्वार से होकर बच्चे की आत्मा में प्रवेश करें। वे इस पवित्र तेल से उसे अभिषेक किए बिना नहीं रह सकते। यह आवश्यक है कि उनकी दृष्टि न केवल प्रेम से—जो कि बहुत स्वाभाविक है—बल्कि उस विश्वास से भी चमके कि वे अपनी बाहों में सिर्फ एक बच्चे से कहीं बढ़कर को संभाले हुए हैं, और उस आशा से भी कि वह, जिसने इस खजाने को अनुग्रह के पात्र के रूप में उनकी देखभाल के लिए सौंपा है, वह उन्हें इसे संरक्षित रखने के लिए पर्याप्त शक्ति प्रदान करेगा, और अंत में, आस्था से उत्पन्न आशा से प्रेरित, आत्मा में निरंतर अर्पित की जाने वाली एक प्रार्थना।

जब माता-पिता इस प्रकार अपने बच्चे के पालने को सच्ची भक्ति की भावना से घेर लेते हैं, और जब, एक ओर, पालक देवदूत, और दूसरी ओर, पवित्र रहस्य और संपूर्ण चर्च, बच्चे पर बाहरी और आंतरिक दोनों तरह से कार्य करते हैं, उस नवजात जीवन के लिए स्वाभाविक एक आध्यात्मिक वातावरण उसके चारों ओर बन जाएगा, जो बच्चे को अपना ही स्वभाव प्रदान करेगा, ठीक वैसे ही जैसे रक्त—प्राणी जीवन का स्रोत—अपने गुणों में बहुत हद तक आसपास की हवा पर निर्भर करता है। कहा जाता है कि एक नई बनी पात्र, यदि हमेशा के लिए नहीं तो लंबे समय तक, उस समय उसमें डाले गए पदार्थ की सुगंध को बनाए रखती है। बच्चों के संबंध में यहाँ वर्णित व्यवस्था के बारे में भी यही कहा जाना चाहिए। यह अनुग्रह से परिपूर्ण और उद्धारकारी तरीके से, बच्चे के जीवन के उभरते हुए रूपों में व्याप्त हो जाती है और उन पर अपनी छाप छोड़ेगी। यहाँ भी, दुष्ट आत्माओं के प्रभाव के खिलाफ एक अभेद्य बाधा निहित है।

पालने से ही इस तरह का अभ्यास शुरू करने के बाद, किसी को पालन-पोषण की पूरी अवधि के दौरान इसे जारी रखना चाहिए: बचपन, किशोरावस्था और युवावस्था में। चर्च, धार्मिक जीवन और पवित्र रहस्य बच्चों के लिए एक तम्बू की तरह हैं, जिसके नीचे उन्हें लगातार रहना चाहिए। उदाहरण बताते हैं कि यह कितना उद्धारकारी और फलदायी है—सैमुअल (नबी; 20 *अगस्त—संपादक*), साइकेऑन के थियोडोर (22 अप्रैल) और अन्य। केवल यही पालन-पोषण के अन्य सभी साधनों को प्रतिस्थापित कर सकता है, और वास्तव में कुछ सफलता के साथ प्रतिस्थापित करता भी है। शिक्षा की प्राचीन विधि मुख्य रूप से इसी पर مشتمل थी।

जैसे ही बच्चे की शक्तियाँ एक के बाद एक जागने लगती हैं, माता-पिता और शिक्षकों को अपना ध्यान दोगुना कर देना चाहिए। क्योंकि जब वर्णित साधनों के प्रभाव में, बच्चे की ईश्वर की ओर झुकाव बढ़ता और मजबूत होता है, और शक्तियों को अपने पीछे खींचता है, ठीक उसी समय उनके भीतर निवास करने वाला पाप सोया नहीं रहता, बल्कि उन्हीं शक्तियों पर कब्जा करने का प्रयास करता है। इसका अपरिहार्य परिणाम एक आंतरिक संघर्ष है। चूँकि बच्चे स्वयं इस संघर्ष को लड़ने में असमर्थ होते हैं, इसलिए उनके माता-पिता बुद्धिमानी से उनकी जगह लेते हैं। लेकिन चूँकि यह संघर्ष फिर भी बच्चों की अपनी शक्तियों से ही लड़ा जाना चाहिए, इसलिए माता-पिता को उनके जागृति की पहली हलचल पर कड़ी नज़र रखनी चाहिए, ताकि वे उन्हें, बिल्कुल पहले क्षण से ही, उस मुख्य लक्ष्य के अनुसार एक प्रवृत्ति दे सकें, जिसकी ओर उन्हें निर्देशित किया जाना है।

इस प्रकार माता-पिता का बच्चे के भीतर बसने वाले पाप के खिलाफ संघर्ष शुरू होता है। यद्यपि इस पाप को कोई ठोस आधार नहीं मिलता, फिर भी यह सक्रिय रहता है और किसी चीज़ पर दृढ़ पकड़ बनाने के लिए, शरीर और आत्मा की शक्तियों पर कब्ज़ा करने का प्रयास करता है। ऐसा होने देना नहीं चाहिए, बल्कि, मानो, इन शक्तियों को पाप की चपेट से छीनकर उन्हें ईश्वर के सुपुर्द कर देना चाहिए। हालाँकि, यह सुनिश्चित करने के लिए कि कार्य आधारहीन न हो, बल्कि चुनी गई विधि की ठोसता की स्पष्ट समझ के साथ हो, व्यक्ति को यह स्पष्ट रूप से समझना चाहिए कि शेष पाप क्या चाहता है, उसका पोषण क्या करता है, और वह ठीक-ठीक किन साधनों से हमें अपनी चपेट में लेता है। पाप की ओर ले जाने वाले मुख्य आवेग हैं: मन में स्वच्छंदता (या जिज्ञासा), इच्छा में आत्म-इच्छा, और इंद्रियों में आत्म-संतुष्टि। इसलिए, आत्मा और शरीर की विकसित हो रही शक्तियों का मार्गदर्शन और निर्देशन इस तरह से करना चाहिए कि उन्हें कामुक भोग, जिज्ञासा, स्व-इच्छा और आत्म-संतुष्टि की कैद में न सौंपा जाए—क्योंकि यह पापी कैद होगी, — बल्कि, इसके विपरीत, स्वयं को इनका त्याग करने और उन पर विजय प्राप्त करने का आदी बनाना चाहिए, और इस प्रकार, यथासंभव, उन्हें शक्तिहीन और हानिरहित बनाना चाहिए। यही मुख्य सिद्धांत है। सभी शिक्षा को तब इसके अनुरूप लाया जाना चाहिए। आइए, इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, शरीर, आत्मा और प्राण के प्रमुख कार्यों की जांच करें।

सबसे पहले, शरीर की आवश्यकताएँ जागृत होती हैं, और फिर वे मृत्यु तक लगातार, सक्रिय रूप से काम करती रहती हैं। इसलिए, उन्हें उचित सीमाओं के भीतर रखना और इसे आदत के माध्यम से सुदृढ़ करना और भी आवश्यक है, ताकि बाद में वे कम व्यवधान पैदा करें। यहाँ, शरीर के जीवन के लिए सबसे महत्वपूर्ण कार्य पोषण है। नैतिक दृष्टिकोण से, यह शरीर की पापी तुष्टि की कामना का केंद्र है, या इसके विकास और पोषण का मैदान है। इसलिए, बच्चे को इस तरह से खिलाना चाहिए कि, शरीर के जीवन को विकसित करते हुए और उसे शक्ति और स्वास्थ्य प्रदान करते हुए, यह आत्मा में कामुक आनंद की इच्छा को न जगाए। ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि बच्चा बहुत छोटा है — शुरुआती वर्षों से ही, मांस को अनुशासित करना शुरू करना चाहिए, जो स्थूल पदार्थ की ओर झुकता है, और बच्चे को उस पर आत्म-नियंत्रण का अभ्यास करने का आदी बनाना चाहिए, ताकि किशोरावस्था, युवावस्था और उसके बाद, इस आवश्यकता को आसानी से और स्वतंत्र रूप से प्रबंधित किया जा सके। प्रारंभिक नींव बहुत महत्व की है। जीवन के बाद के वर्षों में बहुत कुछ बच्चे के आहार पर निर्भर करता है। मीठी चीजों का प्रेम और भोजन में अनुशासनहीनता—जो दो प्रकार की लालसा हैं, और ये प्रवृत्तियाँ शरीर और आत्मा दोनों के लिए विनाशकारी हैं—इनका विकास आहार के माध्यम से अनजाने में हो सकता है।

इसी कारण से, डॉक्टर और शिक्षक भी सलाह देते हैं: 1) बच्चे की उम्र को ध्यान में रखते हुए, स्वस्थ और उपयुक्त भोजन चुनें: क्योंकि एक प्रकार का भोजन शिशु के लिए उपयुक्त होता है, दूसरा टॉडलर, किशोरावस्था-पूर्व और युवा व्यक्ति के लिए; 2) ऐसे भोजन के सेवन को स्थापित नियमों (फिर से, बच्चे की उम्र के अनुसार अनुकूलित) के अधीन करना, जिनमें खाने का समय, मात्रा और तरीका निर्दिष्ट होना चाहिए; और 3) इसके बाद, बिना किसी अच्छे कारण के इस तरह स्थापित दिनचर्या से विचलित न होना। इस तरह, बच्चा यह सीख जाएगा कि जब भी उसका मन करे तब भोजन की मांग न करे, बल्कि एक निर्धारित समय का इंतजार करे; यहाँ भी, अपनी इच्छाओं के सामने आत्म-संयम का अभ्यास करने के पहले प्रयास निहित हैं। जहाँ बच्चे को हर बार रोने पर, और फिर हर बार खाने की मांग करने पर खाना दिया जाता है, तो वह इतना बिगड़ जाता है कि बाद में वह केवल बीमार होने पर ही खाना मना कर पाता है। साथ ही, बच्चा मनमानी करने का आदी हो जाता है, क्योंकि वह अपनी इच्छानुसार सब कुछ पाने के लिए भीख माँगने या रोने में कामयाब हो जाता है। इसी सिद्धांत को सोने, गर्मी और ठंड, और पोषण के लिए स्वाभाविक रूप से आवश्यक अन्य सुख-सुविधाओं पर भी लागू किया जाना चाहिए, साथ ही यह दृढ़ता से ध्यान में रखना चाहिए कि इंद्रिय सुखों की लालसा को भड़काया न जाए और बच्चे को आत्म-संयम करना सिखाया जाए। पालन-पोषण की पूरी अवधि के दौरान इसका कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए—बेशक, नियमों को उनके सार में नहीं, बल्कि उनके अनुप्रयोग में समायोजित करते हुए—जब तक कि बच्चा उनमें दृढ़ता से स्थापित हो जाए और अपने ऊपर नियंत्रण कर ले।

दूसरा शारीरिक कार्य गति है; इसका उपकरण मांसपेशियाँ हैं, जिनमें शरीर की शक्ति और ऊर्जा निहित होती है—मेहनत के उपकरण। आत्मा के संबंध में, यह इच्छाशक्ति का केंद्र है, और यह आत्म-इच्छा को बढ़ावा देने में अत्यधिक सक्षम है। इस क्रिया के नियंत्रित, विवेकपूर्ण विकास से शरीर में जोश और चपलता आती है, जिससे व्यक्ति परिश्रम का आदी होता है और संयम को बढ़ावा मिलता है। इसके विपरीत, विकृत विकास, यदि अपने हाल पर छोड़ दिया जाए, तो कुछ लोगों में अत्यधिक चंचलता और विचलन को बढ़ावा देता है, और दूसरों में — सुस्ती, उदासीनता और आलस्य को। पहला विचलन और अवज्ञा को सुदृढ़ करता है और उन्हें संस्थागत बनाता है, जिसके साथ आवेग, चिड़चिड़ापन और अनियंत्रित इच्छाएँ जुड़ी होती हैं। दूसरा व्यक्ति को कामुकता में डुबो देता है और उसे कामुक सुखों के हवाले कर देता है। इसलिए यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि, शरीर की ताकत को मजबूत करते समय, किसी को भी अहंकार को बढ़ावा नहीं देना चाहिए, न ही शरीर के लिए आत्मा को नष्ट करना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए, कुंजी संयम, अनुशासन और देखरेख में निहित है। बच्चे को मस्ती करने दें, लेकिन उस समय, उस स्थान पर और उस तरीके से जैसे उन्हें निर्देश दिया गया हो। माता-पिता की इच्छा को हर कदम पर मार्गदर्शन करना चाहिए, स्वाभाविक रूप से, उचित सीमाओं के भीतर। इसके बिना, बच्चे का चरित्र आसानी से बिगड़ सकता है। मनमानी ढंग से खेलने के बाद, बच्चा हमेशा आज्ञा मानने से इनकार करता है, यहाँ तक कि छोटी-छोटी बातों में भी। और यह तो केवल एक ही उदाहरण के बाद है; तो फिर क्या कहा जा सकता है जब इस पहलू की पूरी तरह से अनदेखी की जाती है? एक बार जब यह शरीर में, जैसे कि किसी किले में, जड़ पकड़ लेता है तो इस मनमानी प्रवृत्ति को खत्म करना कितना मुश्किल होता है। गर्दन नहीं मुड़ती, हाथ-पैर नहीं हिलते, और जहाँ देखने को कहा जाए, वहाँ देखने की इच्छा भी नहीं होती। इसके विपरीत, जब किसी बच्चे को शुरू से ही पूरी आज़ादी नहीं दी जाती, तो वह किसी भी आदेश के प्रति अत्यधिक उत्तरदायी हो जाता है। इसके अलावा, निर्देशों के अनुसार शरीर को परिश्रम करने के लिए मजबूर करने से बेहतर अपने शरीर को नियंत्रित करना सीखने का कोई तरीका नहीं है।

तीसरा शारीरिक कार्य तंत्रिकाओं से संबंधित है। संवेदी तंत्रिकाएँ अवलोकन के उपकरण और जिज्ञासा का ईंधन हैं।

लेकिन इस पर बाद में और बात करेंगे। फिलहाल, आइए तंत्रिकाओं के एक अन्य सामान्य कार्य पर विचार करें: शरीर की संवेदनशीलता का केंद्र होने के नाते, या उन बाहरी छापों को प्राप्त करने की क्षमता के रूप में जो इसके लिए सुखद या अप्रिय होती हैं। इस संबंध में, व्यक्ति को शरीर को सभी प्रकार के बाहरी प्रभावों को बिना दर्द के सहन करने का आदी बनाना चाहिए: हवा, पानी, तापमान में बदलाव, नमी, गर्मी, ठंड, घाव, दर्द और इसी तरह की चीजों से। जिसने भी ऐसी कुशलता हासिल कर ली है, वह लोगों में सबसे खुश है, जो किसी भी समय और किसी भी स्थान पर सबसे कठिन कार्यों को करने में सक्षम है। ऐसे व्यक्ति में, आत्मा शरीर की पूर्ण स्वामी होती है; वह शारीरिक असुविधा के डर से अपने कार्यों को टालती, हिचकिचाती या त्यागती नहीं है; इसके विपरीत, वह एक प्रकार की उत्सुकता के साथ उस सब की ओर मुड़ती है जो शरीर को कष्ट दे सकता है। और यह बहुत महत्वपूर्ण है। शरीर के संबंध में मुख्य बुराई गर्मी से प्रेम और शरीर को बचाने की प्रवृत्ति है। यह आत्मा को शरीर पर उसके सभी अधिकार से वंचित कर देता है और आत्मा को शरीर का दास बना देता है; इसके विपरीत, जो व्यक्ति शरीर की परवाह नहीं करता है, वह अंधाधुंध आत्म-संरक्षण से उत्पन्न भयों से अपने प्रयासों में विचलित नहीं होगा। वह व्यक्ति कितना भाग्यशाली है जो बचपन से ही इसकी आदत डाल लेता है! इसमें स्नान, टहलने का समय और स्थान, और कपड़ों के संबंध में चिकित्सा संबंधी सलाह शामिल है; मुख्य बात यह है कि शरीर की इस तरह देखभाल न की जाए कि वह केवल सुखद अनुभूतियों का अनुभव करे, बल्कि उसे असहज अनुभूतियों का सामना कराना चाहिए। पहले वाला तरीका शरीर को लाड़-प्यार करता है, जबकि बाद वाला उसे मजबूत बनाता है; पहले वाले तरीके से, एक बच्चा हर चीज़ से डरता है, जबकि बाद वाले तरीके से, वह किसी भी चीज़ के लिए तैयार रहता है और जो कुछ भी उसने शुरू किया है, उसमें धैर्यपूर्वक persevere करने में सक्षम होता है।

शरीर के प्रति इस प्रकार का व्यवहार शिक्षाशास्त्र द्वारा निर्धारित किया गया है। यहाँ, हम केवल यह प्रदर्शित करते हैं कि यह सलाह ईसाई जीवन के विकास के लिए भी कैसे उपयुक्त है, विशेष रूप से इसलिए क्योंकि इसका उत्साही पालन इंद्रिय सुखों, आत्म-संतुष्टि, कामुकता या आत्म-दया के हानिकारक विष को आत्मा में प्रवेश करने से रोकता है; यह इनके विपरीत प्रवृत्तियों को बढ़ावा देता है और, सामान्य रूप से, किसी को शरीर पर हावी होने के बजाय एक उपकरण के रूप में उस पर काबू पाना सिखाता है। और यह ईसाई जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण है, जो स्वभाव से ही कामुकता और शरीर की सभी भोग-विलास से अलग है। इसलिए, बच्चे के शारीरिक विकास को संयोग पर नहीं छोड़ा जाना चाहिए, बल्कि शुरू से ही सख्त अनुशासन में रखा जाना चाहिए, ताकि बाद में बच्चे को उस व्यक्ति की देखभाल के लिए सौंपा जा सके जो ईसाई जीवन के प्रति शत्रुतापूर्ण होने के बजाय, पहले से ही इसके अनुकूल हो। जो ईसाई माता-पिता वास्तव में अपने बच्चों से प्यार करते हैं, उन्हें यह आशीर्वाद देने के लिए किसी भी चीज़ की, यहाँ तक कि अपने ही माता-पिता के दिल की भी, परवाह नहीं करनी चाहिए। क्योंकि अन्यथा, उनके बाद के प्रेम और देखभाल के सभी कार्य या तो बहुत कम फलदायी होंगे या फिर पूरी तरह से निष्फल ही रहेंगे। शरीर वासनाओं का केंद्र है, और ज़्यादातर सबसे उग्र वासनाओं का, जैसे कि कामुकता और क्रोध। यह वह अंग भी है जिसके माध्यम से राक्षस आत्मा में प्रवेश करते हैं या उसमें वास करते हैं। यह तो स्वयंसिद्ध है कि, ऐसा करते समय, किसी को चर्च का, और उसमें मौजूद किसी भी ऐसी चीज़ का, जो शरीर पर लागू हो सकती है, दृष्टि से ओझल नहीं होना चाहिए; क्योंकि इससे शरीर पवित्र हो जाएगा और उसकी उग्र पशु प्रकृति वश में आ जाएगी।

यहाँ सब कुछ विस्तार से नहीं बताया गया है; केवल शरीर से निपटने के सामान्य तरीके का ही संकेत दिया गया है। जिन लोगों को इसकी आवश्यकता है, उनके लिए व्यवहार में विवरण स्पष्ट हो जाएँगे। इस रूपरेखा से यह भी स्पष्ट है कि जीवन के अन्य सभी समयों में शरीर के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए: क्योंकि हमारे लिए उसका तरीका एक ही है।

शारीरिक आवश्यकताओं के उदय के साथ ही, आत्मा की निम्न शक्तियाँ अपने स्वाभाविक क्रम में स्वयं को प्रकट करने में शीघ्रता करती हैं। देखिए, बच्चा किसी एक वस्तु या दूसरी पर अपनी दृष्टि टिकाना शुरू कर देता है, एक पर अधिक देर तक और दूसरी पर कम देर तक ठहरता है, मानो उसे एक अधिक और दूसरी कम पसंद हो। ये इंद्रियों के उपयोग की पहली हलचलें हैं, जिसके तुरंत बाद कल्पना और स्मृति का जागरण होता है। ये शक्तियाँ शारीरिक और मानसिक गतिविधि के बीच की दहलीज पर खड़ी होती हैं और कल्पना तथा स्मृति एक साथ काम करती हैं, ताकि जो एक से होता है वह तुरंत दूसरे तक पहुँच जाता है। वर्तमान में हमारे जीवन में इनके महत्व को देखते हुए, यह कितना फायदेमंद और हितकर है कि उनकी पहली हलचल को श्रद्धा के क्षेत्र की वस्तुओं से पवित्र किया जाए। पहला प्रभाव स्मृति में गहराई से अंकित रहता है। यह याद रखना चाहिए कि आत्मा दुनिया में एक खाली शक्ति के रूप में प्रवेश करती है; यह केवल बाद में ही विकसित होती है, आंतरिक सामग्री में समृद्ध होती है, और अपनी गतिविधियों में विविधता लाती है। प्रारंभिक सामग्री, इसके निर्माण के लिए पहला पोषण, यह बाहरी रूप से, इंद्रियों से, कल्पना के माध्यम से प्राप्त करती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इंद्रियों और कल्पना की पहली वस्तुओं का स्वभाव कैसा होना चाहिए, ताकि वे न केवल बाधा न डालें, बल्कि आकार ले रहे

ईसाई जीवन को और भी बढ़ावा दें। क्योंकि यह सर्वविदित है कि जैसे शरीर की संरचना पर पहले भोजन का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है, वैसे ही आत्मा जिन पहली वस्तुओं से जुड़ती है, उनका भी आत्मा के चरित्र या उसके जीवन के स्वर पर शक्तिशाली प्रभाव पड़ता है।

विकसित हो रहे इंद्रियाँ कल्पना के लिए सामग्री प्रदान करती हैं; कल्पना की गई वस्तु स्मृति में संग्रहीत हो जाती है और, कह सकते हैं, आत्मा की सामग्री का निर्माण करती है। इंद्रियों को उनके पहले प्रभाव पवित्र वस्तुओं से प्राप्त होने दें: आँखों के लिए एक प्रतिमा और दीपक की रोशनी, कानों के लिए पवित्र भजन, और इसी तरह। बच्चा अपनी आँखों के सामने जो कुछ भी है, उसे अभी तक कुछ नहीं समझता है, लेकिन उसकी आँखें और कान इन वस्तुओं के आदी हो जाते हैं, और जैसे ही वे हृदय पर अधिकार कर लेती हैं, वे अन्य वस्तुओं को पृष्ठभूमि में धकेल देती हैं। परिणामस्वरूप, इंद्रियाँ और कल्पना के प्रथम अभ्यास पवित्र होंगे; बच्चे के लिए इन वस्तुओं की कल्पना करना दूसरों की तुलना में आसान होगा: ऐसी ही उसकी पहली प्रवृत्तियाँ होती हैं। इसके बाद, भविष्य में, सौंदर्य—जो एक तरह से, इंद्रियों और कल्पना के रूपों से स्वाभाविक रूप से जुड़ा होता है—बच्चे को केवल पवित्र रूपों में ही आकर्षित करेगा।

तो, उन्हें बच्चे की रक्षा सभी प्रकार की पवित्र वस्तुओं से करनी चाहिए; फिर भी उन्हें उदाहरणों, चित्रों या वस्तुओं के माध्यम से बच्चे को भ्रष्ट कर सकने वाली कोई भी चीज़ हटा देनी चाहिए। लेकिन फिर, और उसके बाद हमेशा के लिए, यही व्यवस्था बनाए रखनी चाहिए। यह सर्वविदित है कि छवियाँ, चाहे वे किसी भी रूप में आत्मा को छूएँ, कितनी शक्तिशाली रूप से उसे भ्रष्ट कर देती हैं! वह बच्चा कितना दयनीय है, जो अपनी आँखें बंद करके या अकेला रहकर अपने ही विचारों में खो जाता है, और अश्लील—निष्फल, मोहक और जुनून से भरी—छवियों की भीड़ से अभिभूत हो जाता है। यह आत्मा के लिए वैसा ही है, जैसा सिर के लिए धुआँ होता है।

न ही हमें इन शक्तियों की गतिविधि की प्रकृति को भूलना चाहिए। इंद्रियों का कार्य देखना, सुनना, छूना और सामान्य रूप से अनुभव करना और अन्वेषण करना है। इसलिए, वे जिज्ञासा के प्राथमिक उत्तेजक हैं, जो फिर, उनके लिए, कल्पना और स्मृति में प्रवेश करती है और, वहां जड़ जमा लेने के बाद, आत्मा पर एक अजेय तानाशाह बन जाती है। इंद्रियों के बिना रहा नहीं जा सकता: क्योंकि केवल उन्हीं के माध्यम से हम उन चीज़ों को जानते हैं जिन्हें हमें जानना चाहिए, ईश्वर की महिमा और अपने भले के लिए। फिर भी, ऐसा करते समय, जिज्ञासा अपरिहार्य है—बिना किसी उद्देश्य के यह देखने और सुनने की एक अदम्य प्रवृत्ति कि कहाँ क्या हो रहा है और चीजें कैसे घटित होती हैं। तो फिर, आगे कैसे बढ़ना चाहिए? खुद परीक्षण का कार्य ही, अपने आप में, जिज्ञासा का एक रूप है। जिज्ञासा में बिना यह भेद किए कि यह आवश्यक है या नहीं, हर चीज़ को बेतरतीब और बेमतलब ढंग से जानने का प्रयास करना शामिल है। इसलिए, इंद्रियों का प्रयोग संयम और क्रम के साथ करना चाहिए, उन्हें एक ही आवश्यक उद्देश्य की ओर निर्देशित करना चाहिए और आवश्यकता की सचेत भावना के अनुसार काम करना चाहिए—तब जिज्ञासा को कोई पोषण नहीं मिलेगा; अर्थात्, बच्चे को केवल वही अनुभव करने की आदत डालनी चाहिए जो उसके लिए आवश्यक समझा जाता है; और बाकी सब चीजों से परहेज़ करने और मुंह मोड़ने के लिए। फिर, अनुभव करने की क्रिया में ही, एक क्रमिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए—एक वस्तु से दूसरी वस्तु पर, या एक गुण से दूसरे गुण पर नहीं कूदना, बल्कि, उन्हें एक-एक करके जांचना, और बाद में वस्तु की एक उचित मानसिक छवि बनाने का ध्यान रखना। इस प्रकार का अभ्यास बच्चे को अनुमत चीजों के बीच में भी विचलित होने की प्रवृत्ति से मुक्त कर देगा, और उन्हें अपने इंद्रियों को नियंत्रित करना सिखाएगा, और उनके माध्यम से, अपनी कल्पना को नियंत्रित करना सिखाएगा। और वे बिना आवश्यकता के एक चीज़ से दूसरी चीज़ पर नहीं कूदेंगे; परिणामस्वरूप, वे दिन में सपने नहीं देखेंगे या छवियों से विचलित नहीं होंगे, जिससे आत्मा परेशान होगी और उनके भटकते हुए दृष्टिकोणों के उतार-चढ़ाव से धुंधली हो जाएगी। एक बच्चा जो अपनी भावनाओं और कल्पना को नियंत्रित नहीं कर पाता है, वह विचलित और चंचल हो जाता है, एक बेचैनी से पीड़ित रहता है जो उसे एक वस्तु से दूसरी वस्तु की ओर तब तक ले जाएगी जब तक उसकी ऊर्जा समाप्त नहीं हो जाती, और यह सब व्यर्थ ही होता है।

इन क्षमताओं के साथ-साथ, बच्चे में जुनून पैदा होते हैं और वे छोटी उम्र से ही उसे परेशान करने लगते हैं। बच्चा अभी बोल या चल नहीं सकता; उसने अभी-अभी बैठना और खिलौने उठाना सीखा है, फिर भी वह पहले से ही गुस्से में आ जाता है, ईर्ष्या महसूस करता है, चीजों पर अपना हक जताता है, खिसिया जाता है और इसी तरह—संक्षेप में, वह अपने जुनून के प्रभावों को प्रदर्शित करता है। पशु-स्वभाव में निहित यह बुराई हानिकारक है; अतः, इसका मुकाबला इसके पहले ही प्रकट होने पर किया जाना चाहिए। यह कैसे किया जाए, यह निर्धारित करना कठिन है। पूरा मामला माता-पिता की समझदारी पर निर्भर करता है। हालाँकि, निम्नलिखित संकल्प लिया जा सकता है: 1) हर संभव साधन से इन भावों के उदय को रोकना *(संपादक)*; 2) फिर, यदि कोई वासना प्रकट होती है, तो उसे आजमाए हुए और परखे हुए तरीकों का उपयोग करके तुरंत दबा देना चाहिए। इससे उनका जड़ जमाना, या उनकी ओर झुकाव, रोका जा सकेगा। जो वासना सबसे अधिक बार प्रकट होती है,

उसका विशेष ध्यान से उपचार किया जाना चाहिए, क्योंकि वह किसी के जीवन की प्रमुख शासक बन सकती है। वासनाओं को दूर करने का सबसे विश्वसनीय तरीका दैवीय साधनों का उपयोग है। इन्हें श्रद्धा के साथ पुकारना चाहिए। वासना आत्मा की एक घटना है, फिर भी माता-पिता के पास शुरुआत में आत्मा को प्रभावित करने का कोई साधन नहीं होता है... इसलिए, सबसे पहले, प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिए कि वे अपना कार्य पूरा करें। फिर अनुभव उत्साही पिता, माता या दाई के लिए एक और मार्गदर्शक के रूप में काम करेगा। एक बार जब बच्चे में कुछ समझ विकसित हो जाती है, तो तब जुनून के खिलाफ सामान्य उपचारों को नियोजित किया जा सकता है। शुरुआत में ही इनसे हर तरह से लैस हो जाना चाहिए और बच्चे के पालन-पोषण के दौरान इन्हें लागू करना जारी रखना चाहिए, ताकि बच्चा इन्हें नियंत्रित करना सीख सके और इसकी आदत डाल सके, क्योंकि इन जुनूनों के विनाशकारी हमले जीवन के अंत तक नहीं रुकेंगे।

यदि शरीर और निम्न शक्तियों के संबंध में निर्धारित कार्य-पथ का सख्ती से पालन किया जाए, तो आत्मा को एक सच्चे सदाचारी स्वभाव के लिए उत्कृष्ट तैयारी प्राप्त होगी; फिर भी यह केवल तैयारी है; स्वभाव को स्वयं उसके सभी शक्तियों: मन, इच्छा और हृदय पर सकारात्मक कार्यों के माध्यम से विकसित किया जाना चाहिए।

मन के संबंध में। बच्चे जल्द ही बुद्धिमत्ता दिखाते हैं। यह वाक्-शक्ति के साथ-साथ विकसित होती है और जैसे-जैसे वाक्-शक्ति में सुधार होता है, यह बढ़ती है। इसलिए, मन का शिक्षण वाक्-शक्ति के विकास के साथ ही शुरू होना चाहिए। सबसे मुख्य बात यह है कि बच्चे के सामने आने वाली या जिस पर उसका ध्यान देने की आवश्यकता होती है, हर चीज़ के बारे में ईसाई सिद्धांतों पर आधारित ठोस अवधारणाएँ और निर्णय हों: क्या अच्छा और बुरा है, क्या सही और गलत है। यह साधारण बातचीत और प्रश्नों के माध्यम से बहुत आसानी से हासिल किया जा सकता है। माता-पिता आपस में बात करते हैं: बच्चे सुनते हैं और लगभग हमेशा न केवल उनके विचारों को, बल्कि उनके वाक्य-विन्यास और हाव-भाव को भी आत्मसात कर लेते हैं। इसलिए, माता-पिता को, जब वे बोलें, तो हमेशा चीजों को उनके सही नामों से बुलाना चाहिए। उदाहरण के लिए: सच्चा जीवन क्या है, इसका अंत कैसे होगा, सभी चीजें किससे आती हैं, सुख क्या हैं, कुछ रीति-रिवाजों का क्या महत्व है, और इसी तरह। वे अपने बच्चों से बात करें और उन्हें चीज़ें समझाएँ, या तो सीधे तौर पर या, उससे भी बेहतर, कहानियों के माध्यम से: उदाहरण के लिए, क्या भेष बदलना सही है; क्या तारीफ़ मिलना खुशी का स्रोत है, और इसी तरह। या फिर वे अपने बच्चों से पूछें कि वे इस या उस बारे में क्या सोचते हैं, और उनकी गलतियों को सुधारें। थोड़े ही समय में, यह सरल तरीका मामलों का मूल्यांकन करने के लिए ठोस सिद्धांत स्थापित कर सकता है, जो फिर जीवन भर के लिए न सही, तो लंबे समय तक उनके मन में दृढ़ता से बने रहेंगे। इस तरह, सांसारिक अटकलें और वह दुर्भावनापूर्ण, अतृप्त जिज्ञासा को शुरुआत में ही दबा दिया जाएगा। सत्य, संतुष्ट करके मन को बाँधता है। हालांकि सांसारिक अटकलें संतुष्ट नहीं करती हैं और इस प्रकार जिज्ञासा को बढ़ावा देती हैं। उन्हें इससे मुक्त करके, बच्चों पर महान लाभ प्रदान किया जाएगा। और यह उनसे किताबें उठाने से पहले ही हो जाएगा। इसके अलावा, बच्चों को विकृत विचारों वाली किताबें देने से बचना चाहिए, और उनका मन पवित्र और दिव्य दृढ़ता में अछूता रहेगा। इस धारणा पर कि बच्चा अभी बहुत छोटा है, इस तरह उसकी प्रशिक्षण की उपेक्षा करना व्यर्थ है। सत्य सभी के लिए सुलभ है। अनुभव ने दिखाया है कि एक छोटा ईसाई बच्चा दार्शनिकों से भी अधिक बुद्धिमान होता है। आज भी ऐसा ही है, लेकिन पहले यह हर जगह एक सामान्य बात थी। उदाहरण के लिए, शहादत के समय, छोटे बच्चों ने प्रभु उद्धारकर्ता, मूर्तिपूजा की मूर्खता, आने वाले जीवन आदि के बारे में बात की; ऐसा इसलिए था क्योंकि उनकी माँ या पिता ने उन्हें सरल बातचीत में इन बातों को समझाया था। ये सच्चाइयाँ उनके दिलों में इस तरह बस गईं कि वे उनके लिए मरने को भी तैयार हो गए।

जहाँ तक इच्छाशक्ति का सवाल है। एक बच्चा इच्छाओं से भरा होता है: हर चीज़ उसका ध्यान खींचती है, हर चीज़ उसे अपनी ओर आकर्षित करती है और इच्छाएँ जगाती है। अच्छा और बुरा में अंतर करने में असमर्थ, वह सब कुछ चाहता है और जो कुछ भी वह चाहता है उसे करने के लिए तैयार रहता है। अपने हाल पर छोड़ा गया बच्चा अनियंत्रित रूप से शरारती हो जाता है। इसलिए, माता-पिता को बच्चे की मानसिक गतिविधि के इस पहलू की सख्ती से रक्षा करनी चाहिए। इसे उचित सीमाओं के भीतर रखने का सबसे सरल तरीका यह सुनिश्चित करना है कि बच्चे बिना अनुमति के कुछ भी न करें। उन्हें जब भी कोई इच्छा हो तो अपने माता-पिता से मुड़कर पूछने दें: 'क्या मैं यह या वह कर सकता हूँ?' उन्हें अपने और दूसरों के अनुभवों के माध्यम से यह विश्वास दिलाएँ कि बिना पूछे अपनी इच्छाओं पर अमल करना उनके लिए खतरनाक है; उनमें ऐसी मानसिकता विकसित करें कि वे अपनी ही इच्छा से भी डरने लगें। यह स्वभाव सबसे वांछनीय होगा, लेकिन इसे विकसित करना भी सबसे आसान है, क्योंकि बच्चे ज़्यादातर अपने स्वयं के अज्ञान और कमज़ोरी के प्रति सचेत होकर, सवाल पूछने के लिए वयस्कों की ओर मुड़ते हैं; बस इस मामले को ऊँचा उठाकर इसे उनके सामने एक अटूट कानून के रूप में प्रस्तुत करना है। इस तरह की मानसिकता का स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि वे हर बात में अपने माता-पिता की इच्छा के प्रति पूर्ण आज्ञाकारिता और समर्पण दिखाएँगे, अपनी इच्छा के विरुद्ध; कई मामलों में खुद को मना करने का स्वभाव और ऐसा करने

की एक आदत, या कौशल; और, सबसे महत्वपूर्ण बात, यह कड़ी मेहनत से हासिल किया गया विश्वास कि हमेशा अपनी इच्छाओं को नहीं सुनना चाहिए। यह बात बच्चों को अपने ही अनुभवों से सबसे स्पष्ट रूप से समझ में आती है: वे कई चीजों की इच्छा करते हैं, फिर भी जो वे चाहते हैं वह उनके शरीर और आत्मा के लिए हानिकारक होता है। उनकी अपनी इच्छाओं से उन्हें अलग करते समय, हमें बच्चे को अच्छा करने का आदी बनाना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए, माता-पिता स्वयं एक अच्छे जीवन का सच्चा उदाहरण प्रस्तुत करें और अपने बच्चों का परिचय उन लोगों से कराएँ जिनकी मुख्य चिंताएँ सुख और सम्मान नहीं, बल्कि आत्मा का मोक्ष है। बच्चे जल्दी नकल करते हैं। वे कितनी जल्दी अपनी माँ या पिता की नकल करना सीख जाते हैं! यहाँ जो होता है वह उसी के समान है जइसन एक ही सुर में ट्यून किए गए वाद्ययंत्रों के साथ होता है। साथ ही, बच्चों को स्वयं अच्छे कर्म करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए; पहले, उन्हें ऐसा करने के लिए कहा जाना चाहिए, और फिर इस तरह से मार्गदर्शन किया जाना चाहिए कि वे उन्हें अपनी मर्जी से करने लगें। इन कर्मों में सबसे सामान्य हैं: दान, करुणा, दया, सहनशीलता और धैर्य। इन्हें इन सभी बातों का आदी बनाना बिल्कुल भी मुश्किल नहीं है। मौके लगातार आते रहते हैं; बस उन्हें भुनाना होता है। इससे विभिन्न अच्छे कार्यों की ओर झुकाव और सामान्य रूप से, अच्छाई की ओर एक स्वाभाविक प्रवृत्ति उत्पन्न होगी। और अच्छाई करना भी, किसी भी अन्य चीज़ की तरह ही सिखाया जाना चाहिए।

जहाँ तक दिल की बात है। मन, इच्छाशक्ति और निम्न गुणों के ऐसे प्रभाव में, दिल स्वाभाविक रूप से सच्ची और अच्छी भावनाओं को पालने के लिए, वास्तव में आनंद देने वाली चीज़ों में आनंद लेने की आदत डालने के लिए, और उस चीज़ के प्रति बिल्कुल भी सहानुभूति न रखने के लिए झुकाव रखेगा, जो मिठास के भेष में आत्मा और शरीर में ज़हर घोलती है। हृदय आनंद का अनुभव करने और संतुष्ट होने की क्षमता है।

जब मनुष्य ईश्वर के साथ एकता में था, तो उसे दिव्य चीजों में और ईश्वर की कृपा से पवित्र की गई चीजों में आनंद मिलता था। पतन के बाद, उसने यह आनंद खो दिया और इंद्रिय सुखों की लालसा करने लगा। बपतिस्मा की कृपा ने उसे इससे मुक्त कर दिया है, लेकिन इंद्रियवाद एक बार फिर से हृदय को भरने के लिए तैयार है। ऐसा होने देना नहीं चाहिए; हृदय की रक्षा की जानी चाहिए। हृदय में सच्ची रुचि विकसित करने का सबसे प्रभावी साधन चर्च का जीवन है, जिसमें पाले जा रहे बच्चों को लगातार डूबा रहना चाहिए। जो कुछ भी पवित्र है उसके प्रति श्रद्धा की भावना, शांति और आत्मीयता के लिए उसके बीच रहने की मिठास, और सांसारिक घमंड के चमकदार और आकर्षक जालों से विरक्ति—ये बातें हृदय पर इससे अधिक गहराई से अंकित नहीं हो सकतीं। चर्च, पवित्र मंत्र, और प्रतिमाएँ विषय-वस्तु और शक्ति दोनों के मामले में सबसे प्रमुख और सबसे उत्कृष्ट वस्तुएँ हैं। यह याद रखना चाहिए कि किसी का भविष्य का शाश्वत निवास हृदय के स्वाद से निर्धारित होगा, और हृदय का स्वाद वैसा ही होगा जैसा यहाँ निर्मित होता है। यह स्पष्ट है कि थिएटर, मेले के आकर्षण और इसी तरह की चीजें ईसाइयों के लिए अनुपयुक्त हैं।

एक आत्मा जिसे इस प्रकार शांति दी गई है और व्यवस्थित किया गया है, वह अपनी अंतर्निहित अव्यवस्था के कारण, आत्मा के विकास में बाधा नहीं डालेगी। आत्मा, आत्मा की तुलना में अधिक आसानी से विकसित होती है, और आत्मा से पहले ही अपनी शक्ति और सक्रियता प्रकट करती है। इनमें शामिल हैं: **ईश्वर का भय** (जो तर्क के अनुरूप है), **अंतरात्मा** (जो इच्छा के अनुरूप है) और **प्रार्थना** (जो अनुभूति के अनुरूप है)। **ईश्वर का भय** प्रार्थना को जन्म देता है और अंतरात्मा को प्रबुद्ध करता है। यह आवश्यक नहीं है कि यह सब किसी अन्य, अदृश्य दुनिया की ओर निर्देशित हो। बच्चों में इस ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, और वे इन भावनाओं को जल्दी से आत्मसात कर लेते हैं। विशेष रूप से, प्रार्थना बहुत आसानी से सिखाई जा सकती है और यह जीभ के माध्यम से नहीं बल्कि हृदय के माध्यम से होती है। इसीलिए वे स्वेच्छा से और अथक रूप से पारिवारिक प्रार्थनाओं और चर्च सेवाओं में भाग लेते हैं, और उनमें आनंद पाते हैं। इसलिए, उन्हें उनके पालन-पोषण के इस पहलू से वंचित नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि धीरे-धीरे हमारे अस्तित्व के इस पवित्र स्थल से परिचित कराया जाना चाहिए। ईश्वर का भय जितनी जल्दी स्थापित किया जाएगा और प्रार्थना को जगाया जाएगा, उतनी ही दृढ़ता से आने वाले समय के लिए भक्ति की जड़ें स्थापित होंगी। कुछ बच्चों में, यह भावना अपने आप प्रकट हो जाती है, यहाँ तक कि इसके उदय में स्पष्ट बाधाओं के बीच भी। यह काफी स्वाभाविक है। बपतिस्मा में प्राप्त अनुग्रह की भावना, यदि शरीर और आत्मा के गलत विकास से बुझ नहीं जाती है, तो वह हमारी आत्मा को जीवंत किए बिना नहीं रह सकती; और ऐसा करते हुए—क्या इसे अपनी पूरी शक्ति से प्रकट होने से रोक सकता है? हालाँकि, अंतरात्मा को सबसे करीबी मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। मजबूत सिद्धांत, माता-पिता के अच्छे उदाहरण और सद्गुण सिखाने के अन्य तरीकों के साथ, प्रार्थना के संयोजन से, अंतरात्मा को प्रबुद्ध करेंगे और उसमें बाद के सद्गुणपूर्ण कार्यों के लिए एक पर्याप्त आधार डालेंगे। लेकिन सबसे बढ़कर, उनमें अंतरात्मा और आत्म-जागरूकता की प्रवृत्ति को विकसित किया जाना चाहिए। जीवन में चेतना अत्यंत महत्वपूर्ण है; लेकिन जिस आसानी से यह बनती है, उसी आसानी से बच्चों में इसे दबाया भी जाता है। छोटे बच्चों के लिए, उनके माता-पिता की इच्छा ही अंतरात्मा

का कानून और ईश्वर का कानून है। जिस हद तक माता-पिता में विवेक होता है, उन्हें अपने आदेश इस तरह देना चाहिए कि उनके बच्चों को उनका अवज्ञा करने की स्थिति में न लाया जाए; और यदि उन्होंने पहले ही ऐसा कर दिया है, तो उन्हें उन्हें पश्चाताप की ओर झुकाने के लिए अपनी पूरी कोशिश करनी चाहिए। जैसे फूलों के लिए पाला होता है, वैसे ही एक बच्चे के लिए माता-पिता की इच्छा के प्रति अवज्ञा होती है; बच्चा उनकी आँखों में देखने की हिम्मत नहीं करता, स्नेह स्वीकार नहीं करना चाहता, भाग जाना और अकेला रहना चाहता है, जबकि इस बीच, आत्मा कठोर हो जाती है और बच्चा उन्मत्त होने लगता है। यह कितना अच्छा है कि बच्चे को पहले से ही पश्चाताप के लिए तैयार किया जाए, यह सुनिश्चित करने के लिए कि, बिना डर के, विश्वास और आँसुओं के साथ, वे आकर कहें: 'मैंने ऐसा-वैसा गलत किया है।' यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह सब केवल सामान्य मामलों से संबंधित होगा; लेकिन यह भी अच्छा है कि यहाँ भविष्य के लिए एक स्थिर, सच्चे धार्मिक चरित्र की नींव रखी जाती है—गिरने के तुरंत बाद उठने की क्षमता, शीघ्र पश्चाताप और आत्म-शुद्धि की क्षमता का विकास, या आँसुओं के माध्यम से नवीनीकरण।

यह क्रम है: बच्चे को इसमें बढ़ने दें, और उनकी धर्मपरायणता की भावना और विकसित होगी। माता-पिता को उभरती शक्तियों की हर गतिविधि पर नजर रखनी चाहिए और सब कुछ एक ही लक्ष्य की ओर निर्देशित करना चाहिए। यह नियम है: बच्चे की पहली साँस से ही शुरू करना, एक चीज़ के बजाय एक साथ सब कुछ शुरू करना, और यह सब लगातार, समान रूप से, धीरे-धीरे, बिना किसी अचानक उछाल के, धैर्य और अपेक्षा के साथ करना, साथ ही, एक बुद्धिमानी भरी धीरे-धीरी प्रक्रिया का पालन करना, पहले संकेतों पर ध्यान देना और उनका उपयोग करना, इतनी महत्वपूर्ण बात में किसी भी चीज़ को तुच्छ न समझना। विवरण प्रकट नहीं किए जाते; क्योंकि उद्देश्य केवल पालन-पोषण की मुख्य दिशा को इंगित करना है।

यह निर्धारित करना असंभव है कि कोई व्यक्ति कब यह महसूस करता है कि वह एक ईसाई है और एक ईसाई जीवन जीने का स्वतंत्र निर्णय लेता है। व्यवहार में, यह अलग-अलग समय पर होता है: 7, 10, 15 साल की उम्र में, और बाद में। शायद, जैसा कि आमतौर पर होता है, शिक्षा का समय इससे पहले ही आ जाएगा। इस संबंध में, अनिवार्य नियम यह है कि शिक्षा की पूरी अवधि के दौरान पूरे पिछले क्रम को अपरिवर्तित रखा जाए: क्योंकि यह अनिवार्य रूप से हमारी शक्तियों की प्रकृति और ईसाई जीवन की मांगों से उत्पन्न होता है। शिक्षा का क्रम किसी भी तरह से ऊपर वर्णित भावना के विपरीत नहीं होना चाहिए; अन्यथा, वहां स्थापित की गई हर चीज बर्बाद हो जाएगी; अर्थात्, स्कूल के बच्चों को, बिल्कुल शिशुओं की तरह, उनके आसपास के सभी लोगों की भक्ति और चर्च के प्रति उनकी निष्ठा द्वारा संरक्षित किया जाना चाहिए। संस्कारों के माध्यम से, और उन्हें उनके शरीर, आत्मा और पवित्र आत्मा पर भी कार्य करना चाहिए। इस संबंध में, शिक्षा के संदर्भ में, केवल इतना जोड़ना आवश्यक है: पाठ्यक्रम को इस तरह व्यवस्थित किया जाए कि यह स्पष्ट हो कि क्या प्राथमिक है और क्या द्वितीयक। इस विचार को विषयों और समय के आवंटन द्वारा सबसे अच्छी तरह से दर्शाया जाता है। आस्था के अध्ययन को सर्वोपरि माना जाए; अधिकांश समय को धर्मपरायणता के कार्यों के लिए अलग रखा जाए, और संघर्ष की स्थिति में, बाद वाले को अकादमिक अध्ययन पर प्राथमिकता दी जाए; स्वीकृति न केवल अकादमिक सफलता से, बल्कि आस्था और अच्छे चरित्र से भी अर्जित की जाए। सामान्यतः, हमें विद्यार्थियों के मन में यह दृढ़ विश्वास जगाना चाहिए कि हमारा प्राथमिक उद्देश्य ईश्वर को प्रसन्न करना है, जबकि विद्वता एक गौण गुण है, एक क्षणिक घटना, जो केवल इस वर्तमान जीवन की अवधि के लिए उपयोगी है। और इसलिए, इसे किसी भी तरह से इतनी उच्च प्रतिष्ठा नहीं दी जानी चाहिए या इतनी चकाचौंध वाली रोशनी में प्रस्तुत नहीं किया जाना चाहिए कि यह सभी का ध्यान खींच ले और सभी चिंताओं पर हावी हो जाए। ईसाई जीवन की आत्मा के लिए इस वैज्ञानिक दृष्टिकोण और उससे जुड़ी एकांगी व्यस्तता से अधिक विषाक्त और विनाशकारी कुछ भी नहीं है। यह सीधे-सीधे आध्यात्मिक उदासीनता की ओर ले जाता है और फिर व्यक्ति को हमेशा के लिए उसी अवस्था में रख सकता है; वास्तव में, यदि परिस्थितियाँ इसके अनुकूल हों तो यह नैतिक पतन का भी कारण बन सकता है।

एक और बिंदु जिस पर ध्यान देना आवश्यक है, वह है सिखाने की भावना या सिखाए जा रहे विषयों के प्रति दृष्टिकोण। यह एक अटूट नियम के रूप में स्थापित किया जाना चाहिए कि एक ईसाई को सिखाई जाने वाली ज्ञान की हर शाखा ईसाई सिद्धांतों से, और वह भी रूढ़िवादी सिद्धांतों से, ओत-प्रोत होनी चाहिए। ज्ञान की हर शाखा ऐसा करने में सक्षम है, और वास्तव में, जब तक वह इस शर्त को पूरा नहीं करती, तब तक वह अपने आप में एक सच्चा विज्ञान नहीं हो सकती। ईसाई सिद्धांत निस्संदेह सत्य हैं। इसलिए, बिना किसी हिचकिचाहट के, उन्हें सत्य के सार्वभौमिक मानक के रूप में स्वीकार करें। हमारी सबसे खतरनाक भूल यह है कि विज्ञानों को सच्चे विश्वास की परवाह किए बिना पढ़ाया जाता है, और यह मानकर कि विश्वास और विज्ञान दो पूरी तरह से अलग-अलग क्षेत्र हैं, खुद को छूट और यहाँ तक कि झूठ बोलने की आज़ादी दे दी जाती है। हमारे पास केवल एक ही आत्मा है। यही आत्मा है जो विज्ञान को ग्रहण करती है और उनके सिद्धांतों से पोषित होती है, ठीक वैसे ही जैसे यह विश्वास को ग्रहण करती है और उससे परिपूर्ण होती है। तो फिर, वे यहाँ संपर्क में आने में कैसे विफल हो सकते हैं—

चाहे वह अनुकूल हो या प्रतिकूल? इसके अलावा, सत्य का केवल एक ही क्षेत्र है। तो फिर, हम अपने मन को उन चीजों से क्यों भरें जो इस क्षेत्र से संबंधित नहीं हैं, या जिनके साथ हम इसके उज्ज्वल दरबार में उपस्थित नहीं हो सकते?

यदि शिक्षा इस तरह से संचालित की जाए कि पाठों की प्रकृति और शिक्षण की भावना, दोनों ही रूपों में, छात्रों के मन में विश्वास और विश्वास की भावना से जीवन जीने को सर्वोपरि स्थान मिले, तो इसमें कोई संदेह नहीं कि बचपन में रखी गई नींव न केवल संरक्षित रहेगी, बल्कि ऊँचाई, मजबूती और उचित परिपक्वता भी प्राप्त करेगी। और यह कितना फायदेमंद है!

यदि किसी व्यक्ति का पालन-पोषण प्रारंभिक वर्षों से ही इस प्रकार किया जाए, तो धीरे-धीरे, उन्हें उस जीवन की प्रकृति का पता चल जाएगा जिसे उन्हें जीना चाहिए; वे इस विचार के आदी हो जाएंगे कि ईश्वर और हमारे उद्धारकर्ता की ओर से, उनके उपदेशों के अनुसार जीने और कार्य करने का उनका कर्तव्य है; कि अन्य सभी मामले और प्रयास इनसे निम्न हैं और केवल इस वर्तमान जीवन की निरंतरता के रूप में ही उपयुक्त हैं; और यह कि रहने के लिए एक और स्थान, एक और मातृभूमि है, जिसकी ओर मनुष्य को अपने सभी विचारों और सभी इच्छाओं को निर्देशित करना चाहिए। अपनी क्षमताओं के विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया में, हर कोई स्वाभाविक रूप से यह महसूस करने लगता है कि वह मानव है। लेकिन यदि उनकी क्षमताओं और उनकी गतिविधि के जागने के ठीक पहले क्षण में ही (बपतिस्मा के समय) उनकी प्रकृति में एक नया, अनुग्रह-पूर्ण ईसाई सिद्धांत स्थापित कर दिया जाए, और यदि, बाद में, इन क्षमताओं के विकास के हर चरण में, यह नया सिद्धांत न केवल सर्वोपरि नहीं रहा, बल्कि इसके विपरीत, हमेशा हावी रहा, मानो हर चीज़ को आकार दे रहा हो, तो, आत्म-जागरूकता प्राप्त करने पर, एक व्यक्ति एक ही समय में खुद को ईसाई सिद्धांतों के अनुसार कार्य करते हुए पाएगा; वह खुद को एक ईसाई पाएगा। और यही वास्तव में ईसाई पालन-पोषण का मुख्य उद्देश्य है: कि, परिणामस्वरूप, कोई व्यक्ति अपने आप से कह सके कि वह एक ईसाई है। हालाँकि, यदि पूर्ण आत्म-जागरूकता प्राप्त करने के बाद, वे कहते हैं: 'मैं एक ईसाई हूँ, जो उद्धारकर्ता और ईश्वर द्वारा इस प्रकार और इस तरह से जीने के लिए बंधा हूँ, ताकि आने वाले जीवन में उन्हें और उनके चुने हुए लोगों के साथ धन्य सहभागिता के योग्य माना जा सके,' — तो, स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद, या एक आत्म-निर्धारित, तर्कसंगत जीवन शैली स्थापित करने के बाद, वह अपना पहला आवश्यक कार्य ईसा मसीह के प्रति श्रद्धा ( ) के स्वतंत्र संरक्षण और उस भक्ति की भावना को पुनः प्रज्वलित करना निर्धारित करेगा, जिसमें वह पहले किसी और के मार्गदर्शन में चलता था।

पहले यह उल्लेख किया गया था कि एक विशिष्ट क्षण होना चाहिए जब किसी को जानबूझकर अपनी चेतना में ईसाई धर्म के सभी दायित्वों को नवीनीकृत करना चाहिए और उनके जुए को एक अपरिवर्तनीय कानून के रूप में अपने ऊपर लेना चाहिए। बपतिस्मा के समय, इन्हें सचेत रूप से स्वीकार नहीं किया गया था; बाद में, इन्हें दूसरे के मन के अनुसार, दूसरे की प्रवृत्ति के अनुसार और सादगी में अधिक बनाए रखा गया। अब किसी को सचेत रूप से मसीह का अच्छा जुआ अपने ऊपर लेना होगा, मसीही जीवन शैली का चुनाव करना होगा; स्वयं को पूरी तरह से परमेश्वर को समर्पित करना होगा, ताकि फिर वह अपने शेष जीवन तक उत्साह के साथ उनकी सेवा कर सके। केवल यहीं पर कोई व्यक्ति वास्तव में अपनी इच्छा से मसीही जीवन शुरू करता है। यह पहले उनके भीतर था, लेकिन, कहा जा सकता है, यह उनकी अपनी पहल से नहीं, बल्कि यूँ कहें कि उनके अपने व्यक्तित्व से नहीं, उत्पन्न हुआ था। अब वह स्वयं, अपने अधिकार में, एक ईसाई की भावना से कार्य करना शुरू करेगा। तब मसीह का प्रकाश उसमें पहले दिन के प्रकाश की तरह था: अपरिभाषित, प्रसारित। लेकिन जैसे प्रकाश को सूर्यों और ग्रहों के केंद्रों की ओर आकर्षित होकर केंद्रित होने की आवश्यकता थी, वैसे ही इस प्रकाश को भी, एक तरह से, हमारे जीवन के प्रारंभ बिंदु, हमारी चेतना के चारों ओर इकट्ठा होना चाहिए। एक व्यक्ति तब पूरी तरह से मानव बनता है जब वह आत्म-ज्ञान और तर्कसंगत स्वतंत्रता प्राप्त करता है, जब वह अपने विचारों और कर्मों का पूर्ण स्वामी और निर्णायक बन जाता है, कुछ विचारों को केवल इसलिए नहीं थामे रहता कि दूसरों ने उन्हें दिया है, बल्कि इसलिए कि वह स्वयं उन्हें सत्य पाता है। ईसाई धर्म के भीतर भी, एक व्यक्ति व्यक्ति ही रहता है। इसीलिए उन्हें यहाँ भी तर्कसंगत होना चाहिए; बस उन्हें इस तर्कशीलता को पवित्र धर्म के लाभ की ओर निर्देशित करना चाहिए। उन्हें तर्कसंगत रूप से खुद को यह विश्वास दिलाना चाहिए कि जिस पवित्र धर्म का वे पालन करते हैं, वह मोक्ष का एकमात्र सच्चा मार्ग है, और अन्य सभी मार्ग, जो इसके विपरीत हैं, विनाश की ओर ले जाते हैं। यह किसी व्यक्ति के लिए सम्मान की बात है कि वह एक अंधा अनुयायी न हो, बल्कि इस बात का सचेत हो कि इस प्रकार कार्य करके, वह सही कर रहा है। वह यह सब तब करेगा जब वह सचेत रूप से मसीह का अच्छा जुआ अपने ऊपर उठाएगा।

केवल तभी उसका व्यक्तिगत विश्वास—या उस विश्वास के अनुसार सद्गुणों का जीवन—मजबूत और अटूट होता है। वह बुरे उदाहरणों से भटक नहीं पाएगा, न ही व्यर्थ विचारों से बहकाया जाएगा, क्योंकि वह दृढ़ता से सोचने और कार्य करने के अपने कर्तव्य से स्पष्ट रूप से अवगत है। लेकिन अगर उसने यह महसूस नहीं किया है, तो जैसे पहले एक अच्छे उदाहरण ने उसे वैसे ही काम करने के लिए प्रेरित किया था, वैसे ही अब एक बुरा उदाहरण उसे बुराई की ओर ले जा सकता है और

पाप की ओर धकेल सकता है; और जैसे पहले दूसरों के अच्छे विचार आसानी से और बिना किसी प्रतिरोध के उसके मन पर हावी हो जाते थे, वैसे ही अब बुरे विचार उस पर हावी हो जाएँगे। और अनुभव दिखाता है कि उस व्यक्ति में, जिसने पहले खुद को एक ईसाई के रूप में नहीं पहचाना है, विश्वास का बयानी और जीवन की अच्छाई कितनी अस्थिर होती है। जो कम प्रलोभनों का सामना करता है, वह लंबे समय तक हृदय की सादगी में बढ़ता रहेगा। लेकिन जो उनसे बच नहीं सकता, वह बड़े खतरे का सामना करता है। हम उन सभी के जीवन में देखते हैं जिन्होंने बपतिस्मा की कृपा को बनाए रखा है कि एक ऐसा क्षण था जब उन्होंने दृढ़ संकल्प के साथ खुद को ईश्वर को समर्पित कर दिया था। इसका वर्णन इन शब्दों से किया गया है: 'उसकी आत्मा प्रज्वलित हो उठी', 'वह एक दैवीय इच्छा से आग में जल उठा'।

अपने आपको एक ईसाई के रूप में पहचान लेने, या ईसाई जीवन जीने का सचेत संकल्प करने के बाद, अब उसे अत्यंत सावधानी से उस जीवन की पूर्णता और पवित्रता को बनाए रखना चाहिए जो उसे उसके शुरुआती वर्षों से प्राप्त हुई है, ठीक वैसे ही जैसे दूसरों ने उसके पहले इसे बनाए रखा है। उसे मार्गदर्शन के लिए किसी विशेष नियम की पेशकश करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस संबंध में, वह उस पश्चातापी के समकक्ष है, जिसने पाप से मुंह मोड़कर, एक ईसाई जीवन जीने का दृढ़ संकल्प अपनाया है। इसलिए, इस बिंदु से आगे, उसे उन्हीं नियमों द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए जो पश्चातापी के लिए हैं, जिन पर तीसरे खंड में चर्चा की जाएगी।

पूर्णता की उनकी खोज में, उसके और पश्चातापी के बीच का अंतर अपने आप स्पष्ट हो जाएगा।

अब केवल किशोरावस्था के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक कुछ—हालांकि बहुत महत्वपूर्ण—सावधानियाँ प्रस्तुत करना शेष है। यह कितना लाभदायक और उद्धारकारी है कि न केवल ईसाई भावना में पाला-पोसा जाए, बल्कि बाद में किशोरावस्था में प्रवेश करने से पहले स्वयं को ऐसा ही पहचाना जाए और ईसाई बनने का संकल्प लिया जाए। यह आवश्यक है, उन महान खतरों को देखते हुए जिनका सामना एक युवा व्यक्ति अनिवार्य रूप से करता है: 1) उसकी उम्र की प्रकृति के कारण, और 2) इस अवधि के दौरान उसके सामने आने वाले महान प्रलोभनों के कारण।

1. हमारे जीवन की नदी से युवावस्था का लहराता हुआ मार्ग गुज़रता है। यह वह समय है जब शारीरिक और आध्यात्मिक जीवन उबलता है। बच्चा और किशोर शांत रहते हैं; पुरुष में कुछ ही आवेगपूर्ण उफान होते हैं; सम्माननीय सफेद बाल शांति की ओर झुकते हैं; केवल युवावस्था ही जीवन से लबरेज़ होती है। इस समय लहरों के प्रचंड आक्रमण का सामना करने के लिए बहुत मजबूत पकड़ होनी चाहिए। अपनी ही हलचल का अव्यवस्था और आवेग खतरनाक होता है। अपनी पहली स्वतंत्र गतिविधियाँ शुरू होती हैं—जागृति की शक्तियों की पहली हलचल—और वे व्यक्ति के लिए आकर्षण का केंद्र होती हैं: अपने प्रभाव की ताकत से, वे मन और हृदय में पहले से बसी हर चीज़ को विस्थापित कर देती हैं। जो कभी था, वह एक सपने, एक पूर्वाग्रह बन जाएगा। केवल उसकी वर्तमान भावनाएँ ही सच्ची हैं; केवल उन्हीं में वास्तविकता और महत्व है। लेकिन यदि, इन शक्तियों के जागने से पहले, उसने खुद को ईसाई आस्था और जीवन शैली के प्रति एक प्रतिबद्धता से बाँध लिया है, तो अन्य सभी आवेग, गौण होने के कारण, कमजोर होंगे और पहले वाले की मांगों के आगे अधिक आसानी से झुक जाएंगे—बस इसलिए कि बाद वाले पुराने हैं, उन्हें पहले ही हृदय द्वारा परखा और चुना जा चुका है, और, सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि, वे एक शपथ द्वारा सीलबंद हैं। युवा दृढ़ निश्चय कर चुक ा है कि वह हमेशा अपना वचन निभाएगा। ऐसे व्यक्ति के बारे में क्या कहा जा सकता है जिसने न केवल ईसाई जीवन और सत्य से प्रेम नहीं किया, बल्कि उनके बारे में सुना भी नहीं है?

इस मामले में, वह बिना बाड़ का एक घर है, जिसे लूट के लिए खुला छोड़ दिया गया है, या सूखी लकड़ी, जिसे आग में जलने के लिए छोड़ दिया गया है। जब एक युवक के मन की चंचलता हर चीज़ पर संदेह की छाया डालती है, जब वह अपनी इच्छाओं के उभार से बहुत परेशान होता है, जब उसकी पूरी आत्मा प्रलोभन भरे विचारों और आवेगों से भर जाती है—तो वह युवक आग में है। अगर उसके हृदय से सत्य, सद्गुण और पवित्रता के लिए कोई आवाज़ न उठे, तो उसे ठंडक पहुँचाने के लिए ओस की एक बूँद कौन देगा, या मदद का हाथ कौन बढ़ाएगा? और यह तब तक नहीं उठेगी जब तक कि इन चीज़ों के प्रति प्रेम पहले उसके भीतर जड़ न जमा ले। ऐसे मामले में तो सलाह भी कोई मदद नहीं करेगी। तब उसे देना व्यर्थ है। सलाह और मनाना तब शक्तिशाली होते हैं, जब वे कान से होकर हृदय में प्रवेश करके उन भावनाओं को जगाते हैं जो पहले से ही मौजूद हैं और हमारे लिए कीमती हैं, लेकिन जो उस समय अन्य चीजों से केवल धुंधली हो गई हैं, जबकि हम स्वयं उन्हें मुक्त करने और उन्हें उनकी उचित शक्ति देने का रास्ता नहीं खोज पाते। इस मामले में, सलाह सलाहकार की ओर से युवक के लिए एक कीमती उपहार है। लेकिन अगर दिल में एक पवित्र जीवन के बीज नहीं हैं, तो इसका कोई फायदा नहीं है।

एक युवक अपना जीवन जीता है, और उसकी भावनाओं और झुकावों को कौन समझ सकता है? यह तो हवा में एक पक्षी के रास्ते या पानी में एक जहाज के मार्ग को समझने जैसा है!! एक जवान आदमी का दिल खट्टे हो रहे तरल के किण्वन जैसा है, या उन तत्वों की गति जैसा है जब वे असमान अनुपात में मिलते हैं। तथाकथित प्रकृति की सभी ज़रूरतें, अपनी जीवंत

बेचैनी में, संतुष्टि की तलाश में अपनी आवाज़ बुलंद करती हैं। जैसे हमारी प्रकृति में अव्यवस्था व्याप्त है, वैसे ही इन आवाज़ों का योग एक शोरगुल भरी भीड़ के अव्यवस्थित चिल्लाहटों जैसा है। तो फिर उस युवक का क्या होगा, जिसे शुरू से ही अपने कार्यों को किसी प्रकार के क्रम में लाना नहीं सिखाया गया हो, और उसने उन्हें कुछ उच्चतर मांगों के प्रति सख्त आज्ञाकारिता में रखने के लिए खुद को समर्पित नहीं किया हो? यदि इन सिद्धांतों को प्रारंभिक पालन-पोषण के दौरान हृदय में गहराई से बिठा दिया जाए और बाद में उन्हें एक नियम के रूप में सचेत रूप से अपनाया जाए, तो सभी उथल-पुथल, मानो, सतही तौर पर और क्षणिक रूप से होंगी, बिना नींव को हिलाए या आत्मा को अशांत किए।

हम अपने युवा वर्षों से किस तरह के व्यक्ति के रूप में उभरते हैं, यह बहुत हद तक इस बात पर निर्भर करता है कि जब हम उन वर्षों में प्रवेश करते हैं तो हम किस तरह के व्यक्ति होते हैं। एक चट्टान से गिरता पानी नीचे उबलता और घूमता है, और फिर विभिन्न नालियों से चुपचाप बह जाता है। यह युवावस्था का एक रूपक है, जिसमें हर कोई, पानी की तरह झरने में गिर जाता है। इससे दो तरह के लोग उभरते हैं: कुछ दया और कुलीनता से दमकते हैं, दूसरों पर दुष्टता और विलासिता का साया रहता है; और एक तीसरा समूह—मध्यम वर्ग—जो अच्छाई और बुराई का मिश्रण है, जिसे आग की अंगार से उपमित किया जा सकता है, जो कभी अच्छाई की ओर, कभी बुराई की ओर झुकता है, ठीक वैसे ही जैसे एक खराब घड़ी कभी सही, कभी तेज़ और कभी धीमी होती है।

जिसने पहले से ही संकल्प ले रखा है, वह मानो एक मज़बूत छोटी नाव में सुरक्षित है जो पानी को अंदर नहीं आने देती, या उसने भँवर के बीच एक शांत मार्ग बना लिया है। इसके बिना, एक अच्छी परवरिश भी हमेशा बचा नहीं सकती। भले ही कोई व्यक्ति घोर दुराचार में न पड़ता हो, फिर भी यदि वह आंतरिक रूप से केंद्रित नहीं है, तो उसका हृदय—जो एक संकल्प द्वारा अन्य सभी से अलग नहीं है—वासनाओं से चीर-फाड़ दिया जाएगा, और वह अनिवार्य रूप से अपनी युवावस्था से ऊबकर, न तो यहाँ का और न ही वहाँ का, बनकर निकलेगा।

इसलिए, युवावस्था के वर्षों से पहले, न केवल एक अच्छा स्वभाव विकसित करना, बल्कि एक संकल्प के साथ स्वयं को मजबूत करना भी महत्वपूर्ण है—एक सच्चा ईसाई बनने का संकल्प। दृढ़ निश्चयी व्यक्ति स्वयं युवावस्था को आग की तरह डरावना माने, और इसलिए उन सभी अवसरों से दूर रहे जिनमें युवा आसानी से उन्मत्त हो जाता है और अनियंत्रित हो उठता है।

२. युवा अवस्था अपने आप में खतरनाक है; लेकिन इसमें इस उम्र की दो और प्रवृत्तियाँ जुड़ जाती हैं, जो युवा जुनून को और भी तीव्रता से भड़काती हैं और उन्हें और अधिक शक्तिशाली और खतरनाक बना देती हैं। ये हैं: (क) रोमांच की प्यास और (ख) सामाजिकता की प्रवृत्ति। इसलिए, युवावस्था के खतरों से बचने के साधन के रूप में, यह सलाह दी जा सकती है कि इन प्रवृत्तियों को नियंत्रण में लाया जाए, ताकि वे भलाई के बजाय नुकसान न पहुंचाएं।

पहले उत्पन्न हुई सकारात्मक प्रवृत्तियाँ पूरी ताकत से बनी रहेंगी यदि उन्हें दबाया या कुचला नहीं जाता है।

क. **नए अनुभवों की प्यास** एक युवक के कार्यों में एक निश्चित आवेग, निरंतरता और विविधता लाती है। वह सब कुछ स्वयं अनुभव करना चाहता है, सब कुछ देखना चाहता है, सब कुछ सुनना चाहता है, हर जगह जाना चाहता है। उसे वहाँ खोजें जहाँ आँखों के लिए भव्यता, कानों के लिए सामंजस्य और गति के लिए जगह हो। वह हमेशा नए और इसलिए विविध प्रभावों की एक अखंड धारा के संपर्क में रहना चाहता है। वह घर पर शांत नहीं बैठ सकता, एक जगह नहीं ठहर सकता, एक ही वस्तु पर ध्यान केंद्रित नहीं कर सकता। उसका तत्व मनोरंजन है। लेकिन यह उसके लिए पर्याप्त नहीं है; वह वास्तविक, व्यक्तिगत अनुभव से संतुष्ट नहीं है, बल्कि दूसरों के प्रभावों को आत्मसात करना और, मानो, उन्हें अपनाना चाहता है, यह पता लगाने के लिए कि दूसरों ने क्या महसूस किया और उन्होंने अकेले या अपने जैसी परिस्थितियों में कैसे काम किया। तब वह खुद को किताबों में झोंक देता है और पढ़ना शुरू कर देता है; वह एक के बाद दूसरी किताब पढ़ता जाता है, अक्सर उनका सार समझे बिना ही; उसका मुख्य उद्देश्य तथाकथित 'प्रभाव' पाना होता है, चाहे विषय-वस्तु कुछ भी हो और वह किसी भी क्षेत्र से संबंधित हो। नवीनता, जीवंतता और हाज़िरजवाबी ही वे सर्वोत्तम गुण हैं जो कोई किताब उसे दे सकती है। यहाँ भी, हल्के-फुल्के साहित्य के प्रति एक झुकाव उभरता है और आकार लेता है—प्रभावों की वही प्यास, बस एक अलग रूप में। लेकिन इतना ही नहीं। वह युवक अक्सर वास्तविकता से, उस चीज़ से थक जाता है, जो, मानो, उस पर बाहर से थोपी गई हो: यह उसे बाधित करती है और उसे कुछ निश्चित सीमाओं के भीतर बहुत कसकर बाँध देती है, जबकि वह एक निश्चित स्वतंत्रता की तलाश में रहता है। तब वह अक्सर वास्तविकता से अलग हो जाता है, अपनी ही बनाई हुई दुनिया में चला जाता है, और वहाँ मन की इच्छा से काम करने लगता है। उसकी कल्पना उसके लिए पूरी कहानियाँ रचती है, जिनमें, ज़्यादातर, हीरो खुद वही होता है। वह युवक अभी-अभी जीवन में कदम रख रहा है। उसके सामने एक मोहक, आकर्षक भविष्य पड़ा है। समय आने पर, उसे भी वहाँ अपनी जगह बनानी है: वह क्या बनेगा? क्या इस पर्दे को उठाकर एक नज़र डालने का कोई तरीका नहीं है? कल्पना,

जो इस उम्र में विशेष रूप से सक्रिय होती है, तुरंत संतुष्टि प्रदान करती है। यहीं पर ऐसी गतिविधियों के माध्यम से एक स्वप्निल स्वभाव प्रकट होता है और उसका पोषण होता है।

सपने, हल्की-फुल्की पढ़ाई, मनोरंजन—आत्मा में ये सभी लगभग एक ही हैं: बच्चे छापों के लिए तरसते हैं; वे नए और विविध की लालसा करते हैं। और इनसे होने वाला नुकसान भी एक ही है। इन चीजों से बेहतर कुछ भी एक युवक के दिल में पहले से बोए गए अच्छे बीजों को नहीं दबा सकता। एक ऐसे स्थान पर लगाया गया छोटा पौधा जहाँ हर तरफ से हवाएँ चलती हैं, थोड़ी देर तक तो कष्ट सहता है और फिर मुरझा जाता है; जिस घास पर बार-बार पैर पड़ा जाता है, वह नहीं उगती; शरीर का कोई अंग जो लंबे समय तक घर्षण के अधीन रहता है, सुन्न हो जाता है। यदि कोई दिन-रात के सपनों, बेकार की पढ़ाई या तुच्छ कामों में लिप्त रहता है, तो हृदय और उसमें मौजूद अच्छी प्रवृत्तियों के साथ भी यही होता है। जो कोई भी लंबे समय तक हवा में, विशेषकर नम हवा में, खड़ा रहता है, वह किसी सुरक्षित स्थान में प्रवेश करने पर ऐसा महसूस करता है मानो उसके भीतर का सब कुछ अपनी जगह से हट गया हो; उसी प्रकार की स्थिति उस आत्मा की होती है जो किसी भी प्रकार से विचलित हुई हो। ध्यान भटकने के बाद जब युवक अपने आप में लौटता है, तो वह पाता है कि उसकी आत्मा में सब कुछ बिगड़ चुका है; और, सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि जो कुछ भी अच्छा है वह विस्मृति के एक विशेष आवरण से ढका हुआ है, जबकि केवल छाप द्वारा छोड़ी गई सुखद अनुभूतियाँ ही सामने बनी रहती हैं; परिणामस्वरूप, वह अब वैसा नहीं रहता जैसा वह था और जैसा उसे हमेशा होना चाहिए: प्रवृत्तियों ने अपनी प्रमुखता की जगहें बदल ली होती हैं। तो फिर, आत्मा किसी विचलन के बाद जब स्वयं में लौटती है तो वह तरस क्यों लगने लगती है? क्योंकि वह खुद को लूटा हुआ पाती है। विचलित व्यक्ति ने अपनी आत्मा को एक बड़े राजमार्ग में बदल दिया है, जिसके किनारे कल्पना के माध्यम से मोहक वस्तुएँ छायाओं की तरह गुज़रती हैं और आत्मा को उनका अनुसरण करने का इशारा करती हैं। लेकिन फिर, जब आत्मा इस प्रकार, मानो, स्वयं से ही अलग हो जाती है, तो शैतान चुपके से आकर अच्छे बीज को उठा ले जाता है और बुरे बीज को बो देता है। उद्धारकर्ता इसी बात की शिक्षा देते हैं जब वे समझाते हैं कि रास्ते के किनारे बोए गए बीज को कौन चुरा ले जाता है, और खरपतवार कौन बोता है। दोनों ही मानवता के शत्रु का कार्य हैं।

तो, हे युवक! क्या तुम बचपन की पवित्रता और मासूमियत, या एक निष्कलंक ईसाई जीवन के व्रत को बनाए रखना चाहते हो? अपनी पूरी शक्ति और विवेक से, मनोरंजन, मोहक किताबों के बेतरतीब पठन, और—दिन-दहाड़े सपनों से दूर रहो! ऐसे में, स्वयं को सख्त और कठोर अनुशासन के अधीन रखना और अपनी पूरी जवानी में मार्गदर्शन में रहना, कितना अच्छा है। वे युवा जो वयस्क होने तक अपने व्यवहार को नियंत्रित करने की अनुमति नहीं पाते, उन्हें भाग्यशाली कहा जा सकता है। और हर युवा को प्रसन्न होना चाहिए यदि वह खुद को ऐसी परिस्थितियों में पाता है। बेशक, युवक स्वयं यह मुश्किल से ही हासिल कर सकता है; लेकिन अगर वह दिन-रात सपने देखने या तुच्छ साहित्य पढ़ने के बजाय, अपने कर्तव्यों को निभाने के लिए घर पर अधिक समय बिताने की सलाह पर अमल करता है, तो वह बड़ी बुद्धिमानी दिखाएगा। उसे आलस्य के स्थान पर परिश्रम और दिवास्वप्न के स्थान पर देखरेख में गंभीर कार्यों को अपनाना चाहिए—इस देखरेख के अधीन, विशेष रूप से, पढ़ाई होनी चाहिए, चाहे वह किताबों के चयन में हो या पढ़ने के तरीके में। हालाँकि, जो कोई भी ऐसा करता है, उसे करने दें। एक युवा पुरुष के मन के इस, कह सकते हैं, उथल-पुथल भरे कड़वाहट में ही जुनून, संदेह और उत्साह भड़कते हैं।

बी. एक युवा व्यक्ति में दूसरी, उतनी ही खतरनाक प्रवृत्ति **सामाजिकता की ओर झुकाव** है। यह साथ, दोस्ती और प्रेम की आवश्यकता के रूप में प्रकट होती है। ये सभी अपने उचित क्रम में अच्छे हैं, लेकिन इन्हें उस क्रम में व्यवस्थित करना स्वयं युवा व्यक्ति का काम नहीं है।

युवावस्था तीव्र भावनाओं का समय है। वे उसके हृदय में समुद्र तट पर ज्वार-भाटे की तरह उठती-डूबती हैं। सब कुछ उसे मोहित कर लेता है; सब कुछ उसे चकित कर देता है। प्रकृति और समाज ने अपने खजाने उसके सामने खोल रखे हैं। लेकिन भावनाएँ भीतर छिपी रहना पसंद नहीं करतीं, और वह युवक उन्हें बाँटना चाहता है। इसलिए उसे किसी ऐसे व्यक्ति की ज़रूरत होती है जो उसकी भावनाओं को साझा कर सके—यानी एक साथी और एक दोस्त। यह एक नेक ज़रूरत है, लेकिन यह खतरनाक भी हो सकती है! आप अपनी भावनाओं का भरोसा जिस पर करते हैं, उसे आप एक तरह से, अपने ऊपर अधिकार दे देते हैं। तो फिर एक घनिष्ठ मित्र को चुनने में कितनी सावधानी बरतनी चाहिए! आपको कोई ऐसा व्यक्ति मिल सकता है जो आपको सही रास्ते से बहुत दूर भटका दे। यह कहना बेमानी है कि एक अच्छा व्यक्ति स्वाभाविक रूप से अच्छाई की ओर आकर्षित होता है और बुराई से दूर रहता है। दिल में इसके लिए एक विशेष प्रवृत्ति होती है। लेकिन, फिर भी, कितनी बार मासूमियत चालाकी के झांसे में आ जाती है! इसीलिए हर युवक को मित्र चुनने में सतर्क रहने की सही सलाह दी जाती है। मित्र की परीक्षा किए बिना दोस्ती न करना बुद्धिमानी है। इससे भी बेहतर है कि आपका पहला मित्र आपका पिता हो, या कोई ऐसा व्यक्ति जो कई मायनों में पिता की जगह लेता हो, या कोई रिश्तेदार—जो अनुभवी और दयालु हो। जिसने

ईसाई जीवन जीने का संकल्प लिया है , उसके लिए ईश्वर द्वारा दिया गया पहला मित्र आध्यात्मिक पिता है; उनसे बातचीत करें, अपने रहस्य उन पर भरोसे से बताएं, मामलों पर विचार-विमर्श करें और उनसे सीखें। उनकी मार्गदर्शनाधीन, प्रार्थना के माध्यम से, ईश्वर आवश्यकता पड़ने पर, एक और मित्र भेजेंगे। हालाँकि, दोस्ती में उतना खतरा नहीं है जितना कि केवल संगति में है। हम शायद ही कभी सच्चे दोस्त देखते हैं, बल्कि परिचित और आकस्मिक साथी ही मिलते हैं। और यहाँ, कितनी बुराई संभव है और यह कितनी बार होती है! आकस्मिक साथियों के ऐसे समूह होते हैं जिनके बहुत ही अस्वास्थ्यकर नियम होते हैं। यदि आप उन पर हावी हो जाने देते हैं, तो आप यह भी महसूस नहीं करेंगे कि आप उनसे आत्मा में कैसे जुड़ जाते हैं, ठीक वैसे ही जैसे आप अनजाने में किसी बदबूदार जगह की बदबू में डूब जाते हैं। वे स्वयं अक्सर अपने व्यवहार की अश्लीलता की हर समझ खो देते हैं और बिना किसी दूसरे विचार के अपनी असभ्यता जारी रखते हैं। भले ही यह जागरूकता किसी में जागृत हो जाती है, उनमें इससे अलग होने की ताकत नहीं होती। हर कोई बोलने से डरता है, इस डर से कि उन्हें हर जगह तीखी टिप्पणियों से घेरा जाएगा, और कहता है: 'ठीक है; शायद यह चल जाएगा।' *बुरी संगत अच्छा चरित्र बिगाड़ देती है*(1 कुरिन्थियों 15:33)। हे प्रभु, सभी को शैतान की इन गहराइयों से बचा। जिन्होंने प्रभु की सेवा करने का संकल्प लिया है, उन्हें केवल उन्हीं धर्मपरायण लोगों के साथ मेलजोल रखना चाहिए जो प्रभु की खोज करते हैं; अन्य लोगों से उन्हें अलग हो जाना चाहिए और उनके साथ कोई सच्चा व्यवहार नहीं करना चाहिए, और ईश्वर के संतों के उदाहरण का पालन करना चाहिए।

एक युवक के लिए सबसे बड़ा खतरा विपरीत लिंग के साथ उसके संबंधों में निहित है। जबकि अपनी शुरुआती प्रलोभनों में एक युवक केवल सीधे रास्ते से भटकता है, यहाँ वह खुद को भी खो देता है। अपनी जागृति के शुरुआती चरणों में, यह मामला सुंदरता की लालसा के साथ जुड़ जाता है, जो उसकी जागृति के क्षण से ही, युवक को संतुष्टि की तलाश करने के लिए मजबूर करती है। इस बीच, सुंदरता धीरे-धीरे उसकी आत्मा में आकार लेने लगती है, और यह आमतौर पर एक मानवीय रूप होती है, क्योंकि हमें इससे अधिक सुंदर कुछ भी नहीं मिलता… उसने जो छवि बनाई है, वह युवक के मन को सताती है। इस बिंदु से, वह, मानो, सुंदरता की तलाश करता है—अर्थात, आदर्श, अलौकिक—फिर भी उसी समय वह एक मानव महिला से मिलता है और उससे आहत होता है। ठीक इसी आघात से युवक को हर चीज़ से बढ़कर बचना चाहिए, क्योंकि यह एक और भी खतरनाक बीमारी है क्योंकि इससे पीड़ित पागलपन की हद तक बीमार पड़ना चाहता है।

इस पीड़ा से कैसे बचा जा सकता है? उस मार्ग पर न चलें जो इस प्रकार की चोट की ओर ले जाता है।

एक विशेष मनोवैज्ञानिक ग्रंथ में इस मार्ग को इस प्रकार चित्रित किया गया है। इसमें तीन मोड़ हैं।

सबसे पहले, युवक के भीतर एक निश्चित दुःखद भावना जागती है—वह नहीं जानता कि यह किस बारे में है या कहाँ से आती है—लेकिन यह इस तथ्य से चिह्नित है कि वह ऐसा महसूस करता है मानो वह अकेला हो। यह अकेलेपन की भावना है। इस भावना से, तुरंत ही एक और भावना जन्म लेती है—एक निश्चित आत्म-दया, कोमलता और आत्म-ध्यान। पहले, वह ऐसे जीया था मानो वह खुद से भी अनजान हो। अब वह अपना ध्यान स्वयं पर केंद्रित करता है, स्वयं की जाँच करता है, और हमेशा पाता है कि वह बदसूरत नहीं है, अपने साथियों में सबसे कमतर नहीं है, बल्कि कुछ कीमत वाला एक व्यक्ति है: वह अपनी ही सुंदरता, अपने शरीर की मनभावन बनावट को महसूस करना शुरू कर देता है, या—खुद को पसंद करने लगता है। यह आत्म-मोह के पहले चरण के अंत को चिह्नित करता है। इस बिंदु से, वह युवक अपना ध्यान बाहरी दुनिया की ओर मोड़ता है।

बाहरी दुनिया में यह प्रवेश इस आत्मविश्वास से प्रेरित है कि वह दूसरों को पसंद आएगा। इस आत्मविश्वास के साथ, वह साहसपूर्वक और, मानो, विजयी होकर जीवन के मंच पर कदम रखता है और, शायद पहली बार, सफाई, स्वच्छता और स्मार्टनेस—जो लगभग दिखावेपन तक पहुँचती है—को अपने लिए एक नियम बना लेता है; वह भटकने लगता है, या परिचित बनाने लगता है, मानो किसी निश्चित उद्देश्य के बिना, एक खोजी दिल की गुप्त लेकिन स्पष्ट लालसा से प्रेरित होकर, जबकि अपनी बुद्धिमत्ता, सुखद व्यवहार, विचारशीलता, और वास्तव में हर उस चीज़ से चमकने का प्रयास करता है जिससे वह खुश करने की उम्मीद करता है। साथ ही, वह भावनात्मक संचार के प्राथमिक अंग—आँखों को पूरी छूट दे देता है।

इस मानसिकता में, वह एक चिंगारी के नीचे रखे बारूद की तरह है, और जल्द ही अपनी ही पीड़ा का शिकार हो जाता है। किसी विशेष रूप से मनभावन नज़र या आवाज़ से जैसे किसी तीर से घायल या गोली मारी गई हो, वह पहले तो कुछ हद तक आनंद और सुन्नपन की स्थिति में खड़ा रहता है; होश में आने और संभलने के बाद, वह पाता है कि उसका ध्यान और दिल एक ही वस्तु की ओर मुड़ गए हैं और उसे एक अनिवार्य शक्ति से उसकी ओर खींचा जा रहा है। उस क्षण से, उसका हृदय तड़प से भरने लगता है; वह युवक उदास, अपने में खोया हुआ, किसी महत्वपूर्ण बात में मग्न, जैसे कुछ खो गया हो उसकी तलाश में रहता है, और जो कुछ भी वह करता है, वह उस एक व्यक्ति के लिए और जैसे उसकी उपस्थिति में ही करता है। वह पूरी तरह से खोया हुआ है; उसके मन में नींद और भोजन का ख्याल नहीं आता; उसके रोज़मर्रा के काम-काज भूल जाता है और अस्त-व्यस्त हो जाते हैं; उसे कुछ भी प्रिय नहीं लगता। वह एक भयंकर बीमारी से ग्रस्त है जो उसके दिल को

खाती है, उसकी सांसें घुटती हैं, और जीवन के स्रोत को ही सूखा देती है। इस पीड़ा का क्रम धीरे-धीरे ऐसा ही होता है! और यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि एक युवक को इस दुर्भाग्य में न पड़ने के लिए किन बातों से बचना चाहिए। इस रास्ते पर न चलें! इन अग्रदूतों को दूर भगाएँ—वह अस्पष्ट उदासी और अकेलेपन का एहसास। इनका विरोध करें: यदि आप उदास महसूस करते हैं, तो दिन में सपने न देखें, बल्कि एकाग्रता के साथ कुछ गंभीर काम करना शुरू करें—और यह दूर हो जाएगा। यदि आत्म-दया या अपनी ही श्रेष्ठता की भावना जड़ पकड़ने लगे—तो खुद को होश में लाने के लिए जल्दी करें और इस मूर्खता को अपने प्रति कुछ कठोरता और सख्ती के साथ दूर भगाएँ, खासकर अपने मन में जो कुछ भी आ रहा है उसकी तुच्छता की एक ठोस समझ को स्पष्ट करके। इस मामले में आकस्मिक या जानबूझकर किया गया अपमान आग पर पानी के समान था… आपको इस भावना को दबाने और भगाने के लिए विशेष सावधानी बरतनी चाहिए, ठीक इसलिए क्योंकि यहीं से यह प्रवृत्ति शुरू होती है। यहीं रुक जाइए—आप इससे आगे नहीं बढ़ेंगे: न तो खुश करने की इच्छा, न ही दिखावे और सजने-संवरने की चाह, और न ही घुलने-मिलने की प्रवृत्ति उत्पन्न होगी। यदि ये (भावनाएँ) हावी हो जाएँ—तो इनसे लड़ें। इस मामले में हर चीज़ में सख्त अनुशासन, शारीरिक श्रम और उससे भी अधिक, मानसिक परिश्रम कितना विश्वसनीय सुरक्षा कवच है! अपनी पढ़ाई में तेजी लाएँ, घर पर रहें, मनोरंजन की तलाश न करें। यदि आपको बाहर जाना ही पड़े—तो अपनी भावनाओं को काबू में रखें, विपरीत लिंग से दूर रहें, और सबसे बढ़कर—प्रार्थना करें।

इन खतरों के अलावा, जो युवा होने की प्रकृति से उत्पन्न होते हैं, दो और हैं: पहला, एक ऐसा मानसिक राज्य जिसमें तर्कसंगत ज्ञान, या स्व-इच्छित समझ, आसमान छूने लगता है। वह युवक हर बात पर संदेह की छाया डालना एक लाभ मानता है, और जो कुछ भी उसकी समझ के मानक पर खरा नहीं उतरता, उसे अलग कर देता है। केवल इसी से, वह अपने हृदय से आस्था और कलीसिया की संपूर्ण भावना को काट देता है; परिणामस्वरूप, वह इससे भटक जाता है और अकेला रह जाता है। जिस चीज़ को उसने त्याग दिया है, उसके लिए कोई विकल्प खोजते हुए, वह प्रकट (दिव्य रूप से प्रकट — *संपादक)* सत्य की परवाह किए बिना बनाए गए सिद्धांतों में खुद को झोंक देता है, उनमें खुद को उलझा लेता है, और विश्वास के सभी सत्यों को अपने मन से निकाल देता है। समस्या और भी बड़ी हो जाती है यदि स्कूलों में विज्ञान की शिक्षा इसे एक बहाना प्रदान करती है, और यदि वहाँ ऐसा भाव प्रचलित हो जाता है। वे सोचते हैं कि उनके पास सत्य है, लेकिन इसके बजाय वे अस्पष्ट, खोखले, काल्पनिक विचारों का संचय करते हैं—जो अधिकांश भाग में तो सामान्य ज्ञान के भी विपरीत होते हैं—जो फिर भी, अनुभवहीन लोगों को मोहित कर लेते हैं और जिज्ञासु युवक के लिए एक मूर्ति बन जाते हैं। दूसरा—सांसारिकता। यद्यपि इसके कुछ उपयोगी पहलू हो सकते हैं, किसी युवा व्यक्ति में इसका प्रभुत्व हानिकारक है। इसकी विशेषता इंद्रिय छापों द्वारा शासित जीवन है, एक ऐसी स्थिति जिसमें व्यक्ति शायद ही कभी अपने साथ एकाकार होता है, बल्कि लगभग पूरी तरह से बाहरी दुनिया में डूबा रहता है—चाहे वह कर्म में हो या दिवास्वप्नों में। ऐसी मानसिकता के साथ, वे आंतरिक जीवन और जो लोग इसके बारे में बात करते हैं और उसी के अनुसार जीते हैं, उनसे घृणा करने लगते हैं। उनके लिए, सच्चे ईसाई या तो अमूर्त अवधारणाओं में उलझे हुए रहस्यवादी होते हैं, या पाखंडी, और इसी तरह के लोग। दुनिया की आत्मा, जो उच्च समाज के दायरे में प्रचलित है—और जिसके संपर्क में आने की युवाओं को स्वतंत्र रूप से अनुमति है, और यहां तक कि प्रोत्साहित भी किया जाता है—उन्हें सच्चाई को समझने से रोकती है। इस संपर्क के माध्यम से, दुनिया, अपनी सभी भ्रष्ट धारणाओं और रीति-रिवाजों के साथ, उस युवा के ग्रहणशील आत्मा में समा जाती है—जो इसके लिए तैयार नहीं है, अभी तक इसका विरोध नहीं करता है, बल्कि अभी केवल इसका वातावरण आत्मसात कर रहा है—और उस पर मोम की तरह छा जाती है; और वह अनजाने में ही इसका दास बन जाता है। और इस प्रकार की पुत्रता, मसीह यीशु में परमेश्वर की पुत्रता के विपरीत है।

युवाओं को अपने युवा काल से ऐसे खतरों का सामना करना पड़ता है! और दृढ़ता से खड़ा रहना कितना कठिन है! लेकिन जिसने सदाचार से जीवन व्यतीत किया हो और अपने युवा काल से पहले ही स्वयं को ईश्वर को समर्पित करने का संकल्प ले लिया हो, उसके लिए यह इतना खतरनाक नहीं है; थोड़ा धैर्य, और फिर सबसे शुद्ध और आनंदमय शांति आएगी। बस इस समय एक पवित्र ईसाई जीवन का अपना व्रत बनाए रखें; और बाद में आप एक निश्चित पवित्र दृढ़ता के साथ जिएंगे। जिसने भी युवावस्था के वर्षों को सुरक्षित रूप से पार कर लिया है, वह ऐसा है मानो उसने एक उफनती नदी को पार कर लिया हो और पीछे मुड़कर ईश्वर का धन्यवाद करता है। हालाँकि, अन्य लोग पछतावे से भरे, आँसुओं के साथ पीछे मुड़कर देखते हैं, और खुद को कोसते हैं। जवानी में जो खो जाता है, उसे कभी वापस नहीं पाया जा सकता। क्या जो गिर गए हैं, वे कभी वह प्राप्त कर पाएँगे जो गिरने से बचे हुए लोगों के पास है?

अब तक जो कहा गया है, उससे यह समझना आसान है कि बपतिस्मा की कृपा इतने कम लोग ही क्यों बनाए रखते हैं। पालन-पोषण ही हर चीज़ का कारण है, अच्छा और बुरा दोनों।

बपतिस्मा की अनुग्रह इसलिए संरक्षित नहीं रहती क्योंकि उस पर लागू होने वाले पालन-पोषण के क्रम, नियम और

कानूनों का पालन नहीं किया जाता है। मुख्य कारण हैं: क) चर्च और उसकी अनुग्रह के साधनों से स्वयं को दूर करना। यह मसीही जीवन के अंकुर को दबा देता है, उसे उसके स्रोतों से अलग कर देता है, और यह मुरझा जाता है, ठीक वैसे ही जैसे अंधेरी जगह में रखा फूल मुरझा जाता है; ख) शारीरिक कार्यों की उपेक्षा। लोग सोचते हैं कि शरीर आत्मा को नुकसान पहुँचाए बिना हर तरह से विकसित हो सकता है; फिर भी इसके कार्यों में ही वासनाओं के केंद्र होते हैं, जो शरीर के विकसित होने पर बढ़ते हैं, जड़ जमाते हैं और आत्मा पर कब्जा कर लेते हैं। शारीरिक क्रियाओं में व्याप्त होकर, वासनाएँ उनमें अपना आधार स्थापित करती हैं, या उनसे एक प्रकार का अभेद्य किला बनाती हैं, इस प्रकार आने वाले समय के लिए अपनी शक्ति को सुदृढ़ करती हैं। c) आत्मा की शक्तियों का अंधाधुंध विकास, जो एक ही लक्ष्य की ओर निर्देशित नहीं है। यदि कोई आगे के लक्ष्य को नहीं देखता, तो वह उस तक जाने वाले मार्ग को भी नहीं देखता। अतः, सबसे आधुनिक शिक्षा के प्रति सभी चिंताओं के बावजूद, जिज्ञासा, आत्म-इच्छा और सुख की प्यास को बढ़ावा देने से अधिक कुछ भी हासिल नहीं होता। d) आत्मा की पूर्ण उपेक्षा। प्रार्थना, ईश्वर का भय और अंतरात्मा को शायद ही कभी ध्यान में रखा जाता है। बाहरी शिष्टाचार की मांग की जाती है, जबकि उन भीतरी अवस्थाओं को हमेशा हल्के में लिया जाता है और इसलिए उन्हें हमेशा अपनी मर्जी पर छोड़ दिया जाता है। ई) शिक्षा के दौरान — गौण मामलों द्वारा सबसे महत्वपूर्ण कार्य पर छा जाना, कई अन्य उद्देश्यों द्वारा इसके **एकल उद्देश्य को** अस्पष्ट कर देना, एफ) अंत में, पहले से ही ठोस सिद्धांतों और एक ईसाई जीवन जीने के संकल्प को स्थापित किए बिना किशोरावस्था में प्रवेश करना, और इसके अलावा, युवा जीवन की प्रवृत्तियों को उचित क्रम में रखने में विफल रहना, मनोरंजन, हल्के-फुल्के साहित्य, के माध्यम से रोमांच की प्यास के लिए पूरी तरह से खुद को समर्पित कर देना। सपनों से कल्पना को जगाना, अपने साथियों और विशेष रूप से विपरीत लिंग के साथ बिना सोचे-समझे मेलजोल करना, शिक्षा पर विशेष ध्यान देना और संसार की आत्मा, प्रचलित विचारों, नियमों और रीति-रिवाजों के प्रति भक्ति, जो कभी भी अनुग्रह के जीवन के लिए अनुकूल नहीं होते, बल्कि हमेशा उसके खिलाफ हथियार उठाते हैं और उसे दबाने की कोशिश करते हैं।

इनमें से कोई भी एक कारण अपने आप में ही किसी व्यक्ति के भीतर अनुग्रह के जीवन को बुझाने के लिए पर्याप्त है। लेकिन आमतौर पर ऐसा होता है कि वे एक साथ काम करते हैं, और एक अनिवार्य रूप से दूसरे को आकर्षित करता है; फिर भी, जब इन्हें एक साथ लिया जाता है, तो वे आध्यात्मिक जीवन को इतनी हद तक दबा देते हैं कि कभी-कभी इसका सबसे छोटा सा भी कोई निशान नहीं दिखता, मानो किसी व्यक्ति में कोई आत्मा ही न हो, उसे परमेश्वर के साथ मिलन के लिए बनाया ही न गया हो, उसके पास उस उद्देश्य के लिए निर्धारित कोई शक्तियाँ न हों, और उसे वह अनुग्रह प्राप्त ही न हुआ हो जो उन्हें जीवंत करता है।

पालन-पोषण के प्रति एक विवेकपूर्ण दृष्टिकोण का पालन न किए जाने का कारण या तो ऐसे दृष्टिकोण की अज्ञानता में निहित है या उसकी उपेक्षा में। पालन-पोषण, यदि अपने आप पर छोड़ दिया जाए, तो अनिवार्य रूप से एक विकृत, त्रुटिपूर्ण और हानिकारक मार्ग अपनाता है, पहले पारिवारिक जीवन में और फिर स्कूलिंग के दौरान। लेकिन जहाँ सतही तौर पर पालन-पोषण की उपेक्षा नहीं की जाती और यह मान्यता प्राप्त नियमों के अधीन होता है, वहाँ भी यह अक्सर व्यर्थ साबित होता है और उस उद्देश्य से भटक जाता है, जिस पर इसकी प्रणाली आधारित है। जो उद्देश्य है वह वह नहीं है जो होना चाहिए, और न ही जिसे सर्वोपरि माना जाना चाहिए; अर्थात्, यह ईश्वर को प्रसन्न करना, न ही आत्मा का मोक्ष है, बल्कि कुछ और ही है: या तो केवल प्राकृतिक क्षमताओं का विकास, या पेशेवर भूमिकाओं के अनुकूल होना, या उच्च समाज में जीवन के लिए योग्यता, और इसी तरह। लेकिन जब सिद्धांत अशुद्ध और झूठा हो, तो जो कुछ भी अनिवार्य रूप से उस पर आधारित है, वह अच्छाई की ओर नहीं ले जा सकता।

पहचाने जा सकने वाले मुख्य विचलन हैं: 1) कृपा के साधनों का अस्वीकार। यह इस बात को भूलने का स्वाभाविक परिणाम है कि जिसे शिक्षित किया जा रहा है वह एक ईसाई है और उसके पास केवल प्राकृतिक ही नहीं, बल्कि कृपा से प्राप्त शक्तियाँ भी हैं। और इन साधनों के बिना, एक ईसाई बिना बाड़ वाले बगीचे की तरह है, जिसे घूमते-फिरते दुष्टात्माओं द्वारा रौंदा जाता है, पाप और संसार के तूफान द्वारा तबाह किया जाता है, और उसे रोकने या भगाने के लिए कोई व्यक्ति या कुछ भी नहीं है। 2) वर्तमान जीवन में सुख की तैयारी पर प्रमुख ध्यान, जबकि शाश्वत की स्मृति को दबाया जाता है। यही घर पर कहा जाता है, यही कक्षाओं में चर्चा होती है, और यही दैनिक बातचीत में जोर दिया जाता है। 3) हर चीज़ में बाहरी दिखावे का प्रभुत्व, यहाँ तक कि मंत्रालय को भी नहीं बख्शते।

इस तरह की परवरिश पाकर घर पर तैयार न होने के कारण, मन अनिवार्य रूप से भ्रमित हो जाता है; कोई भी हर चीज़ को गलत नजरों से देखता है; कोई भी हर चीज़ को विकृत तरीके से समझता है, जैसे टूटे या नकली चश्मे से। इसीलिए कोई भी न तो अपने परम सत्य उद्देश्य को सुनना चाहता है और न ही उसे प्राप्त करने के साधनों को। यह सब उनके लिए गौण महत्व की बात है, जैसे कि यह कोई मज़ाक हो।

तब यह निर्धारित करना मुश्किल नहीं है कि ऐसी दयनीय स्थिति को सुधारने के लिए वास्तव में क्या आवश्यक है। जो आवश्यक है वह है:

सच्चे ईसाई पालन-पोषण के सिद्धांतों को पूरी तरह से समझना और आत्मसात करना, और उन पर सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण रूप से घर पर ही अमल करना। घर का पालन-पोषण आगे आने वाली हर चीज़ की जड़ और नींव है। एक बच्चा जिसका घर पर अच्छी तरह से पालन-पोषण हुआ हो और जिसे सही मार्गदर्शन मिला हो, वह एक भ्रामक स्कूल शिक्षा द्वारा सही रास्ते से इतनी आसानी से भटक नहीं पाएगा।

इसके बाद, स्कूल शिक्षा को नए, सच्चे सिद्धांतों के अनुसार पुनर्गठित किया जाना चाहिए, इसमें ईसाई तत्वों को शामिल किया जाना चाहिए, और जो दोषपूर्ण है उसे ठीक किया जाना चाहिए; सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि, पूरी शैक्षिक प्रक्रिया के दौरान, छात्र को पवित्र चर्च के सबसे प्रचुर प्रभाव में रखा जाना चाहिए, जिसका उसकी पूरी संरचना के माध्यम से आत्मा के निर्माण पर उद्धारकारी प्रभाव पड़ता है। इससे पापी प्रभावों के भड़कने से रोका जाएगा, शांति की भावना को बढ़ावा मिलेगा, और गहरे गर्त की आत्मा को दूर भगाया जाएगा। साथ ही, हमें सभी चीजों को सांसारिक से शाश्वत की ओर, बाहरी से आंतरिक की ओर निर्देशित करना चाहिए, और चर्च के बच्चों, स्वर्ग के राज्य के सदस्यों का पालन-पोषण करना चाहिए।

सबसे बढ़कर: 3) उन लोगों के मार्गदर्शन में **शिक्षकों को** प्रशिक्षित करना जो सच्ची शिक्षा को सिद्धांत में नहीं बल्कि अनुभव से जानते हैं। सबसे अनुभवी शिक्षकों की देखरेख में प्रशिक्षित होने के बाद, वे बदले में अपनी कला दूसरों को, उनके अनुयायियों को, और इसी तरह आगे बढ़ाएंगे। एक शिक्षक को ईसाई पूर्णता के सभी चरणों से गुजरना चाहिए ताकि, अपने बाद के कार्य में, वे जान सकें कि स्वयं का आचरण कैसे करें, जिन लोगों को वे शिक्षित कर रहे हैं उनकी प्रवृत्तियों को पहचान सकें, और फिर उन्हें धैर्य, सफलतापूर्वक, शक्तिशाली और फलदायी ढंग से प्रभावित कर सकें। यह सबसे शुद्ध, ईश्वर-चुने हुए और पवित्र व्यक्तियों का वर्ग होना चाहिए। शिक्षा सभी पवित्र कार्यों में सबसे पवित्र है।

अच्छी परवरिश का फल पवित्र बपतिस्मा की कृपा का संरक्षण है। बाद वाला (बपतिस्मा की कृपा) पहले वाले (अच्छी परवरिश) के सभी श्रमों को भरपूर पुरस्कृत करता है। क्योंकि कुछ उत्कृष्ट लाभ उन लोगों के हैं जिन्होंने बपतिस्मा की कृपा को संरक्षित रखा है और अपने शुरुआती वर्षों से ही खुद को ईश्वर को समर्पित कर दिया है।

1. पहला लाभ, मानो अन्य सभी लाभों की नींव, किसी के स्वाभाविक रूप से अनुग्रह-युक्त स्वभाव की अखंडता है। मनुष्य का भाग्य असाधारण रूप से उच्च शक्तियों का एक पात्र होने का है, जो सभी अच्छी चीजों के स्रोत से उस पर प्रवाहित होने के लिए तैयार हैं, बशर्ते कि वह स्वयं को बाधित न करे। और पश्चातापी वास्तव में ईसा मसीह के अनुग्रह से पूरी तरह से चंगा हो सकता है; लेकिन ऐसा लगता है कि उसे यह ज्ञान और अनुभूति उतनी मात्रा में नहीं दी जाती जितनी कि किसी ऐसे व्यक्ति को जो गिरा ही नहीं है, या वह उस पूर्णता में आनंद नहीं ले सकता और न ही उस साहस का स्वामी बन सकता है जो इससे उत्पन्न होता है।

२. इसी स्रोत से, स्वतः ही, सदाचारी आचरण की जीवंतता, सहजता और स्वाभाविकता उत्पन्न होती है। वह भलाई में ऐसे विचरण करता है जैसे वह एक ऐसी दुनिया में हो जो केवल उसकी अपनी हो। पश्चातापी को इस भलाई का आदी होने के लिए बहुत समय तक परिश्रम करना चाहिए, ताकि वह इसे सहजता से अभ्यास कर सके; फिर भी, इसे प्राप्त करने के बाद भी, उसे लगातार स्वयं को तनाव और भय की अवस्था में रखना चाहिए। इसके विपरीत, दूसरा व्यक्ति हृदय की सादगी के साथ, मोक्ष के एक निश्चित विश्वास में जीता है जो उसे सांत्वना देता है—एक ऐसा विश्वास जो भ्रामक नहीं है।

३. फिर उसके जीवन में एक निश्चित स्थिरता और निरंतरता आ जाती है। उसमें न तो उतार-चढ़ाव होते हैं और न ही चूक होती है; और जैसे हमारी साँसें ज़्यादातर स्थिर होती हैं, वैसे ही उसकी सद्गुणों में भी स्थिरता रहती है। यही बात पश्चाताप करने वाले व्यक्ति के लिए भी सच है, लेकिन यह आसानी से प्राप्त नहीं होती और इतनी पूर्णता के साथ प्रकट नहीं होती। एक मरम्मत किया हुआ पहिया अक्सर अपनी खराबी को प्रकट कर देता है; और एक मरम्मत की हुई घड़ी अब बिना मरम्मत की या नई घड़ी जितनी सटीक नहीं रहती।

४. जो कभी गिरा नहीं है, वह सदा जवान रहता है। उसके नैतिक चरित्र के लक्षण एक बच्चे की भावनाओं को दर्शाते हैं, इससे पहले कि वह अपने पिता के सामने दोषी बन जाए। यहाँ निर्दोषता की पहली भावना है, यीशु में बाल्यकाल, जैसे कि, बुराई का अज्ञान। यह उससे कितने बुरे विचारों और हृदय की पीड़ादायक हलचल को दूर कर देता है! तब उसमें असाधारण स्नेह, सच्ची दया और एक कोमल स्वभाव होता है। उसमें, प्रेरित द्वारा उल्लेखित आत्मा के फल अपनी पूरी शक्ति में प्रकट होते हैं: *प्रेम, आनंद, शांति, धीरज, दया, भलाई, विश्वास, नम्रता और आत्म-नियंत्रण* (गलातियों 5:22-23)। ऐसा लगता है मानो वह *दया, कृपा, नम्रता, सौम्यता और धैर्य के* वस्त्र पहने हो (कुलुस्सियों 3:12)। इसके अलावा, वह सच्ची प्रसन्नता, या आध्यात्मिक आनंद बनाए रखता है; क्योंकि उसके भीतर परमेश्वर का राज्य है, जो पवित्र आत्मा में शांति और आनंद है। इसके अलावा, वह

एक विशेष विवेक और बुद्धि से विशेषता प्राप्त है, जो अपने भीतर और अपने चारों ओर सब कुछ देखता है, और यह जानता है कि स्वयं और अपने मामलों का प्रबंधन कैसे किया जाए। उसका हृदय एक ऐसी मानसिक स्थिति अपना लेता है कि वह उसे तुरंत बता देता है कि क्या करना है और कैसे करना है।

अंत में, कहा जा सकता है कि वह असफलता के सामने निडरता, और परमेश्वर में सुरक्षा की भावना से विशेष रूप से पहचाना जाता है। *'हमें परमेश्वर के प्रेम से कौन अलग कर सकता है?'* (रोमियों 8:35)। यह सब मिलाकर, उसे सम्मान के योग्य और प्रिय बनाता है। वह बिना कोशिश किए ही लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता है। दुनिया में ऐसे लोगों का होना ईश्वर की एक महान कृपा है। वे प्रेरितों की सेवा का स्थान लेते हैं। जैसे एक मजबूत चुंबक के चारों ओर लोहे की कणिकाएँ इकट्ठी हो जाती हैं, या जैसे एक मजबूत चरित्र कमजोर लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता है, वैसे ही उनमें निवास करने वाले आत्मा की शक्ति सभी को अपनी ओर आकर्षित करती है, विशेष रूप से उन लोगों को जिनमें आत्मा के बीज मौजूद हैं।

हालाँकि, जिसने अपने युवा वर्षों में अछूता रहा हो, उसमें सबसे प्रमुख नैतिक सद्गुण जीवन भर सद्गुण की एक निश्चित दृढ़ता है। शमूएल एलियाह के घर में सभी प्रलोभनों के बीच और समाज में लोगों के उथल-पुथल के बीच दृढ़ बना रहता है। यूसुफ, अपने दुष्ट भाइयों के बीच, पोटिफर के घर में, जेल में और महिमा में समान रूप से, अपनी आत्मा को निर्दोष रखता है। सचमुच, *मनुष्य के लिए अपनी जवानी में जूआ उठाना अच्छा है* (विलाप 3:27)। *हे मेरे पुत्र! अपनी जवानी से ही ज्ञान प्राप्त करने में अपना मन लगा, और जब तेरे बाल सफेद हो जाएँगे तब भी तू बुद्धि पाएगा। उसे ऐसे ग्रहण कर जैसे कोई जोतता और बोता है, और उसके अच्छे फलों की प्रतीक्षा कर* (सीराख 6:18–20)। धर्मी स्वभाव, मानो, दूसरी प्रकृति बन जाता है, और यदि यह कभी-कभी कुछ विचलित हो भी जाता है, तो यह जल्द ही अपनी मूल स्थिति में लौट आता है। इसीलिए, चेत-मिनेयोट में, हम संतों में अधिकांशतः उन लोगों को पाते हैं जिन्होंने अपने युवावस्था में नैतिक पवित्रता और बपतिस्मा की कृपा को बनाए रखा।

इसके अलावा, जो कोई भी पवित्रता बनाए रखकर, कम उम्र से ही स्वयं को परमेश्वर को समर्पित करता है:

1. परमेश्वर को सबसे प्रसन्न करने वाला कार्य करता है, और उन्हें सबसे स्वीकार्य बलिदान अर्पित करता है — क) क्योंकि, धार्मिकता के नियम के अनुसार, परमेश्वर को आमतौर पर **पहली चीजें** सबसे अधिक प्रसन्न होती हैं: पहले फल, मनुष्यों और जानवरों में से प्रथम-जन्मे, और परिणामस्वरूप, युवावस्था के शुरुआती वर्ष; ख) क्योंकि एक शुद्ध बलिदान अर्पित किया जाता है—एक निर्दोष युवा, जो किसी भी बलिदान से बढ़कर आवश्यक है; ग) क्योंकि यह अपने भीतर और बाहर की काफी बाधाओं को पार करके, और उन सुखों का त्याग करके पूरा किया जाता है जिनकी ओर इस समय व्यक्ति विशेष रूप से आकर्षित होता है।

२. वह परम सावधानी से काम करता है। मनुष्य को स्वयं को ईश्वर को समर्पित कर देना चाहिए, क्योंकि केवल इसी में मोक्ष निहित है। बशर्ते कि, कोई निराशा में न डूबा हो। लेकिन इस समय हमारे लिए उससे बेहतर या अधिक विश्वसनीय कुछ भी नहीं है जिसे हमने पहले अपने भीतर पहचाना था — क्योंकि कौन जाने कल क्या लाएगा? फिर भी, यदि कोई अपना सारा समय ईश्वर को समर्पित किए बिना अधिक समय तक जीने की आशा करता है, तो वह इस के विपरीत जीवन का आदी होकर केवल अपने लिए चीजों को कठिन बना लेगा, और ईश्वर ही जानता है कि क्या वह बाद में खुद पर काबू पा सकेगा। भले ही वे इस पर काबू पा भी लें: ईश्वर को दी जाने वाली कैसी भेंट होगी वह—जो बीमार हो, दुबली-पतली, अंगों से अपंग और अपूर्ण हो? हालाँकि, यह सब होता भी है, पर यह कितना दुर्लभ है! अपनी मासूमियत खो चुके व्यक्ति के लिए उसे वापस पाना कितनी दुर्लभ बात है! जिसने बचपन से ही सदाचारी जीवन नहीं जिया हो, उसके लिए वापस लौटना कितना कठिन है, इसे धन्य ऑगस्टीन ने अपने *कन्फेशन्स* में अपने अनुभव से जीवंत रूप से चित्रित किया है। वे कहते हैं, 'मैंने अपने यौवन के वर्ष तुच्छता और शरारतों में, यहाँ तक कि अशोभनीय प्रकृति की शरारतों में, अपने माता-पिता की अवज्ञा और उपेक्षा में बिताए।' किशोरावस्था की शुरुआत के साथ ही, दुराचार शुरू हो गया, और तीन साल के भीतर मैं इतना पतित हो गया कि, अगले बारह वर्षों तक, मैं सुधार करने का संकल्प तो लेता रहा—लेकिन इसे पूरा करने की कोई ताकत नहीं जुटा सका। यहाँ तक कि जब मैंने हृदय में निर्णायक परिवर्तन की ओर मुड़ भी लिया था, तब भी मैं दो साल तक हिचकिचाता रहा, और एक दिन से दूसरे दिन तक अपने परिवर्तन को टालता रहा। उन शुरुआती जुनूनों ने मेरी इच्छाशक्ति को इतना कमजोर कर दिया था! लेकिन, मेरे दृढ़ परिवर्तन और पवित्र बपतिस्मा के माध्यम से अनुग्रह प्राप्त करने के बाद, मुझे अपने जुनूनों के खिलाफ एक संघर्ष सहना पड़ा, जो मुझे ज़ोरदार तरीके से मेरे पुराने रास्ते पर वापस खींच रहे थे!'

क्या यह आश्चर्य की बात है कि उन लोगों में से बहुत कम ही बच पाते हैं, जिन्होंने अपना यौवन सही तरीके से नहीं बिताया है?! यह उदाहरण सबसे स्पष्ट रूप से उस महान खतरे को दिखाता है जिसका सामना किसी भी ऐसे व्यक्ति को करना पड़ता है, जिसने अपने यौवन में सही मार्गदर्शन प्राप्त नहीं किया है और पहले से ही स्वयं को ईश्वर को समर्पित नहीं किया है।

इसलिए, एक सुदृढ़, सच्ची ईसाई परवरिश प्राप्त करना, उसी के साथ युवावस्था के वर्षों में प्रवेश करना, और फिर, उसी भावना में, वयस्कता के वर्षों में प्रवेश करना, कितना बड़ा आशीर्वाद है।

पश्चाताप के माध्यम से ईसाई जीवन की शुरुआत

या पश्चाताप और पापी के परमेश्वर की ओर लौटने पर

पश्चाताप की संस्कार में ईसाई जीवन कैसे शुरू होता है?

एक ईसाई के रूप में अनुग्रह के जीवन की शुरुआत बपतिस्मा में होती है। लेकिन बहुत कम लोग इस अनुग्रह को बनाए रखते हैं; अधिकांश ईसाई इसे खो देते हैं। हम देखते हैं कि कुछ लोग, अपने वास्तविक जीवन में, अधिक या कम भ्रष्ट होते हैं, जिनमें बुरी प्रवृत्तियाँ विकसित होने और जड़ जमाने की अनुमति दी गई है। शायद कुछ लोगों में अच्छी शुरुआत रखी गई थी, लेकिन उनके युवा के शुरुआती वर्षों में, चाहे अपनी प्रवृत्ति के कारण या दूसरों के प्रलोभन से, वे उन्हें भूल जाते हैं, बुराई की आदत डालने लगते हैं, और अंततः उसी में लिप्त हो जाते हैं। इनमें से किसी के भी भीतर अब एक सच्चा ईसाई जीवन नहीं है; उन्हें इसे फिर से शुरू करना होगा। हमारी पवित्र आस्था इस उद्देश्य के लिए प्रायश्चित की संस्कार प्रदान करती है। *'यदि कोई पाप करे, तो हमारे पास पिता के पास एक वकील है, धर्मी यीशु मसीह'* (1 यूहन्ना 2:1)। यदि आपने पाप किया है, तो अपने पाप को पहचानें और पश्चाताप करें। ईश्वर आपके पाप को क्षमा कर देगा और एक बार फिर आपको *'एक नया हृदय और एक नई आत्मा'* देगा (यहे. 36:26)। इसका कोई दूसरा रास्ता नहीं है: या तो पाप न करें, या पश्चाताप करें। वास्तव में, बपतिस्मा के बाद भटक जाने वालों की बड़ी संख्या को देखते हुए, यह कहना होगा कि हमारे लिए पश्चाताप ही एक सच्चे ईसाई जीवन का एकमात्र स्रोत बन गया है।

यह समझना चाहिए कि, प्रायश्चित की संस्कार में, कुछ लोगों के लिए अनुग्रह के जीवन का वरदान—जो पहले से ही उनमें प्राप्त और सक्रिय है—केवल पुनः जागृत और पुनः प्रज्वलित किया जाता है; दूसरों के लिए, इस जीवन की स्वयं शुरुआत रखी जाती है, या इस जीवन को नए सिरे से प्रदान और प्राप्त किया जाता है। हम इसे इसी बाद वाले दृष्टिकोण से विचार करेंगे।

बाद वाले अर्थ में, यह बेहतर के लिए एक निर्णायक परिवर्तन है, इच्छा का एक मोड़, पाप से मुंह मोड़ना और ईश्वर की ओर मुड़ना, या स्वयं और अन्य सभी को अस्वीकार करते हुए, केवल ईश्वर की विशेष प्रसन्नता के लिए उत्साह की आग का प्रज्वलन है। सबसे बढ़कर जो चीज इसे परिभाषित करती है, वह है इच्छा का यह दर्दनाक मोड़। एक व्यक्ति बुराई का आदी हो गया है; अब, मानो, उसे खुद को ही चीरना पड़ता है। उसने परमेश्वर का अपमान किया है; अब उसे निष्पक्ष न्याय की आग में जलना होगा / पश्चातापी प्रसूति की पीड़ा का अनुभव करता है और, अपने हृदय की भावनाओं में, किसी प्रकार से नरक की यातनाओं को छू लेता है। रोते हुए यिर्मयाह से, प्रभु ने *उसे गिराने और फिर से बनाने, और लगावने की* आज्ञा दी (यिर्म. 1:10)। और पश्चाताप की दुःखी आत्मा प्रभु द्वारा पृथ्वी पर भेजी जाती है ताकि, जो लोग इसे ग्रहण करते हैं, उनमें *'आत्मा और प्राण, जोड़ों और मज्जे तक'* (इब्रानियों 4:12) प्रवेश करके, यह पुराने मनुष्य को ध्वस्त कर दे और नए के निर्माण की नींव रखे। पश्चातापी आत्मा में—कभी भय, कभी क्षीण आशा, कभी पीड़ा, कभी थोड़ी सांत्वना, कभी निकट निराशा का भय, कभी दया की सांत्वना की एक लहर—ये एक-दूसरे के साथ बदलते रहते हैं और उसे क्षय की, या जीवन से विच्छेद की अवस्था में डालते या रखते हैं, जबकि वह फिर भी एक नए जीवन की प्राप्ति की प्रतीक्षा कर रहा होता है।

यह दर्दनाक है, फिर भी उद्धारकारी है, और इतना अपरिहार्य है कि जिसने भी ऐसे दर्दनाक मोड़ का अनुभव नहीं किया है, उसने अभी तक पश्चाताप के माध्यम से जीना शुरू भी नहीं किया है। और इस कसौटी से गुज़रे बिना किसी व्यक्ति के हर तरह से शुद्ध होने की कोई उम्मीद नहीं है। पाप के प्रति दृढ़ और प्रबल प्रतिरोध केवल उससे घृणा करने से ही उत्पन्न होता है; उससे घृणा करने की भावना, उसके द्वारा लाई गई बुराई की अनुभूति से उत्पन्न होती है; और पाप के द्वारा लाई गई बुराई की यह अनुभूति, पश्चाताप के इस दर्दनाक निर्णायक मोड़ के दौरान अपनी संपूर्ण तीव्रता के साथ अनुभव की जाती है। केवल यहीं पर एक व्यक्ति पूरे दिल से महसूस करता है कि पाप कितनी बड़ी बुराई है; केवल तभी वह इससे गेहेना की आग की तरह भागेंगे। हालाँकि, इस दर्दनाक परीक्षा के बिना, भले ही कोई व्यक्ति स्वयं को शुद्ध करने का प्रयास करे, वह केवल सतही तौर पर ही ऐसा करेगा, आंतरिक होने से अधिक बाह्य रूप से, अपने स्वभाव की तुलना में अपने कर्मों में अधिक; और इसलिए उसका हृदय अशुद्ध ही रहेगा, जैसे बिना पिघलाया हुआ अयस्क।

ईश्वरीय अनुग्रह से मानव हृदय में ऐसा परिवर्तन आता है। केवल यही किसी व्यक्ति को स्वयं के विरुद्ध हाथ उठाने, स्वयं को मार डालने और स्वयं को परमेश्वर के लिए बलिदान करने के लिए प्रेरित कर सकता है। *"जब तक मुझे भेजने वाले पिता उन्हें खींच नहीं लाते, कोई भी मेरे पास नहीं आ सकता"* (यूहन्ना 6:44)। *'एक नया हृदय और एक नई आत्मा'* स्वयं परमेश्वर द्वारा दी जाती है (यहेजकेल 36:26)। मनुष्य स्वयं पर तरस खाता है। शरीर और पाप के साथ एक हो जाने के कारण, वह उनके साथ एक हो गया है। केवल एक बाहरी, उच्चतर शक्ति ही उसे अलग कर सकती है और उसे स्वयं के विरुद्ध कर सकती है।

इस प्रकार, पापी का परिवर्तन अनुग्रह से होता है, फिर भी स्वतंत्र इच्छा के बिना नहीं। बपतिस्मा में, अनुग्रह हमें उसी क्षण प्रदान किया जाता है जब यह संस्कार दिया जाता है; जबकि स्वतंत्र इच्छा बाद में आती है और जो दिया गया है उसे हृदय से स्वीकार करती है। हालाँकि, पश्चाताप में, स्वतंत्र इच्छा को परिवर्तन के कार्य में स्वयं भाग लेना चाहिए।

बेहतर के लिए बदलाव, ईश्वर की ओर रूपांतरण, ऐसा प्रतीत होता है कि यह क्षणिक या कुछ ही पलों का होना चाहिए, जैसा कि वास्तव में अक्सर होता भी है। फिर भी, तैयारी में, यह कई चरणों से गुजरता है, जो स्वतंत्रता और अनुग्रह के मिलन को दर्शाते हैं, जिसमें अनुग्रह स्वतंत्रता को अपने वश में कर लेता है, और स्वतंत्रता अनुग्रह के अधीन हो जाती है—ये ऐसे चरण हैं जो सभी के लिए आवश्यक हैं। कुछ लोग इनसे जल्दी गुजर जाते हैं, जबकि दूसरों के लिए यह प्रक्रिया वर्षों तक चलती है। यहाँ जो कुछ भी घटित होता है, उसे कौन समझ सकता है, खासकर जब अनुग्रह का हम पर कार्य करने के तरीके इतने विविध हैं और उन लोगों की अवस्थाएँ जिन पर यह कार्य करना शुरू करता है, अनगिनत हैं? हालाँकि, यह उम्मीद करनी चाहिए कि, इस सारी विविधता के बावजूद, यहाँ परिवर्तन का एक ही सामान्य क्रम है, जिसे कोई भी पार नहीं कर सकता। हर पश्चातापी पाप में जीने वाला व्यक्ति है—और अनुग्रह ऐसे हर व्यक्ति को रूपांतरित करता है। इसलिए, सामान्य रूप से पापी की स्थिति की अवधारणा और स्वतंत्रता तथा अनुग्रह के बीच संबंध के आधार पर, अब इस क्रम का वर्णन करना और नियमों द्वारा इसे परिभाषित करना संभव है।

पापी की दशा

ईश्वर का वचन सामान्यतः पापी को, जिसे पश्चाताप के माध्यम से नवीनीकरण की आवश्यकता है, एक गहरी नींद में डूबा हुआ चित्रित करता है। ऐसे व्यक्तियों की विशिष्ट विशेषता हमेशा स्पष्ट दुष्टता नहीं होती है, बल्कि ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए प्रेरित, आत्म-बलिदानी उत्साह की पूर्ण अनुपस्थिति होती है, जिसके साथ पापपूर्ण सभी चीजों के प्रति दृढ़ अरुचि भी होती है, — यह तथ्य कि धार्मिकता उनकी चिंताओं और परिश्रमों का मुख्य उद्देश्य नहीं है; कि, कई अन्य बातों से चिंतित होने के बावजूद, वे अपनी मुक्ति के प्रति पूरी तरह से उदासीन हैं, वे उस खतरे को महसूस नहीं करते जिसमें वे खुद को पाते हैं, वे एक सदाचारी जीवन के लिए प्रयास नहीं करते, और एक ऐसा जीवन जीते हैं जो विश्वास के प्रति ठंडा है, भले ही कभी-कभी बाहरी रूप से सीधा और निर्दोष हों।

यह एक सामान्य विशेषता है। विशिष्ट रूप से कहें तो, अनुग्रह से रहित व्यक्ति ऐसा ही होता है।

ईश्वर से मुंह मोड़ लेने के बाद, एक व्यक्ति स्वयं पर ध्यान केंद्रित करता है और अपने पूरे जीवन और गतिविधि का प्राथमिक लक्ष्य स्वयं को बना लेता है। ऐसा आंशिक रूप से इसलिए है क्योंकि ईश्वर के अलावा, उनके लिए स्वयं से बड़ा कुछ भी नहीं है; लेकिन विशेष रूप से इसलिए क्योंकि, पहले ईश्वर से हर परिपूर्णता प्राप्त करने के बाद, और अब उनसे रिक्त हो जाने के कारण, वे स्वयं को भरने का कोई रास्ता खोजने के लिए जल्दी करते हैं और प्रयास करते हैं। ईश्वर से दूर होने के कारण उसके भीतर बनी हुई यह रिक्तता उसमें एक ऐसी प्यास को निरंतर भड़काती है जिसे कुछ भी शांत नहीं कर सकता—एक अनिश्चित लेकिन अनंत प्यास। मनुष्य एक अतल गहराई बन गया है; वह अपनी पूरी ताकत से इस गहराई को भरने का प्रयास करता है, फिर भी वह न तो किसी तृप्ति को देखता है और न ही महसूस करता है। यही कारण है कि वह अपना पूरा जीवन पसीने, मेहनत और कड़ी मेहनत में बिताता है: विभिन्न वस्तुओं में व्यस्त रहता है, जिनसे उसे उस प्यास से राहत मिलने की उम्मीद होती है जो उसे भीतर से खाए जा रही है। ये वस्तुएँ उसका सारा ध्यान, सारा समय और सारी गतिविधि खींच लेती हैं। यही वह प्राथमिक भलाइयाँ हैं जिनमें वह अपने दिल से जीता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि एक व्यक्ति, जिसने स्वयं को ही अपने प्रयास का एकमात्र उद्देश्य बना लिया है, वह कभी भी अपने भीतर शांति से नहीं रहता, बल्कि वह पूरी तरह से स्वयं से बाहर, व्यर्थता द्वारा बनाई या आविष्कार की गई चीजों में रहता है। वह परमेश्वर से दूर हो गया है, जो सभी चीजों की पूर्णता है; वह स्वयं खाली है; उसे, मानो, अनंत रूप से विविध चीजों में बिखरने और उनके भीतर रहने के लिए छोड़ दिया गया है। इस प्रकार पापी अपनी आत्मा और ईश्वर के बाहर की वस्तुओं, अनेक और विविध चीजों के लिए लालसा करता है, उनकी परवाह करता

है और स्वयं को उनमें व्यस्त रखता है। यही कारण है कि पापी जीवन की एक विशेषता यह है कि मोक्ष के प्रति लापरवाही के बीच, अनेक चीजों की चिंता और **अत्यधिक चिंता** होती है (देखें लूका 10:41)।

इस अत्यधिक चिंता की बारीकियाँ और अंतर आत्मा के भीतर बने रिक्त स्थानों की प्रकृति पर निर्भर करते हैं। उस एक को भूल जाने वाले मन की रिक्तता, जो सर्वस्व है, व्यापक ज्ञान की इच्छा, पूछताछ, प्रयोग और जिज्ञासा को जन्म देती है। सर्वस्व की स्वामित्व खो देने वाली इच्छा की रिक्तता, अनेक इच्छाओं, अनेक वस्तुओं के स्वामित्व या सार्वभौमिक प्रभुत्व के लिए प्रयत्न को जन्म देती है, ताकि सब कुछ हमारी इच्छा के अधीन हो, हमारे हाथ में हो—यही आत्म-स्नेह है। सर्वस्व में आनंद खो देने के कारण हृदय की रिक्तता, अनेक और विविध सुखों की प्यास, या उन अनगिनत वस्तुओं की खोज को जन्म देती है, जिनमें हम अपनी आंतरिक और बाह्य इंद्रियों की तृप्ति की आशा करते हैं। इस प्रकार, पापी, जो ज्ञान, संपत्ति और सुखों की खोज में लगातार व्यस्त रहता है, उनमें आनंद लेता है, उनका स्वामित्व प्राप्त करता है और उनका प्रयोग करता है। यह एक चक्र है जिसमें वह अपने पूरे जीवन भर फँसा रहता है। जिज्ञासा पुकारती है; हृदय मिठास का स्वाद चखने के लिए तरसता है और इच्छाशक्ति को बांध लेता है। कोई भी व्यक्ति एक ही दिन के लिए अपनी आत्मा की गतिविधियों पर ध्यान देकर स्वयं देख सकता है कि ऐसा ही है।

यदि पापी को अपनी ही हालत पर छोड़ दिया जाए तो वह इसी चक्र में बना रहेगा: जब हम पाप की दासता में होते हैं तो हमारी प्रकृति ऐसी ही होती है। लेकिन यह चक्र इस तथ्य से हजार गुना बढ़ जाता है और कहीं अधिक जटिल हो जाता है कि पापी अकेला नहीं है। लोगों की एक पूरी दुनिया है जो ठीक यही करती है—जो दूसरों को सताती है, जो भोग-विलास में लिप्त रहती है, जो धन इकट्ठा करती है—जिन्होंने इन सभी मामलों में इन प्रथाओं को व्यवस्थित किया है, उन्हें कानूनों के अधीन किया है, और उन्हें अपने क्षेत्र के सभी लोगों के लिए एक आवश्यकता बना दिया है; जो, पारस्परिक संपर्क के माध्यम से, अनिवार्य रूप से एक-दूसरे के संपर्क में आते हैं, एक-दूसरे से घिसते हैं, और इस घर्षण में अपनी जिज्ञासा, आत्म-संतुष्टि और आत्म-तृप्ति को दस, सौ और हजारों गुना बढ़ा देते हैं, और सभी सुख, आनंद और जीवन को अपने विनाश में डाल देते हैं। यह **एक व्यर्थ की दुनिया** है, जिसके प्रयास, रीति-रिवाज, नियम, संबंध, भाषा, मनोरंजन और अवधारणाएँ—सब कुछ, सबसे छोटे से लेकर सबसे बड़े तक—उपरोक्त अति-संरक्षणवाद की तीन उपज की भावना से ओत-प्रोत हैं, और शांति-प्रिय की भावना के निराशाजनक विनाश का कारण बनती हैं। इस संपूर्ण संसार के साथ एक जीवित मिलन में रहते हुए, हर पापी इसकी हजार-गुना जाल में उलझ जाता है, इस कदर इसमें लिपट जाता है कि वह स्वयं भी दिखाई नहीं देता। दुनियावी सोच वाले पापी के पूरे अस्तित्व और उसके हर अंग पर एक भारी बोझ होता है, इसलिए उसमें दुनिया के तरीकों के विपरीत थोड़ी सी भी हरकत करने की ताकत नहीं बचती, क्योंकि ऐसा करने के लिए उसे, मानो, एक हजार पूड का वजन उठाना पड़ेगा। इसीलिए कोई भी इतना अतिकठिन कार्य हाथ में नहीं लेता, और न ही कोई इसके बारे में सोचता भी है; इसके बजाय, हर कोई उसी राह पर चलता रहता है जिसमें वह गिर चुका है।

मामले को और भी बदतर बनाने के लिए, इस संसार का अपना एक राजकुमार है, जो धूर्तता, दुर्भावना और धोखे के अनुभव में सबसे कुशल है। पतन के बाद आत्मा के साथ मिल जाने वाले शरीर और भौतिकता के माध्यम से, उसे उस तक मुक्त पहुँच प्राप्त है; और, पास आकर, वह उसमें विभिन्न तरीकों से जिज्ञासा, आत्म-संतुष्टि और आत्म-तृप्ति को भड़काता है; अपनी विभिन्न छल-कपटों से वह उन्हें बिना किसी निकास के फँसाए रखता है; विभिन्न प्रलोभनों से वह उन्हें इन इच्छाओं को पूरा करने की योजनाएँ बनाने के लिए प्रेरित करता है, और फिर या तो उन्हें इन्हें पूरा करने में मदद करता है, या फिर और भी मजबूत योजनाओं का सुझाव देकर उन्हें बर्बाद कर देता है—यह सब एक ही उद्देश्य के साथ: इन अवस्थाओं में उनके बने रहने की अवधि को लंबा और गहरा करना। यही सांसारिक दुर्भाग्यों और सफलताओं का सिलसिला है, जिन्हें ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त नहीं है। इस राजकुमार के पास बहुत सारे सेवक हैं, जो उसके अधीन द्वेष की आत्माएँ हैं। वे हर क्षण पूरी आबादी वाली दुनिया में तीव्र गति से इधर-उधर घूमते हैं, यहाँ कुछ और वहाँ कुछ और बोते हैं, पाप के जाल में फँसे लोगों को उलझाते हैं, कमजोर या टूट चुके बंधनों को फिर से मजबूत करते हैं — और, सबसे बढ़कर, यह सुनिश्चित करते हैं कि कोई भी अपने बंधनों से मुक्त होने और स्वतंत्रता में कदम रखने के बारे में सोच भी न सके। दूसरी स्थिति में, वे उस भटकी हुई आत्मा के चारों ओर इकट्ठा होने के लिए जल्दी करते हैं, पहले एक-एक करके, फिर टुकड़ियों और सेनाओं में, और अंत में एक पूरी फौज के रूप में—और यह विभिन्न भेषों में और विभिन्न साधनों से—सभी भागने के रास्तों को अवरुद्ध करने के लिए, धागों और जालों को फिर से कसने के लिए, और, एक अन्य रूपक का उपयोग करने के लिए, उन लोगों को खाई में वापस धकेलने के लिए जो इसकी खड़ी ढलानों से बाहर चढ़ना शुरू कर चुके हैं। इन आत्माओं के अदृश्य साम्राज्य में विशेष स्थान—सिंहासन—हैं, जहाँ योजनाएँ बनाई जाती हैं, आदेश जारी किए जाते हैं, और एजेंटों की मंजूरी या फटकार के साथ रिपोर्टें प्राप्त की जाती हैं। सेंट जॉन द थियोलोजियन के शब्दों में, ये 'शैतान की गहराइयाँ' हैं। पृथ्वी पर, उनके मानवीय अनुयायियों के क्षेत्र

में, ये स्थान दुष्टों और भ्रष्ट व्यक्तियों, विशेष रूप से अविश्वासियों और ईश्वर-निंदकों के गठबंधन हैं, जो अपने कर्मों, शब्दों और लेखों के माध्यम से, हर जगह पाप के अंधकार को फैलाते हैं और ईश्वर के प्रकाश को धुंधला करते हैं। जिस माध्यम से वे यहाँ अपनी इच्छा और शक्ति को व्यक्त करते हैं, वह सांसारिक रीति-रिवाजों का कुल योग है, जो पापी तत्वों से परिपूर्ण हैं, और जो लगातार धोखा देते हैं और परमेश्वर से ध्यान भटकाते हैं।

पाप के क्षेत्र की यही प्रकृति है! प्रत्येक पापी पूरी तरह से इसमें डूबा होता है, फिर भी वह मुख्य रूप से किसी एक विशेष बात में ही व्यस्त रहता है। और यह एक बात सतह पर कभी-कभी काफी सहनीय, और यहाँ तक कि प्रशंसनीय भी लग सकती है। शैतान की एक ही चिंता है: कि जो भी चीज़ किसी व्यक्ति को पूरी तरह से व्याप्त कर ले—जहाँ उसकी चेतना, ध्यान और हृदय निहित हो—वह केवल और विशेष रूप से ईश्वर न हो, बल्कि उससे परे कुछ और हो; ताकि, अपने मन, इच्छाशक्ति और हृदय से उसी से चिपककर, वे उसे ईश्वर के स्थान पर रख लें और केवल उसी में संलग्न रहें, उसी की खोज करें, उसी में आनंद लें और उसी पर अधिकार करें। यहाँ, न केवल क के शारीरिक और भावनात्मक जुनून, बल्कि सम्मानजनक प्रतीत होने वाली चीजें—जैसे विद्वता, कलात्मकता और सांसारिक चिंताएं—भी उन बंधनों के रूप में काम कर सकती हैं जिनसे शैतान अंधाधुंध पापियों को अपने दायरे में बांधे रखता है, और उन्हें होश में आने से रोकता है।

यदि कोई पापी को, उसकी आंतरिक प्रवृत्ति और स्थिति को देखे, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि, यद्यपि उसके पास कभी-कभी बहुत ज्ञान हो सकता है, वह परमेश्वर के मामलों और अपनी स्वयं की मुक्ति के विषय में अंधा है; कि, यद्यपि वह लगातार परेशानियों और चिंताओं से घिरा रहता है, वह अपनी मुक्ति सुनिश्चित करने के मामले में निष्क्रिय और लापरवाह है; कि यद्यपि वह अपने हृदय में निरंतर चिंता या आनंद का अनुभव कर रहा है, वह सभी आध्यात्मिक बातों के प्रति पूरी तरह से असंवेदनशील है। इस संबंध में, उसके अस्तित्व की सभी शक्तियाँ पाप से ग्रस्त हैं, और पापी अंधापन, आलस्य और असंवेदनशीलता से विशेषता रखता है। वह अपनी दशा को नहीं देखता, और इसलिए वह अपनी स्थिति के खतरे को नहीं समझता; वह स्वयं के लिए खतरे को नहीं समझता, और इसलिए वह इससे छुटकारा पाने की परवाह नहीं करता। उसे यह भी नहीं लगता कि उसे बदलने और उद्धार पाने की आवश्यकता है। उसे पूरी, अटूट निश्चितता है कि वह अपनी सही जगह पर है, कि उसे कुछ भी चाहने की जरूरत नहीं है, और कि सब कुछ ठीक वैसा ही रहना चाहिए जैसा है। और इसलिए वह जीवन के किसी अलग तरीके की किसी भी याद दिलाने को अपने लिए अनावश्यक मानता है; वह उस पर कोई ध्यान नहीं देता, उसका उद्देश्य भी नहीं समझ पाता—वह उससे कतराता है और उससे भागता है।

ईश्वर की कृपा का कार्य

हम कह चुके हैं कि एक पापी गहरी नींद में डूबे व्यक्ति के समान है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति जो गहरी नींद में सोया हो, चाहे कोई भी खतरा आ जाए, वह अपने आप नहीं जागेगा और न ही उठेगा जब तक कोई बाहरी व्यक्ति आकर उसे न जगा दे—उसी प्रकार, जो व्यक्ति पाप की नींद में डूबा हो, वह होश में नहीं आएगा और न ही उठेगा जब तक दिव्य अनुग्रह उसकी सहायता के लिए न आए। ईश्वर की असीम दया के द्वारा, यह सभी के लिए तैयार है, सभी तक पहुँचती है, और प्रत्येक को स्पष्ट रूप से पुकारती है: *'हे सोने वाले, जाग उठो, और मरे हुओं में से उठो, और मसीह तुम पर प्रकाश करेंगे'* (इफिसियों 5:14)।

पापियों की तुलना सोने वालों से करने वाला यह उपमा, उनके ईश्वर की ओर मुड़ने की व्यापक परीक्षा के लिए एक रूपरेखा प्रदान करता है। अर्थात्: सोया हुआ व्यक्ति जागता है, उठता है, और अपने कामकाज में लगने की तैयारी करता है। और जो पापी ईश्वर की ओर मुड़ता है और पश्चाताप करता है, वह अपनी पापी नींद से **जाग उठता है**, परिवर्तन का **संकल्प** लेता है (उठता है) और, अंत में, प्रायश्चित और पवित्र कुम्भम के संस्कारों के माध्यम से एक नए जीवन के लिए **शक्ति से परिपूर्ण हो जाता है** (कार्रवाई के लिए तैयार)। व्यर्थ पुत्र की दृष्टान्त कथा में, इन क्षणों का वर्णन इस प्रकार किया गया है: *'होश में आना'—उसे* अपनी गलती का एहसास हुआ; *'मैं उठकर चलूँगा'*—उसने अपने पुराने जीवन को पीछे छोड़ने का संकल्प लिया; और *'वह उठकर चला गया';* और वह अपने पिता से कहता है: *'मैंने पाप किया है'*—पश्चाताप; और पिता उसे सुंदर वस्त्र पहनाता है (धर्मसिद्धि और पापों से मुक्ति) और उसके लिए एक भोज तैयार करता है (पवित्र सहभागिता) (लूका 15:11–32)।

इस प्रकार, पापियों के परमेश्वर की ओर रूपांतरण में तीन चरण हैं: 1) पाप की निद्रा से जागना; 2) पाप को त्यागने और स्वयं को परमेश्वर की सेवा के लिए समर्पित करने के संकल्प तक की उन्नति; 3) प्रायश्चित और पवित्र सहभागिता के संस्कारों के माध्यम से इस कार्य के लिए स्वर्गीय सामर्थ्य से युक्त होना।

पापी का पाप की निद्रा से जागना

पापी का जागना उसके हृदय में ईश्वर की कृपा का एक कार्य है, जिसके परिणामस्वरूप वह, जैसे नींद से जागा हुआ व्यक्ति, अपनी पापी प्रकृति को **देखता है**, अपनी स्थिति के खतरे को **महसूस करता है**, अपने लिए डरना शुरू कर देता है, और इस बात की **चिंता करता है** कि वह अपनी दुर्भाग्य से कैसे छुटकारा पाए और उद्धार पाए। पहले, वह उद्धार के संबंध में अंधा, असंवेदनशील और लापरवाह था; अब वह देखता है, महसूस करता है और सावधानी बरतता है। लेकिन यह अभी तक एक परिवर्तन नहीं है, बल्कि परिवर्तन की केवल संभावना और एक आह्वान मात्र है। यहाँ, अनुग्रह केवल पापी से कहता है: 'देखो तुम कहाँ भटक गए हो; अब, उद्धार की ओर कदम बढ़ाओ।' यह केवल उसे उसके आदती बंधनों से मुक्त करता है, उसे उनके बाहर रखता है और वहीं बनाए रखता है, और इस प्रकार उसे एक बिल्कुल नया जीवन चुनने और उसके प्रति खुद को समर्पित करने का अवसर देता है। यदि वह इसका लाभ उठाता है, तो उसके लिए और भी अच्छा है; यदि वह ऐसा नहीं करता है, तो उसे एक बार फिर अलग कर दिया जाएगा, और वह एक बार फिर उसी सुस्ती और विनाश की उसी गहराई में डूब जाएगा।

ईश्वर की कृपा यह कार्य उस व्यक्ति के मन और हृदय में उस वस्तु की व्यर्थता और लज्जा को प्रकट करके करती है, जिसके प्रति वे समर्पित हैं और जिसे वे अत्यधिक महत्व देते हैं। जैसे परमेश्वर का वचन *'आत्मा और प्राण, जोड़ों और मज्जा तक भी भेद* करता *है'* (इब्रानियों 4:12), वैसे ही अनुग्रह हृदय और पाप के विभाजन तक प्रवेश करता है, और उनके अवैध संघ और संयोजन को तोड़ देता है । हमने देखा है कि पापी, अपनी संपूर्ण सत्ता के साथ, एक ऐसे क्षेत्र में उतरता है जहाँ सिद्धांत, अवधारणाएँ, निर्णय, नियम, रीति-रिवाज, सुख और आदेश—और बाकी सब कुछ—उस सच्चे आध्यात्मिक जीवन के बिल्कुल विपरीत हैं जिसके लिए मनुष्य का भाग्य निर्धारित है। हालाँकि, इस क्षेत्र में गिर जाने के बाद, वह वहाँ अकेला या अलग-थलग नहीं रहता, बल्कि, सब कुछ में व्याप्त होकर, सभी चीजों में मिल जाता है: वह सभी चीजों में पूरी तरह से मौजूद है। परिणामस्वरूप, उसके लिए इस व्यवस्था के विपरीत किसी भी चीज़ को जानना या उसकी कल्पना भी करना स्वाभाविक नहीं है, और न ही उसके प्रति कोई सहानुभूति रखना। आध्यात्मिक क्षेत्र उसके लिए पूरी तरह से बंद हो जाता है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि परिवर्तन का द्वार केवल इस शर्त पर खुल सकता है कि पापी की चेतना के समक्ष आध्यात्मिक जीवन का क्रम अपनी पूरी स्पष्टता के साथ प्रकट हो—और केवल प्रकट ही न हो, बल्कि हृदय को भी छू जाए; जबकि पापी जीवन का क्रम लज्जित, अस्वीकार और बर्बाद हो जाए—यह भी उसकी चेतना और भावनाओं के समक्ष। तभी पहले को त्यागने और दूसरे में प्रवेश करने की इच्छा उत्पन्न हो सकती है। यह सब ईश्वर की उस कृपा के एक ही कार्य में पूरा होता है जो पापी की आत्मा को जगाती है।

अपने कार्य करने के तरीके में, ईश्वर की प्रेरक कृपा हमेशा न केवल उन बंधनों को ध्यान में रखती है जिनमें पापी बंधा हुआ है, बल्कि पापी की विशेष स्थिति को भी ध्यान में रखती है। इस बाद वाले संबंध में, सबसे बढ़कर, हमें अनुग्रह के कार्य में अंतर को ध्यान में रखना चाहिए जो यह उन पर कार्य करते समय प्रकट करता है जो कभी प्रेरित नहीं हुए हैं, और उन पर जिन्होंने पहले ही इस प्रेरणा का अनुभव किया है। जिसने कभी एक बार भी प्रेरणा का अनुभव नहीं किया है, उसे यह, ऐसा कह सकते हैं, एक उपहार के रूप में, एक सार्वभौमिक, प्रारंभिक या बुलाने वाले अनुग्रह के रूप में दिया जाता है। उससे पहले से कुछ भी मांगा नहीं जा सकता, क्योंकि उसका पूरा अस्तित्व ही गलत दिशा में निर्देशित होता है। लेकिन जिस व्यक्ति में पहले ही हलचल हो चुकी है, जिसने जान और महसूस किया है कि मसीह में जीवन क्या है, और जो फिर से पाप के आगे झुक गया है, उसे यह हलचल एक मुफ्त उपहार के रूप में नहीं दी जाती है। उससे पहले से ही कुछ अपेक्षित होता है। उसे, मानो, इसे अभी भी अर्जित करना और भीख माँगनी होती है; केवल इसकी इच्छा करना ही नहीं, बल्कि इस अनुग्रह-पूर्ण उत्तेजना को आकर्षित करने के लिए स्वयं प्रयास भी करना होता है—ऐसा व्यक्ति, अपने पूर्व ईसाई अनुशासन की अवस्था को याद करते हुए, अक्सर एक बार फिर इसके लिए तरसता है, फिर भी अपने ऊपर काबू पाने में विफल रहता है; वह अपनी चाल-ढाल सुधारना चाहता है, लेकिन खुद को नियंत्रित नहीं कर पाता या खुद पर विजय प्राप्त नहीं कर पाता। वह निराशाजनक शक्तिहीनता की स्थिति में है, उसे अपनी ही हाल पर छोड़ दिया गया है क्योंकि उसने स्वयं पहले इस वरदान को त्याग दिया था, 'क्योंकि *उसने अनुग्रह के आत्मा को दुःखी किया और परमेश्वर के पुत्र के लहू को तुच्छ जाना*' (इब्रानियों 10:29)। अब उसे यह एहसास कराया जाता है कि यह अनुग्रह-पूर्ण शक्ति कितनी महान है, विशेष रूप से इसलिए क्योंकि यह आसानी से प्रदान नहीं की जाती है। खोजो और प्रयास करो, और उसे प्राप्त करने की कठिनाई के माध्यम से, उसका मूल्य जानना सीखो। ऐसा व्यक्ति स्वयं को एक कुछ हद तक पीड़ादायक स्थिति में पाता है: वह प्यासा है पर उसकी प्यास नहीं बुझती, वह भूखा है पर उसका पेट नहीं भरता, वह खोजता है पर नहीं पाता, वह प्रयास करता है पर प्राप्त नहीं करता। कुछ लोगों को बहुत, बहुत लंबे

समय तक इसी अवस्था में छोड़ दिया जाता है, यहाँ तक कि उन्हें, मानो, ईश्वर द्वारा अस्वीकार किए जाने का अनुभव होने लगता है, जैसे कि ईश्वर उन्हें भूल गए हों और त्याग दिया हो, उन्हें शाप के हवाले कर दिया हो, ठीक वैसे जैसे कोई भूमि जिस पर कई बार बारिश हुई हो, फिर भी वह बंजर ही रह जाती है (देखें इब्रानियों 6:7–8)। लेकिन खोजी के हृदय को छूने में अनुग्रह में यह देरी केवल एक परीक्षा है। जब परीक्षा का समय समाप्त हो जाता है, तो प्रेरित आत्मा उसकी मेहनत और गंभीर खोज को पहचानते हुए, एक बार फिर उस पर उतरता है, ठीक वैसे ही जैसे दूसरों पर यह स्वतंत्र रूप से (बिना किसी योग्यता के - *संपादक)* उतरता है / उद्धार की कृपा का यह कार्य-प्रणाली हमें बताती है: क) पापी को जगाने में परमेश्वर की कृपा के असाधारण कार्य, और ख) उत्तेजक कृपा का वरदान प्राप्त करने का सामान्य क्रम।

पापियों को उनकी पापी निद्रा से जगाने में ईश्वर की अनुग्रह की असाधारण क्रियाएँ

कृपा में जीवन जीने वालों के लिए, इन कार्यों को जानना उनकी आत्माओं के उद्धार के लिए आवश्यक है, ताकि, पापियों के प्रति ईश्वर की महान देखभाल को देखकर, वे उसकी अनुपम कृपा की महिमा करें और हर अच्छे काम के लिए ऊपर से सहायता की आशा से प्रेरित हों। जहाँ तक दिव्य भलाई की खोज करने वालों का प्रश्न है, उनके लिए इन कार्यों को जानना विशेष रूप से आवश्यक है, क्योंकि इनमें अनुग्रह-भरी प्रेरणा की विशेषताएँ कहीं और की तुलना में अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त होती हैं; हमें यह निर्धारित करने के लिए कि जो हम अनुभव कर रहे हैं वह अनुग्रह-भरी प्रेरणा है, इन विशेषताओं को पूरी तरह से जानना और समझना चाहिए, — और यदि कोई पहले से ही कार्य कर रहा है, तो यह निर्धारित करने के लिए कि वे एक अनुग्रह-पूर्ण प्रेरणा से कार्य कर रहे हैं या आत्म-निर्मित उत्साह से। एक सच्चा ईसाई जीवन अनुग्रह से जिया गया जीवन है। एक आत्म-निर्मित जीवन, चाहे वह कितना भी सुंदर क्यों न लगे और ईसाई जीवन के रूपों का कितना भी करीबी से पालन क्यों न करे, वह कभी भी ईसाई नहीं होगा। इसकी शुरुआत अनुग्रह-भरी प्रेरणा में निहित है; जो कोई भी इसकी सुनेगा, वह बाद में कभी भी अनुग्रह-भरी मार्गदर्शन और संगति से वंचित नहीं होगा, जब तक कि वे इसके आवेगों के प्रति वफादार रहते हैं। इसीलिए हमें अपने लिए स्पष्ट रूप से यह निर्धारित करना चाहिए कि क्या हमारे भीतर कोई अनुग्रह-भरी प्रेरणा है, या कभी रही है। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए, कोई यह कह सकता है: स्वयं को उस अनुग्रह-पूर्ण हलचल की विशेषताओं से परखें जो असाधारण परिस्थितियों में प्रकट होती हैं, क्योंकि वे असाधारण परिस्थितियों और जीवन के सामान्य क्रम दोनों में समान होती हैं — बस पहले में वे अधिक जीवंत, अधिक स्पष्ट और अधिक विशिष्ट रूप से प्रकट होती हैं।

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, अनुग्रह-पूर्ण हलचल के दौरान, किसी की चेतना के भीतर एक आत्म-तुष्ट, पापी जीवन की पूरी स्थापित व्यवस्था तुरंत बिखर जाती है, और एक अलग, बेहतर दिव्य व्यवस्था—वह एकमात्र सच्ची और आनंदमय व्यवस्था—व्यक्ति के सामने प्रकट हो जाती है। संक्षेप में, इस व्यवस्था को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है: पवित्र त्रिमूर्ति में पूजे जाने वाले ईश्वर, जिन्होंने संसार की रचना की और उसका पालन-पोषण करते हैं, हमें, पतितों को, प्रभु यीशु मसीह में, पवित्र आत्मा की कृपा से, पवित्र चर्च के मार्गदर्शन और संरक्षण में, पृथ्वी पर परीक्षा और पीड़ा के जीवन के माध्यम से बचाते हैं, जो आने वाले जीवन में शाश्वत, अनंत आनंद की ओर ले जाता है। यह व्यक्तियों, घटनाओं, संस्थानों और उन सिद्धांतों को एक साथ लाता है जिनके द्वारा सभी चीजों को नियंत्रित किया जाता है। यह संपूर्ण क्रम अनुग्रह के कार्य द्वारा पापी मनुष्य की आत्मा में जीवंत रूप से अंकित है; और, इसके और स्वयं मनुष्य—उसके स्वभावों—और हर उस चीज़ के बीच के विरोधाभास को स्पष्ट रूप से प्रकट करके, जिससे वह पहले जीता था और जिसमें उसे आनंद आता था, जबकि उसे इसके साथ पूर्ण सामंजस्य और समान विचारधारा में होना चाहिए, यह उस पर गहरा प्रभाव डालता है। इसका हर पहलू व्यक्ति के लिए उसकी पूर्व मूर्खता और कपट के प्रति एक फटकार और निंदा के रूप में काम करता है, जो और भी अधिक प्रभावशाली है क्योंकि, साथ ही, आत्मा पूर्व पापी व्यवस्था की तुच्छ महत्वहीनता को महसूस करती है। इस प्रभाव के तहत, हृदय अपने पूर्व बंधनों से मुक्त हो जाता है और स्वतंत्र हो जाता है, और इसलिए यह जीवन का एक नया तरीका चुनने के लिए स्वतंत्र है। यह अनुग्रह-भरे उत्साह के प्रभाव की सीमा है। यह मन और हृदय में जो कुछ भी पुराना था—सबसे बुरा—उसे नष्ट कर देता है, और केवल नए—सबसे अच्छे—को जीवंत रूप से प्रस्तुत करता है, तथा व्यक्ति को इस स्थिति में, इससे प्रभावित होकर, नए को चुनने या पुराने पर लौटने के लिए स्वतंत्र छोड़ देता है। यह उल्लेखनीय है कि अनुग्रह-भरे उत्साह के साथ हमेशा पराजय की भावना और एक प्रकार का भय जुड़ा रहता है; क्या यह इसलिए है क्योंकि यह अचानक, मानो अनजाने में, पापी को जीवन के चौराहे पर, एक अपराधी की तरह, पकड़ लेता है और उसे ईश्वर के अपरिहार्य न्याय के सामने प्रस्तुत कर देता है; या क्या

यह इसलिए है क्योंकि मन में प्रकट हुआ नया क्रम उसके लिए पूरी तरह से नया है और पुराने के बिल्कुल विपरीत है, — और केवल नया ही नहीं, बल्कि हर तरह से परिपूर्ण और आनंद का स्रोत है, जबकि पहले वाले, उस निरर्थक में, दिल टूटने और टूटी हुई आत्मा के सिवा और कुछ नहीं है।

फिर भी, अनुग्रह-पूर्ण प्रेरणा से उत्पन्न होने वाले सभी अच्छे कार्यों का प्रारंभिक बिंदु इस नए दैवीय व्यवस्था की यह जीवंत जागरूकता है। इस अवधारणा से आगे बढ़ते हुए, आइए हम इस अनुग्रह-पूर्ण क्रिया के सभी पिछले अनुभवों को याद करें। अस्तित्व और जीवन के इस नए क्रम की जागरूकता दो तरीकों से उत्पन्न होती है: (क) कभी-कभी वह क्रम स्वयं, पूरी तरह से या आंशिक रूप से, घटना के माध्यम से पश्चातापी पापी के सामने स्पष्ट रूप से और ठोस रूप में प्रस्तुत किया जाता है; (ख) अन्य समयों में, व्यक्ति की आत्मा इसमें खिंच जाती है और इसे आंतरिक रूप से अनुभव करती है।

A. दयालु प्रभु अपनी दिव्य दुनिया—जिसमें हमारी आत्मा का निवास नियत है—रूपांतरित हो रहे व्यक्ति के मन में विभिन्न तरीकों से प्रकट करते हैं। 1) **अक्सर**, इस उद्देश्य के लिए, वह स्वयं प्रकट होते हैं, किसी रूप में दृश्यमान रूप से, जब व्यक्ति जागृत हो या स्वप्न में हो। इस प्रकार वह दमिश्क की यात्रा पर प्रेरित पौलुस को, महान कॉन्स्टेंटाइन को (21 मई), यूस्टाथियस प्लाकिडेस को (20 सितंबर), ईसाइयों का उत्पीड़न करने जा रहे नीनियास को (यह महान शहीद प्रोकॉपियस हैं; 8 जुलाई), एक सपने में पेटर्मफियस को (9 जुलाई) और कई अन्य लोगों को प्रकट हुए। २) **कभी-कभी** वह परलोक से विभिन्न आकृतियों को भेजने की कृपा करती हैं, चाहे वह स्वयं हों या सपनों में, अपने ही रूप में या किसी अन्य भेष में। इस प्रकार, **परमेश्वर की माता** कई बार प्रकट हुई हैं, या तो अकेले, या शाश्वत शिशु के साथ, या संतों के साथ—एक, दो या कई के साथ: उदाहरण के लिए, संत एंड्रयू द फूल्स फॉर क्राइस्ट (2 अक्टूबर) को एक सपने में परमेश्वर की माता का एक दर्शन हुआ, जिसमें वे शाश्वत शिशु के साथ थीं, जिन्होंने उन्हें अपनी दुल्हन के रूप में स्वयं के साथ सगाई की।

देवदूत कई अवसरों पर, व्यक्तिगत रूप से और पूरे झुंड में प्रकट हुए हैं: उदाहरण के लिए, मसीह के लिए मूर्ख संत एंड्रयू (2 अक्टूबर) को एक सपने में अंधकार की शक्तियों के झुंड के विपरीत पवित्र देवदूतों का पूरा झुंड दिखाया गया था; **संत भी** कई अवसरों पर प्रकट हुए हैं: उदाहरण के लिए, संत मिट्रोफान एक लूथरन डॉक्टर, एक बीमार युवती और कई अन्य लोगों के सामने प्रकट हुए। ३) कभी-कभी वह संपूर्ण संसार स्वयं—और विशेष रूप से उसका क्रम और, यूं कहें कि, उसके मौलिक सिद्धांत—अनजाने मन के सामने किसी आकर्षक छवि में चित्रित किया जाता है, जैसा कि संत एंड्रयू द फूल्स-फॉर-क्राइस्ट के बारे में पहले से ही उद्धृत मामले से और कई अन्य उदाहरणों से स्पष्ट है, जिनमें परिवर्तित हुए लोगों को या तो धर्मी लोगों के आनंदमय निवास दिखाए गए, जैसे कि भारतीय राजा और उसके भाई को, संत थॉमस प्रेरित (6 अक्टूबर) द्वारा घर बनाने के लिए दिए गए पैसे को गरीबों में बाँटने के बाद; या पापियों के भयानक यातनाओं को, जैसा कि इसिचियस द कोरिवाइट (3 अक्टूबर, प्रोलॉग) के मामले में था; या अंतिम न्याय की कार्यवाही को, जैसा कि बेकर पीटर के मामले में था, जिसने एक भिखारी के चेहरे पर रोटी फेंकी थी; या मृत्यु और उसके बाद आने वाली नियति पर एक गहरा चिंतन उन पर अंकित किया गया था, जैसा कि राजकुमार जोआसाफ (19 नवंबर), संत क्लेमेंट (25 नवंबर) और एक निश्चित दुष्ट युवक के मामले में था, जिसे उसके मरते हुए पिता ने हर शाम उस कमरे में जाने की आज्ञा दी जहाँ मर रहा था। ४) कभी-कभी किसी को दृश्य शक्तियों और घटनाओं के बीच काम करने वाली एक निश्चित अदृश्य शक्ति को मूर्त रूप में महसूस करने की अनुमति मिलती है, फिर भी वह उनसे आश्चर्यजनक रूप से भिन्न होती है और किसी अन्य दुनिया से निकलती है। इसमें सामान्य रूप से सभी चमत्कार शामिल हैं, जिनकी संख्या गिनना असंभव है। और उद्धारकर्ता ने कहा कि अविश्वासी तब तक विश्वास नहीं करेंगे जब तक वे संकेत न देख लें। इनमें से अधिकांश चमत्कार उद्धारकर्ता मसीह के बाद, ईसाई धर्म के शुरुआती दिनों में प्रेरितों द्वारा, और उनके बाद पवित्र शहीदों द्वारा प्रकट हुए। यहाँ परमेश्वर की अदृश्य शक्ति की प्रभावशाली उपस्थिति अक्सर पूरे गाँवों और कस्बों के धर्मांतरण का कारण बनी, लेकिन कभी भी पूरी तरह से निष्फल नहीं रही। शहीदों का रक्त वास्तव में कलीसिया की नींव में है… ऐसे उदाहरण भी रहे हैं जहाँ ईश्वर की शक्ति ने स्वयं को सीधे प्रकट किया, बिना किसी मानव के माध्यम के, जैसा कि मिस्र की मरियम (1 अप्रैल) के धर्मांतरण में हुआ, या पवित्र वस्तुओं, प्रतिमाओं, अवशेषों और इसी तरह की चीजों के माध्यम से। इस प्रकार, विरिते में यहूदियों का धर्मांतरण प्रभु के सूली पर चढ़ाए जाने की प्रतिमा पर हुए चमत्कारी प्रकटनों के माध्यम से हुआ। ऐसे सभी प्रकटीकरणों में, चेतना—जो विभिन्न वस्तुओं और दुनिया की धोखाधड़ियों में उलझी हुई, और दृश्यमान, संवेदी और बाहरी क्षेत्र में अपरिहार्य रूप से बंधी हुई है— — एक निश्चित अदृश्य क्षेत्र के उच्च प्राणियों और शक्तियों के एक प्रभावशाली, अप्रत्याशित और अचानक दृष्टिकोण द्वारा तुरंत अपने बंधनों से छूट जाता है, और अस्तित्व और जीवन के एक अलग क्रम में धकेल दिया जाता है, जहाँ, विस्मय से अभिभूत होकर, वह बना रहता है। यहाँ जो घटित होता है, वह वैसा ही है जैसे किसी एक शरीर की बिजली दूसरे शरीर की बिजली से प्रेरित होकर उसमें प्रवाहित हो जाती है। दूसरा शरीर पहले वाले को पदार्थ के बंधनों से छीनकर, सतह पर खींचकर, अपने सामने स्थापित कर देता है।

बी. हमारी आत्मा, जैसा कि हमने देखा है, कई आवरणों से ढकी और दबी हुई है। फिर भी अपनी प्रकृति से ही यह दिव्य व्यवस्था की द्रष्टा है। इसकी इस क्षमता को प्रकट होने के लिए तुरंत तैयार है और वास्तव में, जैसे ही इसे बांधने वाली बाधाएं दूर हो जाती हैं, यह अपनी शक्ति का प्रदर्शन करती है। इसलिए, मनुष्य के भीतर सोई हुई आत्मा को जगाने और उसे दिव्य व्यवस्था के चिंतन की ओर ले जाने के लिए, ईश्वर की कृपा या तो अ) **सीधे** उस पर कार्य करती है और उसे शक्ति से भरकर, उसे बांधने वाले बंधनों को तोड़ने में सक्षम बनाती है, या ब) **अप्रत्यक्ष रूप से कार्य करती है**, उससे परदों और जालों को हटाती है और इस प्रकार उसे अपनी उचित अवस्था में होने की स्वतंत्रता प्रदान करती है।

1. दिव्य, सर्वव्यापी और सर्व-व्यापक अनुग्रह मानव आत्मा पर **सीधे** कार्य करता है, उस पर ऐसे विचार और भावनाएँ अंकित करता है जो उसे सभी सीमित चीजों से अलग करती हैं और उसे एक और, बेहतर दुनिया की ओर मोड़ती हैं, भले ही वह अदृश्य और अज्ञात हो। इन हलचलों की एक सामान्य विशेषता स्वयं और अपनी संपूर्ण सत्ता से **असंतोष**, और किसी चीज़ की **लालसा** है। एक व्यक्ति ऐसा बन जाता है जो अपने आसपास की किसी भी चीज़ से संतुष्ट नहीं होता—न तो अपने गुणों से और न ही अपनी संपत्ति से, भले ही ये अनगिनत खजाने ही क्यों न हों—और ऐसा चलता है मानो दुःख से अभिभूत हो गया हो। किसी भी दिखाई देने वाली चीज़ में कोई सांत्वना न पाकर, वे अदृश्य की ओर मुड़ते हैं और उसे आसानी से अपना लेते हैं, और सच्चे मन से उसे अपना और खुद को उसका हिस्सा बना लेते हैं। कई लोग, यह सोचते हुए कि यह सब कैसे समाप्त होगा और इसका परिणाम क्या होगा, सब कुछ त्याग देते हैं और न केवल अपनी भावनाओं और व्यवहार को, बल्कि अपने जीवन के तरीके को ही बदल देते हैं। ऐसे उदाहरण भी थे जहाँ इस तरह की असंतोष मुख्य रूप से **बौद्धिक** क्षेत्र में व्यक्त हुई, जैसा कि जस्टिन द फिलॉसफर (1 जून) के साथ हुआ, जिसने सबसे बढ़कर दिव्य सत्ता के दर्शन की रोशनी की तलाश की; कभी-कभी **भावनात्मक** क्षेत्र में, जैसा कि ऑगस्टीन (धन्य; 15 जून — *एड.*), जिन्होंने अपने बेचैन हृदय के लिए सबसे बढ़कर शांति की खोज की; और कभी-कभी—हालांकि **अक्सर—सक्रिय** क्षेत्र में, **अंतरात्मा** में, जैसा कि डाकू मूसा (मुरिन; 28 अगस्त — *एड.*) और डेविड (हर्मोपोलीस के; 6 सितंबर — *एड.*) के मामले में हुआ। ऐसे कई उदाहरण थे जब आत्मा का आंतरिक मंदिर अचानक प्रकाशित हो गया, एक लालसा जड़ पकड़ गई, और आत्मा कहीं और (किसी अन्य स्थान पर — *एड.*) खिंच गई। प्रभु ने इस बारे में कहा, *'तुम नहीं जानते कि यह कहाँ से आता है और कहाँ जाता है'* (यूहन्ना 3:8)। अक्सर आत्मा अतीत की याद से जाग उठती है। इस प्रकार मरिया, जो अराधक अब्राहम (29 अक्टूबर) की भतीजी थीं, और थियोफिलस, जो चर्च के व्यवस्थापक और संत जॉन द थियोलोजियन के शिष्य थे, धर्म की ओर लौटे, जो डाकू जीवन की राह पर भटक गए थे। अंदर से कहीं से, एक आवाज़ स्पष्ट रूप से अंतरात्मा से कहती है: *'याद करो कि तुम किस ऊँचाई से गिर गए हो!'* (प्रकाशितवाक्य 2:5) — और यह भूलने वाले व्यक्ति को बहुत ज़ोर से झकझोर देती है। इसमें युवावस्था की चूकों के बाद होने वाले सभी धर्मांतरण शामिल हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि ऐसे परिवर्तन दूर से ईश्वर की व्यवस्था द्वारा विभिन्न परिस्थितियों के माध्यम से तैयार किए जाते हैं जो किसी को अनुग्रह-पूर्ण प्रभाव प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती हैं; अतः, यहां भी, तत्कालता केवल सापेक्ष है। लेकिन, दूसरी ओर, मनुष्य को यह भी महसूस करना चाहिए कि हर अनुग्रह-भरी प्रेरणा हमारे आत्मा में ऐसी ही हलचलों और जागृतियों के रूप में प्रकट होती है। अनुग्रह, यद्यपि दृश्य साधनों के माध्यम से कार्य करता है, फिर भी हमेशा आत्मा को अदृश्य और सीधे रूप से स्पर्श करता है, और उसे उन बंधनों से खींचकर ईश्वर की ज्योति में, दिव्य जीवन के क्षेत्र में ले आता है।

यहाँ उल्लिखित **सभी साधन** आत्मा के बंधनों को तोड़ने के उद्देश्य से हैं। आत्मा को मुक्त करो, उसे स्वतंत्रता प्रदान करो, और वह अपने आप अपने स्रोत—ईश्वर—की ओर प्रवाहित होगी। जैसा कि हमने देखा है, आत्मा के बंधन तीन प्रकार के हैं: क) **आत्म-तुष्टि**, ख) **संसार**, ग) **शैतान**। आत्मा को जगाने वाली कृपा की विनाशकारी क्रियाएँ इन्हीं के विरुद्ध निर्देशित होती हैं।

आत्मा के सबसे निकट के बंधन सर्व-व्यापी **आत्म-संतुष्टि** के हैं, जो हमारे पशु-आत्मा स्वभाव में प्रकट होते हैं। वे अन्य बंधनों के लिए भी संपर्क बिंदु हैं—वे जो दुनिया और शैतान से उत्पन्न होते हैं। इसलिए, उन्हें तोड़ना अत्यंत महत्वपूर्ण है, हालांकि यह अत्यंत कठिन और जटिल है। क्योंकि, चूँकि अनपश्चात्तापी व्यक्ति पूरी तरह से अपनी पशु-आत्मा की प्रकृति के अनुसार जीता है, इस ओर के बंधन उस पशु-आत्मा के जीवन की पहुँच जितनी विशाल जगह में कई और विविध तरीकों से फैलते और आपस में गुंथ जाते हैं। यह समझने के लिए कि इन बंधनों को कैसे तोड़ा जाता है, यह ध्यान रखना चाहिए कि यह जीवन जिस भी चीज़ से जुड़ता है, जो भी इसे पोषित करती है, और जिसके माध्यम से इसका मुख्य रूप से प्रकटीकरण होता है, वह इसके लिए एक ठोस नींव का निर्माण करती है; इस नींव पर टिककर, यह दृढ़ खड़ा रहता है और किसी हार से नहीं डरता, न ही इसके बारे में सोचता है, और न ही इसकी आशंका करता है। जब कोई, उदाहरण के लिए, कला, या सांसारिकता, या यहाँ तक कि विद्वता से भी जुड़ जाता है, और पूरी तरह से इन क्षेत्रों में से किसी एक के भीतर रहता है, तो वे उसी पर अपनी

पूरी ताकत, विचारों और आशाओं के साथ निर्भर करते हैं और उसी में विश्राम करते हैं। चूँकि संपूर्ण आत्म-तुष्टिपूर्ण जीवन, जो आत्मा को बाँधता है, यहीं से उत्पन्न होता है, इसलिए आत्म-तुष्टि का यह आधार स्वाभाविक रूप से आत्मा पर लगाए गए बंधनों की दृढ़ता और मजबूती का आधार बन जाता है, मानो यह वह बिंदु हो जिस पर ये बंधन टिके हों। इसके विपरीत, इसलिए, आत्मा को आत्म-तुष्टि के बंधनों से मुक्त करने के लिए, दिव्य अनुग्रह, जो हमें कर्म के लिए प्रेरित करता है, आमतौर पर उन आधारों को कमजोर कर देता है जिन पर आत्म-तुष्ट आत्मा टिकी होती है। इन आधारों को उनकी जड़ों से ही हिलाकर, यह बंधनों को कमजोर कर देता है और पीड़ित और थकी हुई आत्मा को अपना सिर उठाने में सक्षम बनाता है।

हमारी आत्म-तुष्टि के कई स्तंभ हैं; वे हमारे अस्तित्व के भीतर—अर्थात्, शरीर और आत्मा में—और हमारे बाहरी जीवन में, और वास्तव में हमारे अस्तित्व के पूरे क्रम में पाए जाते हैं। इसी प्रकार विभिन्न रूपों में कामुक तुष्टि होती है: अर्थात्, कामुकता, विलासिता, वासना, आलस्य, मनोरंजन का जुनून, सांसारिक व्यस्तता, महत्वाकांक्षा, शक्ति का प्रेम, अपने मामलों में स्पष्ट सफलता, समृद्धि, एक चापलूसी भरा बाहरी जीवन शैली, संबंधों का मूल्य, शांतिपूर्ण बाहरी संबंध, और कला, विद्वता और उद्यम के प्रति लगाव। यह सब, सबसे विविध रूपों में, हमारे आत्म-बोध के लिए एक ठोस नींव बनाता है, जो अपनी विश्वसनीयता और स्थायित्व में आश्वस्त होकर, उस पर सुरक्षित रूप से टिका रहता है और उससे प्रचुर मात्रा में पोषण ग्रहण करके, दिन-ब-दिन बढ़ता है—एक व्यक्ति में मुख्य रूप से एक पहलू में, दूसरे में दूसरे में।

पापी को सुस्ती से जगाने के लिए दिव्य अनुग्रह यही करता है: यह अपनी शक्ति का निर्देशन उस नींव के विनाश की ओर करता है जिस पर कोई स्वयं को स्थापित करता है और अपनी आत्मिकता में विश्राम करता है।

जो भी इंद्रिय भोगों में बंधा रहता है, वह बीमारी में पड़ जाता है; शरीर को कमजोर करके, आत्मा को होश में आने और संभलने के लिए स्वतंत्रता और शक्ति मिलती है। जो भी अपनी ही सुंदरता और शक्ति के मोह में पड़ता है, उससे वह सुंदरता छीन ली जाती है और उसे लगातार थकान में रखा जाता है। जो भी अपनी ही शक्ति और सामर्थ्य पर निर्भर रहता है, उसे दासता और अपमान का सामना करना पड़ता है। जो लोग धन पर बहुत अधिक निर्भर करते हैं, उनसे वह छीन लिया जाता है। जो लोग अहंकार से काम करते हैं, उन्हें अज्ञानी कहकर शर्मिंदा किया जाता है। जो लोग अपने बंधनों की मजबूती पर भरोसा करते हैं, वे उन्हें टूटते हुए देखते हैं। जो लोग अपने चारों ओर स्थापित व्यवस्था की स्थिरता पर भरोसा करते हैं, वे उसे प्रियजनों की मृत्यु या आवश्यक संपत्ति के नुकसान से टूटते हुए देखते हैं। बाहरी सुखों के बंधन में बँधे लोगों को दुःख और विपत्तियों के अलावा और क्या होश में ला सकता है? और क्या इसी कारण से हमारा पूरा जीवन आपदाओं से भरा नहीं है, ताकि यह हमें होश में रखने के ईश्वर के उद्देश्य को आगे बढ़ा सके?

ऐसे सभी उथल-पुथल जो बेपरवाह आत्म-संतुष्टि की नींव को हिला देते हैं, जीवन के उतार-चढ़ाव हैं, जो हमेशा अप्रत्याशित होने के कारण, एक चौंकाने वाला और उद्धारकारी प्रभाव डालते हैं। इस संबंध में सबसे मजबूत प्रभाव अपने जीवन को खतरे में महसूस करना है। यह भावना सभी बंधनों को ढीला कर देती है और स्वयं की जड़ पर ही प्रहार करती है; व्यक्ति नहीं जानता कि किस ओर मुड़े। कठिनाई की परिस्थितियाँ या सार्वभौमिक परित्याग की भावना का भी यही प्रभाव होता है। ये दोनों ही व्यक्ति को स्वयं के साथ अकेला छोड़ देती हैं, और स्वयं से—जो सभी जीवों में सबसे तुच्छ है—उसे तुरंत ईश्वर की ओर भेज दिया जाता है, या उसकी ओर मोड़ दिया जाता है।

आत्मा के दूसरे बंधन दुनिया द्वारा थोपे जाते हैं और पहले वालों की तुलना में अधिक सतही होते हैं। दुनिया, अपनी अवधारणाओं, सिद्धांतों, नियमों के साथ—वास्तव में, अपने पूरे क्रम को एक अपरिवर्तनीय कानून का दर्जा देकर—अपने सभी बच्चों पर एक भारी, हावी होने वाला हाथ रखती है; परिणामस्वरूप, उनमें से कोई भी इसके खिलाफ विद्रोह करने या इसके अधिकार को अस्वीकार करने का सोचने की हिम्मत भी नहीं करता। सभी इसकी इज्जत करते हैं; वे एक तरह के डर के साथ इसके नियमों का पालन करते हैं और उनके किसी भी उल्लंघन को, मानो, एक आपराधिक अपराध मानते हैं। दुनिया का कोई भौतिक रूप नहीं है, फिर भी इसकी आत्मा किसी तरह प्रकाश में बनी रहती है, हम पर प्रभाव डालती है और हमें बंधनों की तरह बाँधती है। यह स्पष्ट है कि उसकी शक्ति मानसिक, काल्पनिक है, न कि वास्तविक या भौतिक। परिणामस्वरूप, हमें बस इस दुनिया की इस काल्पनिक शक्ति को दूर करना है—और इसके जादू से होश में आने का अवसर हमारी पहुँच में होगा। ठीक इसी तरह ईश्वर की उद्धारक व्यवस्था हमारे लिए काम करती है। इस उद्देश्य के लिए, यह:

दुनिया के सामने और हमारे सामने लगातार दो अन्य दुनियाओं को रखती है—पवित्र और दिव्य—और, उनमें और उनके माध्यम से, हमारे ध्यान में जो सर्वोत्तम है उसे प्रस्तुत करती है और हमें उसका अनुभव करने की अनुमति भी देती है, और सांसारिक जीवन और सांसारिक आशाओं की खोखलेपन पर लगातार जोर देती है। ईश्वर की ये दुनियाएँ हैं: दृश्यमान प्रकृति और ईश्वर की कलीसिया। अनुभव दिखाता है कि दुनिया की धुंध से कितना अक्सर मन मस्त हो जाता है, और ईश्वर की रचनाओं पर मनन करने या चर्च में प्रवेश करने से वह होश में आ जाता है। एक व्यक्ति ने सर्दियों में अपनी खिड़की के सामने

खड़े एक पेड़ को देखा और होश में आ गया; एक अन्य व्यक्ति, एक शीतकालीन दिन अपनी खिड़की के बाहर खड़े एक पेड़ को निहारते हुए, होश में आया; शब्द ने एक महिला के हृदय को छू लिया और उसे एक ईसाई बना दिया। हमारे पूर्वजों का धर्मांतरण अंततः उन पर चर्च के प्रभाव से ही दृढ़ हुआ। महाशहीद बार्बरा (6 दिसंबर) को चर्च से दूर कर दिया गया था। **'होसन्ना'** शब्द ने एक महिला के हृदय को छू लिया और उसे एक ईसाई बना दिया। हमारे पूर्वजों का धर्मांतरण अंततः चर्च के उन पर पड़े प्रभाव से ही पक्का हुआ। महाशहीद बार्बरा (6 दिसंबर) ईश्वर की दृश्यमान रचनाओं की सुंदरता पर मनन करके मूर्तियों से ईश्वर की ओर मुड़ीं। उनकी शक्ति और प्रभाव इस तथ्य में निहित है कि वे आत्मा के सामने—जो दुनिया की व्यर्थता से थकी, थकी हुई, दुर्बल और पीड़ित है—एक बेहतर, अत्यंत आनंदमय जीवन व्यवस्था को जीवंत और मूर्त रूप में प्रस्तुत करते हैं; और, उस आत्मा में इस जीवन का आनंद तुरंत भरकर, वे मनुष्य को यह एहसास कराते हैं कि, दुनिया के प्रभुत्व के आगे आत्मसमर्पण करके, मनुष्य केवल स्वयं को ही पीड़ा देता है और कष्ट पहुँचाता है; कि सुख पूरी तरह से एक अन्य लोक में छिपा है; और यदि संसार के साथ संगति अब इतनी पीड़ादायक है, तो बाद में क्या उम्मीद की जा सकती है? इससे परमेश्वर के राज्य के लिए एक पुकार और व्यर्थ संसार से विमुखता उत्पन्न होती है, जो—कभी एक शक्तिशाली आवेग के रूप में, और कभी धीरे-धीरे—अंततः मानव आत्मा को संसार के बंधनों से मुक्त कर देती है। इस प्रकार, प्रकृति और कलीसिया दूर ले जाने वाले, भ्रम मिटाने वाले, इस व्यर्थ और आकर्षक दुनिया के जादू को मिटाने वाले हैं। इसी कारण से, प्रभु ने उन्हें हमारे साथ ऐसे संबंध में रखा है, ताकि वे हम पर और भी अधिक बार और लगातार प्रभाव डाल सकें, और जीवन के एक तरीके और दूसरे तरीके के बीच के विरोधाभास को सबसे प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत कर सकें।

दुनिया के बंधनों से अनुग्रह-पूर्ण मुक्ति का दूसरा साधन इस तथ्य में निहित है कि, सर्व-प्रबंधक परमेश्वर के अनुग्रह से, एक व्यक्ति जिस जीवन में जी रहा है, उसके बिल्कुल विपरीत जीवन वास्तव में उनके आँखों के सामने प्रस्तुत किया जाता है। यह विशेष रूप से **शहादत के** माध्यम से हुए सभी परिवर्तनों पर लागू होता है, और इसके अनगिनत उदाहरण रहे हैं। कभी-कभी एक ही व्यक्ति की शहादत ने पूरे गाँवों और कस्बों को परिवर्तित कर दिया है। यहाँ, एक दूसरी दुनिया—हमारी अपनी नहीं—की एक नैतिक शक्ति की उपस्थिति स्पष्ट है। कभी-कभी, ऐसा लगता है कि हार निश्चित होनी चाहिए, फिर भी वह नहीं होती; यातनाओं में पड़ा व्यक्ति बिना जाने कि क्यों या कैसे, अजेय और शांत बना रहता है। इसका तत्काल एहसास मन पर छा जाता है और अपने पूर्व जीवन के आकर्षण को दूर कर देता है। यह बात राजा मॉरिसियस द्वारा डाकू के धर्मांतरण पर भी लागू होती है, जिसने उसे मौत की सज़ा देने के बजाय, एक ऐसे व्यक्ति के रूप में उसके साथ दया से व्यवहार किया जो इसके हकदार थे; वेश्या का धर्मांतरण, जिससे एक माँ ने प्रार्थना करने और अपने एकमात्र पुत्र को जीवन वापस लाने का आग्रह किया था, और दूसरी वेश्या का धर्मांतरण जिसने केवल भिक्षुओं को देखते ही पश्चाताप कर लिया, जो उसी घर में विलासिता और दुराचार में लिप्त रहते हुए, नम्रतापूर्वक प्रार्थना और ध्यान में लगे हुए थे। और **जीवन के उदाहरणों के माध्यम से** ऐसी सभी अपीलें भी यहाँ लागू होती हैं। उनके प्रभाव की शक्ति इस तथ्य में निहित है कि कोई व्यक्ति, आमने-सामने, संतुष्ट और शांतिपूर्ण चेहरे देखता है, जो उन सुखों और आरामों से रहित होते हैं, जिनकी प्रचुरता के बावजूद, कोई अन्य न तो संतोष पाता है और न ही शांति। इसलिए निराशा और जीवन शैली में बदलाव आता है।

दुनिया से मन हटाने का तीसरा साधन है अपने ही बच्चों द्वारा उसे लज्जित करना। जूलियन (अपदस्थ - *संपादक*) ने खुद को सभी से ऊपर समझा, ईसाइयों पर क्रूरता से हमला किया और अपनी शक्ति से उन्हें कुचलने की धमकी दी, लेकिन फिर अप्रत्याशित रूप से गिर गया। इसने न केवल विश्वासियों के विश्वास को मजबूत किया, बल्कि कई अविश्वासियों को भी सच्चे ईश्वर की ओर मोड़ दिया। संत मकरियस (मिस्र के – *संपादक)* के विरुद्ध, झूठी गवाही के आधार पर, एक पूरा गाँव उठ खड़ा हुआ, जिसने उन्हें पीटा, यातना दी और दंडित किया: दुनिया विजयी हो गई थी; लेकिन फिर सच्चाई सामने आई, जिसने सभी को शर्मिंदा कर दिया और उन्हें सभी को श्रद्धा और परमेश्वर के भय की ओर लौटा दिया। इसमें दुनिया के शक्तिशाली और महान लोगों के पतन और अकस्मात मौतों से मिलने वाले सभी सबक शामिल हैं। यहाँ दुनिया का अपमान उसके अनुयायियों की नजर में उसे नीच बना देता है, उसकी शक्तिहीनता को उजागर करता है और, एक ओर, लोगों को उससे दूर कर देता है, जबकि दूसरी ओर, उन्हें इसका विरोध करने का साहस देता है।

अंत में, यह असामान्य नहीं है कि दुनिया स्वयं ही, मानो अपनी मर्जी से, लोगों पर अत्याचार करती है और उन्हें दूर भगा देती है, खासकर इसलिए क्योंकि वह अपेक्षाओं को पूरा करने में विफल रहती है या उन्हें शर्मिंदा कर देती है। हम सुख की तलाश करते हैं; फिर भी दुनिया में केवल महिमा, सम्मान, शक्ति, धन और सुख-सुविधाएँ हैं - लेकिन इनमें से कोई भी चीज़ खोजने वाले को संतुष्ट नहीं करती है। एक विवेकी व्यक्ति जल्द ही इस धोखे को समझ जाता है और होश में आ जाता है। हम ईश्वर के संतों में देखते हैं कि उनमें से कई ने, दुनिया की व्यर्थता और हलचल को देखकर, इससे अलग हो गए और दृढ़ संकल्प के साथ खुद को ईश्वर को समर्पित कर दिया। दृष्टांत में, अक्लमंद पुत्र ने कहा: *'मैं भूख से मर रहा हूँ'* (लूका 15:17)।

आध्यात्मिक दासता का तीसरा प्रकार शैतान और उसकी आत्माओं से उत्पन्न होता है। ये अदृश्य हैं और, अधिकांशतः, आत्म-तुष्टि और सांसारिकता के बंधनों के साथ मेल खाते हैं, जिन्हें शैतान अपने प्रभाव से सुदृढ़ करता है और जिनके माध्यम से वह मन को अंधकार में रखता है। लेकिन कुछ ऐसा भी है जो सीधे शैतान से उत्पन्न होता है। उससे एक प्रकार की अस्पष्ट कायरता और भय आता है, जो पापी की आत्मा को हर समय परेशान करता है, और जब वह अच्छा करने का संकल्प लेता है तो और भी अधिक। यह लगभग वैसा ही है जइसन एक मालिक अपने नौकर को धमकी देता है जब वह उसकी इच्छा और योजनाओं के विपरीत कुछ करने लगता है। उससे आध्यात्मिक चापलूसी के विभिन्न रूप आते हैं, जैसे: कुछ लोगों में, ईश्वर की दया में अत्यधिक और निराधार आशा, जो उन्हें होश में नहीं लाती बल्कि इसके बजाय उन्हें पाप के प्रेम में और भी गहराई से डुबा देती है; इसके विपरीत, दूसरों में, निराशा; इसमें — संदेह और अविश्वास; उसमें — आत्मविश्वास और आत्म-न्याय, जो पश्चाताप की किसी भी भावना को दबा देता है। हाँ, बहुत कुछ, बहुत कुछ, सीधे तौर पर शैतान पर निर्भर करता है, हालांकि इसे इंगित करना मुश्किल है। लेकिन जो कुछ भी पापी है, उसका श्रेय स्रोत के रूप में उसे ही दिया जाना चाहिए, क्योंकि वह इस पापी दुनिया का राजकुमार है। उसकी एक चालाकी यह है कि वह खुद को छिपा लेता है—यानी, पापियों में यह विश्वास पैदा कर देता है कि उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है—जिसके बाद वह पापी आत्मा में क्रूरता से उत्पात मचाता है, पापी इच्छाओं को एक साथ बुनता है जो वह उनमें, प्रकृति में डालता है, और उन्हें ईश्वर के विरुद्ध बड़बड़ाने के लिए प्रेरित करता है, जो कथित तौर पर उस चीज़ को मना करते हैं जो स्वाभाविक है और उस चीज़ का आदेश देते हैं जिसे सहने की ताकत उनमें नहीं है। दिव्य अनुग्रह, जो लोगों को होश में लाता है, ने शैतान को शर्मिंदा करके पापियों को अक्सर नरक के मुंह से छीन लिया है। इसने उसे अपमानित किया है और उसे उपहास का पात्र बनाया है, उसकी शक्तिहीनता और मूर्खता को उजागर किया है और उसकी चालाकियों का भंडाफोड़ किया है। इस प्रकार उसे साइमन द मैगस, अंताकिया के साइप्रियन, और कई अन्य लोगों के रूप में शर्मिंदा किया गया। ऐसे सभी उदाहरणों के साथ उन लोगों की एक बड़ी संख्या के धर्म परिवर्तन और ज्ञानोदय भी हुआ था, जो अंधे हो गए थे। पृथ्वी पर प्रभु के दिनों में, दुष्टात्माएँ—अविश्वास और संदेह का स्रोत—विश्वास की प्रचारक बन गईं। और पवित्र शहीदों ने, सर्वशक्तिमान परमेश्वर की शक्ति से, अक्सर झूठ के पिता और बच्चों दोनों को मंदिरों में मूर्तियों के माध्यम से सत्य बोलने के लिए मजबूर किया। धूर्त की योजनाओं का ऐसा खुलासा पापी को इस विश्वास पर पहुँचाता है कि वह दुर्भावनापूर्ण और शत्रुतापूर्ण हाथों में है, कि उसे अपनी ही हानि के लिए धोखा दिया जा रहा है, कि उसे धोखे से विनाश की किसी अंधेरी राह पर ले जाया जा रहा है, और कि वे उसके विनाश में आनंद लेना चाहते हैं। इससे अनिवार्य रूप से अपने कल्याण के लिए भय, सतर्कता, संदेह और घृणा की भावना उत्पन्न होती है—धोखेबाज़, उसकी रचनाओं—दुर्गुणों और जुनूनों—और अपने पूरे पिछले जीवन के प्रति। यहाँ से, सत्य, सद्गुण और आनंद के स्रोत—ईश्वर—की ओर संक्रमण दूर नहीं है।

ये वे तरीके और साधन हैं जिनके द्वारा ईश्वर की कृपा मानवीय आत्मा पर कार्य करती है, उसे उसके अनुचित जीवन के बंधनों से छुड़ाती है और आमने-सामने एक और, बेहतर जीवन का खुलासा करती है—एक ऐसा जीवन जिसमें आनंद और शांति मिल सकती है। लेकिन यह स्पष्ट है कि ये सभी, अपने आप में, अपूर्ण हैं, जैसे कि वे संपूर्ण सत्य को पूरी तरह से व्यक्त नहीं करते हैं। उदाहरण के लिए, कुछ बेहतर की लालसा जागी है: लेकिन यह 'बेहतर' चीज़ कहाँ है, और इसे कैसे प्राप्त किया जाए? या मृत्यु और न्याय का भय हावी हो गया है—तो इस विपत्ति से मुक्ति पाने के लिए क्या किया जाए? सभी अन्य मामलों में भी ऐसा ही है। वे मौन हैं: उन सभी में एक और, परिपूर्ण करने वाला साधन जोड़ा जाना चाहिए। यही वचन है, या उपदेश। ईश्वर का वचन, अपने विभिन्न रूपों में, वास्तव में वर्णित सभी विधियों के साथ चलता है, उन्हें समझाता है और उनके अंतिम उद्देश्य की ओर इशारा करता है। इसके बिना, वे व्यक्ति को कुछ अनिश्चितता की स्थिति में ही छोड़ देते हैं और, परिणामस्वरूप, वह सब कुछ नहीं लाते जिसकी आवश्यकता है। इस प्रकार, प्रेरित पौलुस को एक स्वर्गीय दर्शन द्वारा निर्देश दिया गया था। लेकिन प्रभु ने उसी क्षण उसमें सब कुछ पूरा नहीं किया, बल्कि कहा: 'अननिय्यास के पास जा, और वह तुझे बताएगा कि क्या करना है' (प्रेरितों के काम 9:6)। जस्टिन द फिलॉसफर, महान शहीद बार्बरा, और राजकुमार जोआसाफ ने झूठ को देखा, लेकिन सत्य को जानने के लिए, उन्हें विशेष मार्गदर्शकों और व्याख्याकारों की आवश्यकता थी। यही कारण है कि प्रभु, जो सबका पालनहार है, ने नियम से यह आज्ञा दी है कि *सुसमाचार सभी लोगों को हर जगह प्रचारित किया जाए,* ताकि वे पश्चाताप करें (प्रेरितों के काम 17:30)। *विश्वास सुनने से आता है, और सुनना परमेश्वर के वचन से आता है* (रोमियों 10:17)। और यह वचन, प्रेरितों से होकर उनके उत्तराधिकारियों के माध्यम से, अब पृथ्वी के छोर तक सभी को प्रचारित किया जाता है। और यहीं पर प्रचार की अनिवार्य आवश्यकता निहित है—ईश्वर के सार्वभौमिक, उद्धारकारी विधान का प्रचार—और यह आवश्यक है कि यह सर्वज्ञात हो कि जिज्ञासु आत्मा को व्याख्या के लिए किन व्यक्तियों और स्थानों की ओर मुड़ना चाहिए, ताकि वह अपना उत्साह व्यर्थ में न खोए या अपनी शक्ति और समय को व्यर्थ में बर्बाद करते हुए टेढ़ी-मेढ़ी राहों पर न भटके। चर्च के

भीतर धर्मशिक्षा का अविराम रूप से श्रवण किया जाना चाहिए (और वास्तव में, किया भी जाता है)। विश्वासी—जो दृढ़ खड़े हैं—उनके द्वारा और भी अधिक सुदृढ़ होंगे; जबकि जो गिर गए हैं और जो उत्साहित हैं, उन्हें तुरंत एक विश्वसनीय मार्गदर्शक मिल जाएगा। कितनी कीमती है पुरोहितों का यह कर्तव्य कि वे समय पर और समय से परे ईश्वर के उद्धार के मार्गों का प्रचार करें, बिना सामान्य ज्ञान पर भरोसा किए, जो अधिकांश रूप से केवल अनुमानित ही होता है!

लेकिन परमेश्वर का वचन न केवल उपरोक्त सभी तरीकों को पूरक बनाता है, बल्कि उनकी जगह भी ले लेता है। यह आत्मा को और भी अधिक पूर्ण और स्पष्ट रूप से उत्तेजित करता है। हमारी आत्मा के साथ अपने संबंध के कारण, जो परमेश्वर से ही निकलती है, यह गहराई तक, आत्मा और आत्मा के विभाजन तक, प्रवेश करती है, बाद वाले को पुनर्जीवित करती है और उसे इस प्रकार बोती है कि वह आध्यात्मिक जीवन का फल दे सके (इसीलिए वचन को **बीज** कहा जाता है)।

इसकी उत्तेजक शक्ति और भी अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह एक साथ पूरे व्यक्ति, उनकी संपूर्ण सत्ता—शरीर, आत्मा और आत्मा—पर कार्य करती है। ध्वनि, या शब्द का उच्चारण, कान को छूता है; विचार आत्मा को संलग्न करता है; और उसमें निहित अदृश्य, छिपी हुई ऊर्जा आत्मा को स्पर्श करती है, जो, यदि वह चौकस हो, तो एक बार जब शब्द शरीर और आत्मा दोनों से सुरक्षित रूप से गुज़र जाता है—ये मोटे अवरोध—तो वह उत्तेजित हो जाती है और, तनाव में आकर, उसे बांधने वाले बंधनों को तोड़ देती है।

परमेश्वर का वचन, वर्णित तरीकों से, आत्मा को भी हिलाता है; अर्थात्: या तो मन में दिव्य व्यवस्था की सबसे जीवंत प्रस्तुति के माध्यम से, या हमारी आत्मा को उसमें प्रवेश कराकर, उसे पीछे रखने वाली बाधाओं को तोड़कर। उदाहरण के लिए, एक वृद्ध सेवक ने अपने बीमार मालिक से पूरी सादगी से कहा: 'आप चाहे कितना भी संघर्ष कर लें, सर, आपको मरना ही होगा,' — और इस प्रकार उसे पश्चाताप के लिए प्रेरित किया। एक अन्य ने, सूली पर चढ़ाए गए प्रभु की प्रतिमा को निहारते हुए, पढ़ा: 'यह मैंने तुम्हारे लिए किया है; तो फिर, तुम मेरे लिए क्या करोगे?' और वह अपनी नींद से जाग उठा। संत पेलagia ने मृत्यु, न्याय और पापियों की कड़वी नियति के बारे में सुनकर, एक पापी जीवन से मुंह मोड़ लिया। राजकुमार व्लादिमीर, जो प्रेरितों के समान थे, संसार की सृष्टि से लेकर सभी चीजों के अंत, अंतिम न्याय, और धर्मी तथा दुष्टों की शाश्वत नियति तक, पूरे दैवीय क्रम के एक वर्णन से प्रभावित हुए। वास्तव में, पवित्र प्रेरितों का—और, उनके पदचिन्हों पर चलते हुए, सुसमाचार के सभी प्रचारकों का—प्रचार सत्य की एक सरल, साधारण प्रस्तुति पर आधारित था। पवित्र प्रेरित पौलुस अपने बारे में कहते हैं कि उनका वचन और उपदेश मानवीय बुद्धि के प्रभावशाली शब्दों में नहीं, बल्कि हमारे प्रभु यीशु मसीह के उद्धार के कार्य की एक सरल घोषणा में था, जिन्हें क्रूस पर चढ़ाया गया था (1 कुरिन्थियों 2:24)। और यह, कोई कह सकता है, वचन के माध्यम से काम करने का सबसे स्वाभाविक तरीका है—सत्य को वैसा ही चित्रित करना जैसा यह है, इसे बौद्धिक विचारों और विशेष रूप से संभावनाओं के बारे में धारणाओं से अस्पष्ट किए बिना। सत्य आत्मा के समान है। यदि इसे सरल और ईमानदारी से व्यक्त किया जाए, तो यह आत्मा को पा लेगी; लेकिन जब इसे अलंकारिक, सुसज्जित और सजी-धजी कल्पनाओं से घेर दिया जाता है, तो यह कल्पना में ही रह जाता है; जब यह तर्कों और प्रमाणों के बोझ तले दब जाता है, तो यह बुद्धि या आत्मा में ही अटक जाता है, आत्मा तक नहीं पहुँच पाता और उसे खाली छोड़ देता है। कोई कह सकता है कि उपदेश देने की सारी व्यर्थता उन्हीं बौद्धिक अटकलों से उत्पन्न होती है जिनसे यह भरा होता है। लेकिन सत्य को सरलता से समझाएँ, प्रकट करें कि इसमें क्या है—और आत्मा मोहित हो जाएगी। एक यहूदी ने सुसमाचार पढ़ा—और धर्मांतरित हो गया, क्योंकि उसने सरल सुसमाचार वृत्तांत में सत्य को देखा। वास्तव में, कई स्वतंत्र विचारक ईश्वर के वचन—चाहे वह मौखिक हो या लिखित—द्वारा निर्देशित, दैवीय चीजों की जीवंत जागरूकता के माध्यम से धर्मांतरित हुए हैं। सत्य व्यर्थ विचारों के अंधकार को दूर करता है, आत्मा को ताज़गी देता है, और आत्मा को प्रबुद्ध करता है। यदि हम रोज़मर्रा की बातचीत में अक्सर इस बात की संक्षिप्त समीक्षा शामिल करें कि यह सब कैसे शुरू हुआ, इसका अंत कैसे होगा, और क्यों, तो यह बहुत फायदेमंद होगा।

दूसरी ओर, वचन की शक्ति अक्सर आत्मा की बाधाओं को तोड़ देती है और उसे मुक्त कर देती है। इस प्रकार, महान संत एंथनी ने सांसारिक वस्तुओं की तुच्छता के बारे में वचन सुना — और सब कुछ पीछे छोड़ दिया। एक युवक ने 'व्यर्थ पुत्र' पर एक उपदेश सुना — और पश्चाताप किया। दुनियावी जीवन की व्यर्थता को दर्शाकर, कई संतों ने, यहाँ तक कि वैवाहिक जीवन में रहते हुए भी, अपने जीवनसाथियों को निष्कलंक और पवित्र जीवन जीने के लिए मनाया। आम तौर पर, एक ओर दिव्य व्यवस्था की प्रस्तुति और दूसरी ओर विभिन्न आकर्षणों का प्रकटीकरण, आत्मा को **उद्धारकारी ज्ञान की** पूर्णता से, या मोक्ष के मार्ग की स्पष्ट और विश्वसनीय समझ से भर देता है, जिसके सामने हृदय की हठधर्मिता शायद ही टिक सकती है। बहुत से लोग, यदि वे वैसे परिश्रम से कार्य नहीं करते जैसे उन्हें करना चाहिए, बल्कि सुस्ती और लापरवाही में पड़े रहते हैं, तो ऐसा इसलिए है क्योंकि वे उद्धार करने वाले सत्यों को नहीं जानते, या उन्हें केवल आंशिक रूप से जानते हैं। पूर्ण ज्ञान विजयी है, क्योंकि तब एक कपटी हृदय के छिपे रहने के लिए कहीं कोई जगह नहीं रहती।

पापियों को जगाने के उद्देश्य से इस सर्व-व्यापी सार्वभौमिकता के कारण, परमेश्वर का वचन पृथ्वी भर में यात्रा करता है और कई रूपों में हमारे कानों तक पहुँचता है। यह चर्चों में, हर दिव्य सेवा में, और चर्चों के बाहर, हर धार्मिक अनुष्ठान में अनवरत सुना जाता है; यह चर्च के भजनों और स्तोत्रों में पाया जाता है; यह चर्च के पुरखों के उपदेशों में और आत्मा के लिए लाभकारी हर किताब में पाया जाता है; यह आत्मा-रक्षक वार्तालापों और युगों से चली आ रही आध्यात्मिक कहावतों में पाया जाता है; यह स्कूलों में, चित्रों में, और हर उस दृश्यमान वस्तु में पाया जाता है जो आध्यात्मिक सच्चाइयों का प्रतिनिधित्व करती है। इसी से यह स्पष्ट है कि हम ईश्वर के वचन से घिरे हुए हैं; यह हमें हर ओर से सुनाया जाता है। हर ओर से हमारे पास तुरही जैसी आवाज़ें आती हैं जो पाप के किलों, यरीहो की दीवारों की तरह, को नष्ट करने का आह्वान करती हैं। इन सभी रूपों में, ईश्वर के वचन ने मानव हृदय पर अपनी विजयी शक्ति का प्रदर्शन पहले ही कर दिया है, और यह करना जारी रखता है। हमें केवल यह सुनिश्चित करना है कि जिन मार्गों पर ईश्वर का वचन फैलता है, वे संरक्षित और निर्बाध रहें—कि सच्चा उपदेश मौन न हो जाए, कि दैवीय सेवाएँ अनुष्ठान के अनुसार और निर्माण के लिए संपन्न हों, कि प्रतिमा चित्रण सार्थक और पवित्र हो, और कि गायन गंभीर, सरल और भक्तिपूर्ण हो। इसकी पूर्ति वेदी के सेवकों पर निर्भर करती है। इसलिए, वे ईश्वर की व्यवस्था के हाथों में, पापियों के धर्म-परिवर्तन के लिए सबसे आवश्यक और सबसे शक्तिशाली साधन हैं। उन्हें यह महसूस करना चाहिए और न केवल चर्चों में बल्कि अपने घरों में भी चुप नहीं रहना चाहिए, हर अवसर का लाभ उठाते हुए—चाहे वह वचन में परमेश्वर की दुनिया को चित्रित करने का हो, या आत्मा और शरीर के भ्रमों द्वारा हमारे आत्मा की धोखाधड़ी को उजागर करने का (इस प्रकार के सबसे उत्कृष्ट उदाहरण सेंट टिकोहन में पाए जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वह किसी और से भी गहराई से समझते थे कि लिखने और बोलने की प्रतिभा का सबसे अच्छा उपयोग पापियों को शिक्षित करने और उनकी नींद से जगाने के लिए करना है। यही उनके लगभग हर लेखन का उद्देश्य है। हर चर्च के उपदेश और हर बातचीत का भी यही होना चाहिए।

प्रेरक अनुग्रह का वरदान प्रदान करने का सामान्य तरीका

यह पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि अनुग्रह की उत्तेजनाओं की विविध क्रियाओं में, जिस प्रकार अनुग्रह उस पापी के प्रति कार्य करता है जिसने पहले इन उत्तेजनाओं का अनुभव किया है लेकिन फिर से पाप में गिर गया है—अपने सामान्य घातक पापों में एक निर्णायक पुनरावृत्ति—विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। जितनी अधिक बार ये पुनरावृत्तियाँ होती हैं, उतनी ही कमजोर यह हलचल हो जाती है, क्योंकि हृदय, मानो, इससे परिचित हो जाता है, और यह आध्यात्मिक जीवन की सामान्य घटनाओं के क्षेत्र में चला जाता है। इस क्षीणता के साथ, यह अपनी वर्तमान रूप में इसे परिभाषित करने वाली ऊर्जा की भावना से हटकर, एक मात्र विचार के और करीब आता जाता है और अंततः एक साधारण विचार और स्मृति बन जाता है। कुछ समय के लिए, इस विचार को स्वेच्छा से स्वीकार किया जाता है; बाद में, इसे केवल सहन किया जाता है—हालांकि अप्रसन्नता के साथ नहीं, फिर भी उदासीनता से और बिना किसी विशेष ध्यान के; और फिर यह एक उपद्रव बन जाता है, जिससे व्यक्ति जल्द से जल्द छुटकारा पाने की जल्दी में होता है, और अंत में, यह असुविधा और घृणा की भावना को जगाता है; अब इसे प्यार नहीं किया जाता, बल्कि इससे नफरत की जाती है, इसे सताया जाता है और भगा दिया जाता है। तदनुसार, एक बेहतर आध्यात्मिक जीवन की आवश्यकता में दृढ़ विश्वास कम हो जाता है; पहले, यह आवश्यकता केवल संभावित प्रतीत होती है; फिर यह संदेहों से अस्पष्ट हो जाती है, जो इसके विभिन्न पहलुओं के बारे में प्रश्नों के रूप में होते हैं; और भी आगे, इसकी अनावश्यक और तुच्छ प्रकृति अत्यधिक संभावित हो जाती है; अंत में, भीतर एक निर्णय लिया जाता है: 'जीवन जैसे चलता है, वैसे ही जियो, क्योंकि कोई वैसा ही जी सकता है; बाकी सब अनावश्यक परेशानी है।' यहाँ, एक व्यक्ति बुराई और उदासीनता की गहराई में डूब जाता है—एक ऐसी स्थिति जो उस व्यक्ति के समान है जो कभी भी कार्रवाई के लिए प्रेरित नहीं हुआ है।

यह स्पष्ट है कि बाद वाले की मुक्ति अत्यंत खतरे में है। परमेश्वर की दया महान है, लेकिन वह भी उसके लिए अब कुछ नहीं कर पाएगी, ठीक वैसे ही जैसे उस जमीन के लिए जो बार-बार उस पर गिरने वाली बारिश को पीती रही, फिर भी बंजर बनी रही, क्योंकि वह *'अयोग्य और शापित होने के करीब' हो* गई *है* (इब्रानियों 6:8)। और अनुग्रह की प्रेरणाओं द्वारा अपेक्षित जीवन-पथ को बनाए रखने में विफल होने का यही परिणाम विशेष रूप से उन लोगों के मन में अंकित होना चाहिए जिन्हें इसकी आवश्यकता है। यह सच है कि दिव्य अनुग्रह अपने कार्यों में ऐसे मापदंडों और परिभाषाओं से बंधा नहीं है, फिर भी यह कभी-कभी उनके अनुरूप होता है। इसलिए, यद्यपि किसी को भी धर्म-परिवर्तन और उद्धार की संभावना से निराश नहीं होना चाहिए, चाहे अच्छे जीवन में लौटने का आह्वान कितना भी कमजोर क्यों न हो, फिर भी किसी को ऐसी कमजोरी के सामने हमेशा विनम्रता और भय के साथ अपनी स्थिति पर चिंतन करना चाहिए। क्या हम इतने नीचें नहीं गिर गए हैं कि हमने इन अनुग्रह-भरी प्रेरणाओं को स्वीकार करने का अंतिम अवसर भी गँवा दिया है? क्या हमने उन सभी रास्तों को नहीं रोक

दिया है जिनसे दैवी अनुग्रह, जो हमारी मुक्ति के लिए इतनी तीव्र इच्छा रखता है, हम पर कार्य कर सकता है? क्या ये हमारे पास आने के उसके अंतिम प्रयास नहीं हैं, जिसका उद्देश्य हमें होश में लाना और हमारे जीवन के अव्यवस्था को समाप्त करना है? इसलिए, जैसे ही ऐसे आह्वान फीके पड़ने लगते हैं, हमें अधिक तर्कसंगत प्रकार के दृढ़ संकल्प के साथ उनका उपयोग करने के लिए तत्पर होना चाहिए—और मानव स्वतंत्रता की अनुमति के अनुसार उन्हें मजबूत करना चाहिए। स्पष्ट रूप से, ऐसा प्रयास उस अनुग्रह के लिए स्वयं को खोलने के अलावा और कुछ नहीं होगा, जिसकी पुकार और खोज की जा रही है—एक ऐसा खुलना, क्योंकि अपनी पिछली पतनशीलताओं में हम धीरे-धीरे कठोर हो गए हैं और किसी न किसी तरह से हमने स्वयं को अनुग्रह से अलग कर लिया है। यह, प्रथम-प्रेरित की ऊर्जा तक आरोहण के लिए अब इंगित किए गए मार्ग पर, स्वयं को अनुग्रह के हवाले करके पूरा होगा, क्योंकि यह मान लेना चाहिए कि जैसे-जैसे कोई सुप्त आध्यात्मिक गतिविधियों को जगाने के लिए एक या दूसरे विषय को अपनाता है, बाद वाला (अनुग्रह) बढ़ेगा। इस प्रकार, जहाँ 'पहले-प्रेरित' के मामले में सब कुछ उत्साह, गति और जोश के साथ पूरा हो जाता है, वहीं बाद वाले के मामले में यह प्रक्रिया ठंडे दिमाग से, बिना जल्दबाजी के और बड़ी कठिनाई से आगे बढ़ती है। ऐसा लगता है मानो अनुग्रह उसे उसके हाल पर छोड़ देता है, ताकि वह महसूस कर सके कि बुलाने वाले ईश्वर के प्रति अटूट आज्ञाकारिता कितनी कीमती है, और ताकि ईश्वर की सहायता को संजोने की प्रवृत्ति जड़ जमा सके। प्रभु इस इच्छा को बनाए रखते हैं, फिर भी तुरंत विरक्ति नहीं प्रदान करते, बल्कि व्यक्ति को बीच में, एक लालसा की अवस्था में रखते हैं, जैसे न तो इस ओर और न ही उस ओर झुका हो, ताकि उनकी लगन की परीक्षा की जा सके और स्थिरता की इच्छा तथा वादे को बढ़ावा दिया जा सके। फिर, उनकी परीक्षा करने के बाद, वह विरक्ति प्रदान करते हैं।

इन कुछ बिंदुओं के साथ, हमने ईश्वर की कृपा के दो कार्य-तरीकों के बीच अंतर करने का प्रयास किया है, जिनमें से एक के बारे में प्रभु कहते हैं: *'देखो, मैं द्वार पर खड़ा हूँ और खटखटाता हूँ* (प्रकाशितवाक्य 3:20), और दूसरे के बारे में: *'... खोजो, तो तुम पाओगे; खटखटाओ, तो तुम्हारे लिए खोला जाएगा* (लूका 11:9)। हमने पहले तरीके का वर्णन किया है; दूसरे के बारे में प्रश्न उठता है: हमें कैसे खोजना है, और हमें कहाँ खटखटाना है?

असाधारण मामलों में, ईश्वर की कृपा तेजी से और निर्णायक रूप से कार्य करती है, जैसा कि हम उदाहरण के लिए, प्रेरित पौलुस, मिस्र की मरियम और अन्य लोगों के मामले में देखते हैं; लेकिन धर्मपरिवर्तन की सामान्य प्रक्रिया में, आमतौर पर ऐसा होता है कि एक व्यक्ति केवल अपने जीवन को बदलने और अपने कार्यों और आंतरिक प्रवृत्तियों में बेहतर बनने के विचार से प्रभावित होता है। यह विचार उत्पन्न होता है—लेकिन आत्मा पर कब्ज़ा जमाने के लिए इसमें कितना प्रयास किया जाना चाहिए! अधिकांशतः, ऐसे अच्छे इरादे फलहीन रह जाते हैं, हालांकि, अपनी गलती से नहीं, बल्कि उन लोगों के अनुचित रवैये के कारण जिनकी आत्माओं में वे प्रवेश करते हैं।

उनके साथ निपटने में पहली और सबसे बड़ी गलती यह है कि उन्हें अधूरा छोड़ दिया जाता है, एक दिन से दूसरे दिन के लिए टाल दिया जाता है। टालमटोल एक आम बुराई है और अपरिवर्तनीयता का मुख्य कारण है। हर कोई कहता है, 'मैं इसे बाद में कर लूंगा,' और अपने आदतन, अस्वास्थ्यकर जीवन के पुराने तरीकों में ही फंसा रहता है। तो, जब सुधार का कोई अच्छा विचार आपके मन में आए—तो उसे तुरंत अपना लें, उस काम को करने में लग जाएँ जिसके लिए वह आपको भेजा गया है, और इस उद्देश्य के लिए, सबसे बढ़कर, टालमटोल को दूर भगाएँ।

१) **टालमटोल को दूर भगाएँ**। खुद को यह कहने की अनुमति न दें, 'मैं इसे कल या कभी बाद में कर लूँगा'; तुरंत काम पर लग जाएँ। तर्कसंगत सोच को अपना हथियार बनाएँ, और उसकी मदद से:

क) अपने लिए टालमटोल की मूर्खता, कुरूपता और खतरे की तुरंत कल्पना करें। आप कहते हैं, 'बाद में', लेकिन बाद में यह करना और भी कठिन होगा, क्योंकि आप स्वयं पाप के आदी हो चुके होंगे, और आपकी पापी परिस्थितियाँ और उलझनें और अधिक जटिल हो चुकी होंगी। लेकिन पाप में फँसे हुए व्यक्ति का और अधिक फँसते जाने का क्या फायदा, जबकि वह खुद से यह कहता रहे कि बाद में खुद को इससे बाहर निकालना उतना ही आसान होगा जितना अब है? अगर आपको एहसास है कि आप जैसे हैं वैसे नहीं रह सकते, तो आप देरी क्यों कर रहे हैं? आखिरकार, ईश्वर अंततः कह सकते हैं: *'मैं तुमसे तंग आ गया हूँ* (देखें यशायाह 1:14), और आप स्वयं उस सीमा को पार कर सकते हैं जिसके बाद कोई वापसी नहीं है। और यह उस प्रकार की आपदा है, जिससे बचने के लिए कोई भी प्रयास बहुत बड़ा नहीं है। यदि एक विवेकपूर्ण विचार इन सभी बातों को स्पष्ट और जीवंत रूप से प्रस्तुत करता है, तो आत्मा की सभी प्रमुख शक्तियाँ टालमटोल से मुंह मोड़ लेंगी; भीतर, इसका कोई पक्षधर नहीं रहेगा। आप देखेंगे कि यह आपके प्रति शत्रुतापूर्ण है, और आप स्वयं भी इसे शत्रुता की दृष्टि से देखेंगे।

ख) हम टालमटोल इसलिए करते हैं क्योंकि हमारे मन में आया अच्छा विचार केवल एक विचार के रूप में ही हमारे

भीतर रहता है; उसने अभी तक न तो सहानुभूति जगाई है, और न ही कोई इच्छा जगाई है। हमारी अन्य रुचियों के बीच, वह एक अजनबी की तरह प्रकट हुआ है, जो दूर से हाथ हिला रहा है, फिर भी एक स्थायी छाप छोड़ने में विफल रहता है। यह आप पर निर्भर है कि आप इसे अपनी आत्मा की गहराइयों में लाएँ और इसके मूल्य और आकर्षण को प्रकट करें। तो, इसे सामने लाएँ; इसकी वैधता की कल्पना करें; उस आनंद और गरिमा को दिखाएँ जिसका यह वादा करता है; खुद को उस सहजता के बारे में आश्वस्त करें जिससे इसे पूरा किया जा सकता है। एक अच्छे विचार का बहुत कम प्रभाव होता है और वह दिल को जीतने में विफल रहता है क्योंकि मन में अन्य योजनाएँ होती हैं, अधिक दिलचस्प विषय होते हैं, जैसा कि उन प्रवृत्तियों द्वारा निर्देशित होता है जिन्होंने पहले आपको व्यस्त रखा है। तो उन सभी को सामने लाएँ और निष्पक्ष रूप से उनकी तुलना करें। अच्छे विचार द्वारा प्रस्तुत की गई बात की तुलना में, कुछ भी टिक नहीं सकता; सब कुछ बहुत दूर की पृष्ठभूमि में चला जाएगा। जिस चीज़ की ओर अच्छा विचार इशारा करता है, वह अकेली रह जाएगी और, एकमात्र मूल्यवान और सुंदर चीज़ के रूप में, आपको अपनी ओर खींच लेगी।

ग) हम मुख्य रूप से टालमटोल से इसलिए पीड़ित होते हैं क्योंकि, ऐसे समय में, हम अपनी ऊर्जा को कम होने देते हैं; हम आलस्य, सुस्ती, उनींदापन और अनिश्चितता में लिप्त हो जाते हैं, विचारों में और अपनी सक्रिय शक्तियों दोनों में; इसलिए कोई व्यक्ति इस दृष्टिकोण से भी खुद को संबोधित कर सकता है, यह स्पष्ट रूप से कल्पना करके कि सामान्य मामलों में ऐसा होने देना कितना अपमानजनक है, मोक्ष के सबसे आवश्यक मामले में तो छोड़ ही दें — कि हर चीज़ में किसी को खुद को जीवंत और त्वरित-कर्म करने वाला दिखाना चाहिए; इसके विपरीत होने देना शर्मनाक है, और जो आज किया जा सकता है और किया जाना चाहिए, उसे कल पर टालना शर्मनाक है।

इन और इसी तरह के तरीकों से टालमटोल को दूर भगाएँ। आप इसे किसी भी तरह से कर पाएं, बस करें। जब मन में कोई अच्छा विचार आए, तो खुद को उसे अमल में लाने के लिए टालने न दें; खुद को तैयार करें और उस पर तुरंत अमल शुरू करने के लिए खुद को मजबूर करें। जिन लोगों ने इस काम को बाद के लिए टाल दिया है, उनके लिए आज और कोई सलाह नहीं है।

लेकिन हमें विश्वास है कि इस उत्कृष्ट विचार को स्वीकार कर लिया गया है और इसने हमारा ध्यान खींचा है। अब हमें इसे इतनी तीव्रता तक पहुँचाने के लिए शीघ्रता करनी चाहिए कि यह एक शक्तिशाली उत्तोलक बन जाए, जो हमारे पूरे आंतरिक अस्तित्व को आसानी से और शक्तिशाली रूप से गति में ला सके। इसके लिए हमें इसे भीतर तक प्रवेश करने के लिए पूरी स्वतंत्रता देनी चाहिए, और इसके लिए हमें, एक तरह से कहें तो, इस जागरण की सबसे आवश्यक और प्रभावी तैयारी के रूप में अपने ऊपर कुछ प्रक्रियाएँ करनी होंगी।

ये 'कार्य' उन सूक्ष्म जालों या प्रवृत्तियों के पैटर्न के विपरीत होने चाहिए, जिनके द्वारा एक व्यक्ति पाप में कैद रहता है। पाप आत्मा को कई जालों में उलझाता है या कई परदों के नीचे खुद को उससे छिपाता है, क्योंकि वह स्वयं में भयानक है और पहली नज़र में किसी को दूर कर सकता है। सबसे गहरा पर्दा, और जो हृदय के सबसे करीब है, वह **आत्म-वंचना**, **असंवेदनशीलता** और **लापरवाही** से मिलकर बना है; इसके ऊपर, सतह के करीब, **विचलन** और **व्यस्तता** स्थित हैं — ये वे प्रमुख कारक हैं जो पाप को, साथ ही पापी आदतों और प्रथाओं को छिपाते और पोषित करते हैं; सबसे ऊपरी पर्दा **शरीर का प्रभुत्व** है, जो अन्य पर्दों की तुलना में अधिक स्पष्ट है, फिर भी उन जितना ही शक्तिशाली और महत्वपूर्ण है।

पहला पर्दा ही मूल पर्दा है। यह व्यक्ति को अपनी स्थिति के खतरे को समझने नहीं देता और न ही उसे इसे बदलने की इच्छा होती है। बाकी दो तो केवल उपकरण मात्र हैं; वे केवल उस पापी अवस्था को प्रकट करते हैं और बनाए रखते हैं। जब दिव्य कृपा आती है, तो वह *आत्मा और परमात्मा के बीच के विभाजन तक* प्रवेश करती है, सीधे पहले आवरण पर प्रहार करती है और उसे फाड़ देती है। इसके प्रभाव में, पापी व्यक्ति तुरंत नग्न हो जाता है और अपनी सारी कुरूपता के साथ अपनी ही चेतना के सामने खड़ा हो जाता है। लेकिन जब कोई व्यक्ति अभी भी अपनी ही इच्छा से इस कृपा-पूर्ण हलचल की तलाश कर रहा होता है, तो उसे बाहरी रूप से कार्य करके और भीतर तक पहुँचकर शुरुआत करनी चाहिए।

इसलिए, यदि आप उस विचार को ठीक से संबोधित करना चाहते हैं जिसने आपको जकड़ लिया है—अपने दुष्ट जीवन को बदलने का विचार—तो अपनी पापी चादरों को हटाकर शुरुआत करें, ठीक वैसे ही जैसे कोई मिट्टी की परतों को हटाकर नीचे छिपी हुई चीज़ को उजागर करता है।

क) सबसे पहले, **शरीर** पर काम करें। उसे सुख-आनंद से वंचित करें; यहां तक कि सबसे स्वाभाविक जरूरतों की संतुष्टि को भी सीमित करें; जागने के घंटों को बढ़ाएं; अपने सामान्य भोजन की मात्रा कम करें; अपने श्रम में नया श्रम जोड़ें। सबसे बढ़कर, यथासंभव और जैसा आप चाहें, शरीर को हल्का करें और उसके भार को कम करें। इस प्रकार, आत्मा भौतिक दुनिया के अपने बंधन से मुक्त हो जाएगी, अधिक चपल, हल्की और सकारात्मक छापों के प्रति अधिक ग्रहणशील बन जाएगी।

भौतिक शरीर, आत्मा पर हावी होकर, अपनी ही जड़ता और ठंडक प्रदान करता है। शारीरिक परिश्रम इन बंधनों को कमजोर करता है और उनके परिणामों को दूर करता है। यह सच है कि हर पापी अनियंत्रित जीवन नहीं जीता और शरीर के सुखों में लिप्त नहीं रहता, लेकिन सामान्य जीवन जीने वालों में शायद ही कोई ऐसा होगा जिसे शरीर को कुछ न कुछ त्यागना न पड़े, जब मोक्ष की इच्छा हृदय पर हावी हो जाती है। और लक्ष्य का बहुत महत्व है: यह किसी के कार्यों को पूरी तरह से बदल देता है। जो आप पहले आदत से या अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए करते थे, उसे अब मोक्ष की प्राप्ति के लिए करना शुरू करें—बेशक, कुछ परिवर्तनों और अधिक कठोरता के साथ—और आप अंतर को स्पष्ट रूप से महसूस करेंगे।

ख) शरीर आत्मा पर पूरी तरह से बोझ डालता है; **चिंताएँ** और **विचारों का विचलन** इसे भीतर से थका देते हैं। मान लीजिए कि देह को पहले ही वश में कर लिया गया है—यह पहला कदम है; लेकिन दो बाधाएँ आत्मा को स्वयं से अलग करती हैं।

चिंताएँ स्वयं पर ध्यान देने का समय ही नहीं देतीं। जब वे मौजूद होती हैं, तो हाथ में एक काम होता है, पर मन में दर्जनों काम होते हैं। यही कारण है कि वे व्यक्ति को लगातार आगे बढ़ाती रहती हैं, और उसे रुककर स्वयं को देखने का मौका ही नहीं देतीं। तो, अपनी चिंताओं को कुछ समय के लिए अलग रख दें, सभी को बिना किसी अपवाद के; उन्हें बस कुछ समय के लिए अलग रख दें; बाद में आप अपने सामान्य कार्यों को फिर से शुरू कर देंगे, लेकिन अभी के लिए उन्हें अलग रख दें, उन्हें जाने दें, और उन्हें अपने मन से भी निकाल दें।

लेकिन तब भी, जब ये ज़रूरी काम खत्म हो जाते हैं, तो भ्रम लंबे समय तक मन में बना रहता है: एक विचार दूसरे के पीछे आता है, कभी सामंजस्य में, कभी एक-दूसरे से टकराता हुआ; आत्मा बिखर जाती है, मन हर दिशा में भटकता है और इस प्रकार भीतर किसी भी स्थिर और दृढ़ चीज़ के जमने से रोकता है। तो, अपने बिखरे हुए बच्चों को एक साथ इकट्ठा करो, ठीक वैसे ही जैसे एक चरवाहा अपनी भेड़ों के झुंड को इकट्ठा करता है या जैसे काँच बिखरी हुई किरणों को एकत्रित करता है, और उन्हें अपनी ओर मोड़ो।

अपने भीतर गहराई से उतरने और अपने अंतर्मन पर ध्यान देने, विचारों के प्रसार को समाप्त करने और सचेत रहने की इच्छा के लिए, बेशक, एक अनिवार्य साधन के रूप में, एक ओर एकांत और दूसरी ओर, घरेलू और पेशेवर, दोनों तरह की अपनी सामान्य गतिविधियों का विराम आवश्यक होगा; जबकि उपर्युक्त शरीर की कठोर तपस्या के लिए अपनी प्राकृतिक जरूरतों को पूरा करने के तरीके में बदलाव की आवश्यकता होगी। इसी से यह स्पष्ट होता है कि अपने जीवन में बदलाव लाने के लिए सबसे उपयुक्त समय उपवास का माना जाना चाहिए, विशेषकर महा-उपवास का। हर चीज़ इसी के लिए तैयार रहती है—घर पर, चर्च में और समाज में भी। हर कोई इस समय को पश्चाताप की तैयारी के रूप में मानता है। हालाँकि, इसका यह मतलब नहीं है कि जब जीवन बदलने का कोई अच्छा विचार आए, तो उसे लेंट की शुरुआत तक टाल दिया जाना चाहिए। इसके लिए आवश्यक सभी चीजें लेंट के अलावा किसी भी अन्य समय में की जा सकती हैं। लेकिन, बेशक, जब लेंट का पवित्र मौसम आता है, तो अपनी आत्मा के उद्धार की परवाह किए बिना इसे बीतने देना एक पाप होगा, ठीक वैसे ही जैसे कोई अन्य समय को बीतने दे सकता है। जिस किसी को लेंट के अलावा अपने जीवन को बदलने का उद्धारकारी विचार आता है, और जो अपने दैनिक जीवन में इसे व्यवहार में लाने में कोई बाधा पाता है, उसके लिए कुछ समय के लिए किसी मठ में चले जाना सबसे अच्छा है। वहाँ, अपने आप पर काबू पाना आसान होता है।

ग) यहाँ आप अब अपने हृदय के सामने खड़े हैं। आपके सामने आपका आंतरिक स्वरूप पड़ा है, जो लापरवाही, असंवेदनशीलता और अंधापन की गहरी नींद में डूबा हुआ है। इसे जगाना शुरू करें। जो अच्छा विचार आया है, उसने इसे पहले ही थोड़ा सा जगा दिया है। तब, अधिक आत्मविश्वास और विचारों की परम एकाग्रता के साथ आगे बढ़ें; अपना सारा ध्यान एकत्रित करके, विभिन्न प्रकार की मानसिक छवियों—अधिक या कम शक्तिशाली और प्रभावशाली—को मन में उभारना शुरू करें, हालाँकि, उन्हें अपनी आंतरिक अवस्था पर लागू करते हुए।

सबसे पहले, अपने मन की आँखों से उन परदों को हटा दें जो इसे **अंधापन की स्थिति** में रखते हैं। यदि कोई व्यक्ति पाप से मुँह नहीं मोड़ता और उससे भागता नहीं है, तो इसका मुख्य कारण यह है कि वह स्वयं को नहीं जानता या उस खतरे को नहीं जानता जिसमें वह पाप के कारण खुद को पाता है। यदि उसकी आँखें खुल जातीं, तो वह पाप से वैसे ही भागता जैसे कोई आग की लपटों में घिरे घर से भागता है। ऐसी अंधता आत्म-चिंतन की कमी से भी उत्पन्न होती है: एक व्यक्ति खुद को नहीं जानता क्योंकि उसने कभी अपने भीतर झाँककर नहीं देखा या अपने और अपनी नैतिक स्थिति पर चिंतन नहीं किया है; लेकिन ज़्यादातर, यह अंधता उसके बारे में कुछ विशिष्ट पूर्वधारणाओं द्वारा बनी रहती है। एक व्यक्ति, अपने आप में , विचारों की एक ऐसी जाल बुनता है जो व्यवस्थित रूप से उन्हें अपने आप से बचाती है। चाहे ये विचार एक महीन जाल हों, महज़ धुंधली संभावनाएँ ही क्यों न हों—फिर भी मन के पास उन्हें स्पष्ट रूप से परखने का समय नहीं है; और फिर भी हृदय उनकी

वास्तविकता और सत्य के बारे में इतनी ज़ोर से बोलता है। वास्तव में, ये हमारे नैतिक भ्रम या पूर्वाग्रह हैं, जो मन के मामलों में हृदय के हस्तक्षेप से उत्पन्न होते हैं। इसीलिए, इस क्षण से आगे, हमें गहरी एकाग्रता को एक निश्चित मात्रा में संयम के साथ जोड़ना चाहिए, जो कपटी हृदय से सभी चापलूसी को दूर करता है। अब से, यदि हृदय को कुछ महसूस करने की आवश्यकता हो, तो वह मन के विचारों के प्रभाव में रहकर महसूस करे, न कि अपनी मर्जी से, जैसे कि वह आगे भाग रहा हो; अन्यथा, यह एक बार फिर से मन को अपनी ही तरह से चीजों को देखने के लिए मजबूर कर देगा, एक बार फिर से उसे अपने अधीन कर लेगा, एक बार फिर से हमारी अवधारणाओं में अव्यवस्था लाएगा और प्रबोधन के बजाय, हमें और भी बड़ी अंधकार में धकेल देगा।

अब जब आपने खुद को इस स्थिति में ला लिया है, तो उन विभिन्न विचारों को सामने लाना शुरू करें जो आपको अंधकार में रखते हैं, और उन्हें एक सख्त और निष्पक्ष निर्णय के अधीन करें।

क) '**मैं एक ईसाई हूँ**,' आप कहते हैं, और इसमें सांत्वना पाते हैं। यहीं पर आत्म-वंचना का पहला रूप निहित है: अपने लिए ईसाई विशेषाधिकारों और वादों को अपना लेना, बिना इस चिंता के कि सच्चे ईसाई धर्म को अपने भीतर जड़ें जमाने दें, या ऐसे नाम को अपनाएँ जो केवल शक्ति और आंतरिक मूल्य पर ही टिक सकता है और खड़ा रह सकता है। तो, खुद को समझाएँ कि केवल एक नाम में आशा रखना भ्रामक है; कि ईश्वर अब्राहम के लिए पत्थरों से भी संतान उत्पन्न कर सकते हैं, और जब भी उनमें भाग लेने की शर्तें पूरी नहीं होती हैं, तो वे किसी भी समय अपने वादों को वापस ले सकते हैं। सबसे बढ़कर, अपने लिए यह स्पष्ट करें कि एक ईसाई होना क्या माने है; इस आदर्श से खुद को परखें — और आप देखेंगे कि आपकी इस अंधापन का यह स्तंभ कितना दृढ़-स्थापित है।

ख) **"लेकिन हम सबसे कम में से नहीं हैं**; हम एक-दो बातें जानते हैं, और अगर हम किसी चीज़ पर चर्चा करने का मन बना लें, तो हम ऐसा करने में सक्षम हैं, और हम अपने मामलों को न तो बेतरतीबी से चलाते हैं और न ही बिना समझदारी के, जैसा कि दूसरे करते हैं।" इस प्रकार कुछ लोग अपनी आध्यात्मिक गुणों से मोहित हो जाते हैं। इसके विपरीत, अन्य लोग शारीरिक गुणों—शक्ति, सुंदरता, वंश—से चकाचौंध हो जाते हैं। जब हम अपने आसपास के सभी लोगों से ऊपर होते हैं, तो ये दोनों ही और अधिक अंधा हो जाते हैं। अतः स्वयं को आश्वस्त करें:

1) कि प्राकृतिक प्रतिभाओं का कोई नैतिक मूल्य नहीं है, क्योंकि वे हमारी अपनी उपलब्धि नहीं हैं, बल्कि हमें ईश्वर द्वारा प्रदान की गई हैं; विशेष रूप से ईसाई धर्म में, जहाँ 'पतन' (Fall) के कारण प्रकृति में आई भ्रष्टता के कारण सब कुछ प्राकृतिक महत्वहीन है। उद्धारकर्ता मसीह में विश्वास के द्वारा और उस विश्वास के अनुसार जीवन जीकर अपनी प्रतिभाओं को पवित्र करें; केवल तभी आपको उन्हें एक आशीर्वाद मानना चाहिए।

2) फिर से—क्या आपने अपनी प्रतिभाओं के अनुसार सब कुछ किया है जो आप कर सकते हैं और करना चाहिए? आपसे अधिक जवाब तलब किया जाएगा, क्योंकि आपको अधिक दिया गया है। यह क्षमताओं का मामला नहीं है, बल्कि उनके उपयोग का है। दिखाएँ कि आपने उनके माध्यम से क्या हासिल किया है। क्या यह लाभ आपके द्वारा किए गए प्रयास के अनुरूप है?

3) शारीरिक या किसी अन्य आकस्मिक लाभों के बारे में बात करने की कोई आवश्यकता नहीं है। एक अंश में, संत क्रिसोस्टोम एक ऐसे व्यक्ति का वर्णन करते हैं जो दूसरे की सुंदरता, भव्यता, धन-संपत्ति, एक शानदार घर, खूबसूरती से सजाए गए घोड़ों पर सवारी करने आदि के लिए प्रशंसा करता है, और फिर उससे इन शब्दों में कहता है: 'तुमने मुझे खुद उस व्यक्ति के बारे में कुछ भी क्यों नहीं बताया? तुमने जो कुछ भी कहा है, वह वह नहीं है।'

4) जहाँ तक दूसरों का सवाल है, उन पर ध्यान देने का कोई फायदा नहीं है; उन्हें अपने हाल पर छोड़ दो। हर कोई अपने लिए हिसाब देगा। अपने आप को देखो और दूसरों से अलग होकर, केवल स्वयं का ही न्याय करो, दूसरों से तुलना किए बिना। या, यदि तुम सचमुच किसी से तुलना करना चाहते हो, तो स्वयं की तुलना पवित्र संतों से करो। वे जीवित ईसाई कानून हैं, या उद्धार पाने वालों का जीवित उदाहरण हैं। यदि तुम स्वयं का न्याय उनसे करते हो, तो तुम कभी गलत नहीं होओगे।

ग) **"हम अभी इतने बुरे नहीं हैं**: ऐसा लगता है कि हम अपमानजनक व्यवहार नहीं करते हैं, और दूसरे हमें बुरे लोगों के रूप में नहीं मानते हैं; वे हमसे अपना सम्मान और ध्यान नहीं छीनते — और इसके अलावा, ये केवल आम लोग नहीं हैं, बल्कि महत्वपूर्ण हस्तियाँ हैं।" व्यवहार और बाहरी संबंधों की दिखावट से पैदा हुई यह अंधापन, कितनी घोर अंधकार की चादर है! अपने लिए इसे और भी स्पष्ट कर लें कि आंतरिक के बिना बाहरी का कोई मूल्य नहीं है। बाहरी आचरण की मर्यादा पत्तों की तरह है; आंतरिक शुभ प्रवृत्तियाँ फल हैं। अंजीर के पेड़ ने अपनी पत्तियों से फल का वादा किया था, लेकिन उद्धारकर्ता ने उस पर कोई फल न पाकर उसे शाप दिया। इसी प्रकार, उसकी दृष्टि में वह व्यक्ति भी दोषी है जो बाहरी रूप से निर्दोष है लेकिन उसके पास एक सच्चा अच्छा और ईश्वर-भयभीत हृदय नहीं है। *'हे मेरे पुत्र, अपना मन मुझे दे दे,'* प्रभु बुद्धिमान के द्वारा

कहते हैं (नीतिवचन 23:26)। हृदय से ही सब अच्छा और सब बुरा निकलता है। जैसा तुम अपने हृदय में हो, वैसे ही तुम प्रभु के सामने हो। यदि तुम हृदय से अहंकारी हो, तो चाहे तुम बाहर से कितने भी नम्र क्यों न दिखो, प्रभु तुम्हें अहंकारी ही देखता है। सभी अन्य मामलों में भी ऐसा ही है। और दूसरों का निर्णय छलपूर्ण चापलूसी है। दूसरे हमें नहीं जानते, फिर भी वे हमारे साथ दयालुता से पेश आते हैं, या तो यह मानकर कि हम अच्छे हैं, या शिष्टाचार के भाव से। क्या ऐसा नहीं है कि हमारे आस-पास के लोग, हममें बुराई देखते हुए भी, अपने कारणों से हमें इसका इशारा नहीं करते? क्या ऐसे उदाहरण भी नहीं हैं जहाँ दूसरे, दूसरों में बुराई देखकर, उसकी प्रशंसा करते हैं और इस प्रकार बुराई करने में एक तरह की लापरवाही की भावना को भड़काते हैं; और उनका असावधान अनुयायी बिना रुके और गहराई तक बुराई और दुष्टता में डूब जाता है; क्योंकि जब कोई व्यक्ति अपने कर्मों के प्रति अपने आस-पास के लोगों के चेहरों पर संतोष की मुस्कान देखता है, तो वह एक तरह के आत्म-संतोष के साथ बुराई में बना रहता है। अगर हमें दूसरों द्वारा हमारे बारे में दिए गए निर्णयों को ही इतनी गंभीरता से सुनना है, तो हमें भी इस तरह की किसी भी चीज़ में खुद को गिरने नहीं देना चाहिए!

ग) "लेकिन भले ही मुझमें दुष्टता हो—**क्या मैं ही अकेला ऐसा हूँ**? अमुक व्यक्ति भी ऐसा ही है, और पिक्का, और यहाँ तक कि वहाँ वह व्यक्ति भी। निश्चय ही और भी बहुत से लोग हैं जो दुष्ट हैं, मुझसे भी बदतर..." हम अपने चारों ओर पाप के प्रचलन के प्रति खुद को अंधा कर लेते हैं। यह जान लें, कि पापियों की भीड़ धार्मिकता के नियम को नहीं बदलती है और न ही यह किसी को उसकी जिम्मेदारी से मुक्त करती है। ईश्वर संख्याओं को नहीं देखता। यद्यपि सभी ने पाप किया है, वह उन सभी को दंड देगा। मूसलाधार वर्षा से पहले कितने ही लोग थे, और फिर भी आठ प्राणियों को छोड़कर सभी नष्ट हो गए; और सदोम और गमोरा के साथ, पाँच शहर स्वर्ग से आई आग से नष्ट हो गए, और लूत और उसकी बेटियों को छोड़कर कोई नहीं बचा। न ही नरक की यातनाएँ केवल इसलिए कम गंभीर होंगी क्योंकि वहाँ पीड़ित लोगों की संख्या अधिक है; इसके विपरीत, क्या प्रत्येक व्यक्ति का दुख उनकी सामूहिक उपस्थिति से और तीव्र नहीं हो सकता? इस तरह के और इसी तरह के तर्कों के साथ, पूर्वाग्रही विचारों के अंधकार को दूर करने के लिए जल्दी करें, जो आपको अंधा बनाए रखते हैं और आपको स्वयं को वैसे देखने से रोकते हैं जैसे आपको होना चाहिए। आत्म-सुधार के इस पहले अभ्यास का लक्ष्य स्वयं पर संदेह करना और अपनी स्थिति की सुरक्षा के बारे में आपको अस्थिर करना निर्धारित करें। आप इस निष्कर्ष पर स्वाभाविक रूप से तब पहुँचेंगे, जब आप एक-एक करके उन स्तंभों को हटाना शुरू करेंगे जिन पर हमारी अंधापन झूठी तरह से टिका है; जब, धीरे-धीरे, आप अपने आप में और अपनी किसी भी चीज़ में खाली आशाओं को तोड़ना शुरू करेंगे; जब, धीरे-धीरे, आप *पापों के बहाने बनाने की बनावट को* चकनाचूर करना शुरू करेंगे, (भजन संहिता 140:4) अर्थात् हर समय और हर बात में स्वयं को सही ठहराने की प्रवृत्ति। अपने मन को यह यकीन दिलाओ कि यदि तुम दुष्ट हो तो तुम्हारा मसीही जीवन व्यर्थ है; कि तुम्हारी तथाकथित सिद्धियाँ तुम्हें न्याय देने की अपेक्षा अधिक दोषी ठहराती हैं; कि तुम्हारी बाहरी धार्मिकता ईश्वर-विरोधी एक दिखावा है, जबकि तुम्हारा हृदय भ्रष्ट बना रहता है; कि न तो दूसरों की प्रशंसा और न ही दुष्टता में सहभागिता की उदारता तुम्हें ईश्वर के न्याय और क्रोध से बचा पाएगी। धीरे-धीरे, आप अपने विचारों में अलग-थलग हो जाएँगे और अकेले खड़े हो जाएँगे—अपने मन और विवेक की दृष्टि के सामने अकेले, जो आपके विरुद्ध ज़ोर से आवाज़ उठाएगा, विशेष रूप से तब जब आप खुद की तुलना मसीह में आपको जो होना चाहिए, उससे करेंगे और पाएँगे कि आप अपने आदर्श से बहुत पीछे रह गए हैं। परिणामस्वरूप, यदि आपकी अंतरात्मा आपको धोखा नहीं देती है, तो आप स्वाभाविक रूप से अपने लिए भयभीत हो जाएँगे। मानो सभी से अलग-थलग और हर सहारे से वंचित होकर, आप अपने लिए निराशा और भय की भावना से ग्रस्त हो जाएँगे। हर तरह से, आपको अपनी अंधापन के इस काम को ठीक इसी बिंदु तक ले जाना चाहिए। इस भावना का पुनः जागृत होना हमेशा पाप से पलायन की प्रस्तावना है, ठीक वैसे ही जैसे युद्ध में दुश्मन की कतारों का डगमगाना उनके निकटवर्ती पराजय का संकेत होता है।

1. जैसे ही इस प्रकार आपके पापबोध और उसमें बने रहने के खतरे की अनुभूति की सबसे मामूली सी हलचल उत्पन्न हो, तो और भी गहराई से अपने भीतर झाँकें और और भी तीव्र मानसिक एकाग्रता के साथ, स्वयं को कुछ भयानक और होश ठंडा कर देने वाले दृश्यों से आघात पहुँचाएँ; अपने **कठोर हृदय को** उनसे हिलाएँ और कोमल करें, ठीक वैसे ही जैसे एक भारी हथौड़ा एक कठोर पत्थर को कोमल कर देता है।

(क) अपनी नश्वरता को याद करो। अपने आप से कहो: 'हाय, **मृत्यु** निकट है।' आपके चारों ओर एक के बाद एक लोग मर रहे हैं; आपकी बारी भी आने वाली है। अपनी मृत्यु के समय को टालने के बिना, खुद को यकीन दिलाओ कि मृत्यु का दूत पहले ही भेज दिया गया है, रास्ते में है, और निकट आ रहा है। या खुद को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में कल्पना करें जिसके सिर पर तलवार लटकी हो, जो उसे गिराने के लिए तैयार हो। फिर स्पष्ट रूप से कल्पना करें कि मृत्यु में और मृत्यु के बाद आपका क्या होगा। *निर्णय द्वार पर प्रतीक्षा कर रहा है।* आपके रहस्य स्वर्गदूतों और सभी संतों के सामने उजागर हो जाएँगे। वहाँ, सभी

की आँखों के सामने, आप अपने कर्मों के साथ अकेले खड़े होंगे। उनके द्वारा या तो आपको दोषी ठहराया जाएगा या आपका बरी किया जाएगा। और **स्वर्ग** क्या है, और **नरक** क्या है? स्वर्ग में अनुपम आनंद है; नरक में बिना किसी सांत्वना या अंत के यातना है; उस पर ईश्वर की अंतिम अस्वीकृति की मुहर लगी है। यह सब अपने हृदय में ग्रहण करो और स्वयं को इस पर मनन करने के लिए विवश करो, जब तक कि तुम **भय** और **आतंक से** भर न जाओ।

ख) फिर परमेश्वर की ओर मुड़ो और स्वयं को, जो अनेक पापों से कलंकित और बोझिल है, उनके सामने प्रस्तुत करो—वह जो सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्व-दयालु और दीर्घ-सहिष्णु है! क्या तुम अपनी घृणित, पापी काया से ईश्वर की दृष्टि को अपमानित करते रहोगे? क्या तुम उस पर कृतघ्नता में अपनी पीठ फेरते रहोगे जो तुम्हें हर तरह से दया दिखाता है? क्या तुम फिर भी पिता की उस आवाज़ के लिए अपने कान बंद करोगे, जो तुम्हें दया से पुकारती है? क्या तुम फिर भी तुम्हें ग्रहण करने के लिए बढ़ाए गए हाथ को ठुकरा दोगे? इस असंगति को हृदय से ग्रहण करो और अपने भीतर **परमेश्वर के प्रति करुणा और शोक को** जगाने और मज़बूत करने में शीघ्रता करो।

ग) इसके अलावा, याद रखें कि आप एक ईसाई हैं, जो मसीह के लहू से छुड़ाए गए हैं, बपतिस्मा के जल से धोए गए हैं, पवित्र आत्मा प्राप्त कर चुके हैं, प्रभु भोज में भाग लेते हैं और उनके शरीर और लहू से पोषित होते हैं। और यह सब आपने पाप के कारण पैरों तले रौंद दिया है, जो आपको नष्ट कर रहा है! अपने मन की आँखों से गोलगोथा की चढ़ाई करें और महसूस करें कि आपके पापों का क्या मोल है… क्या आप फिर भी अपने पापों की काँटों से प्रभु के सिर को घायल करेंगे? क्या आप फिर भी उन्हें सूली पर चढ़ाएंगे, उनकी पसली में भेदेंगे और उनके दीर्घ सहनशीलता का मज़ाक उड़ाएंगे? या क्या आप नहीं जानते कि पाप करके, आप उद्धारकर्ता के दुख में भागीदार बनते हैं और इसलिए उनके यातना देने वालों की नियति के भागीदार बनेंगे; लेकिन यदि आप पाप का त्याग करते हैं और पश्चाताप करते हैं, तो आप उनकी मृत्यु की शक्ति में सहभागी होंगे? दो में से एक चुनें: या तो उन्हें सूली पर चढ़ाना और हमेशा के लिए नष्ट हो जाना, या उनके साथ सूली पर चढ़ना और उनके साथ अनंत जीवन का वारिस बनना।

d) आगे विचार करें कि यह पाप क्या है, जिससे आप इतनी प्रियता से चिपके हुए हैं। यह बुराई है, सभी बुराइयों में सबसे विनाशकारी; यह हमें परमेश्वर से दूर करता है, आत्मा और शरीर को विघटित करता है, हमें अंतरात्मा के कष्टों के अधीन करता है, हमें जीवन में, मृत्यु में और मृत्यु के बाद परमेश्वर की सजाओं के अधीन करता है, और हमें नरक में डाल देता है, और हमें हमेशा के लिए स्वर्ग से बाहर कर देता है। हम किस राक्षस से प्रेम करते हैं! पाप से उत्पन्न होने वाली सभी बुराइयों को हृदय में ग्रहण करो, और **उससे घृणा करने तथा उससे दूर हटने का** प्रयास करो।

(घ) अंत में, पाप को शैतान के दृष्टिकोण से देखें, जो इसका पहला उत्प्रेरक और प्रचारक है, और विचार करें कि आप पाप के माध्यम से किसके लिए परिश्रम कर रहे हैं। परमेश्वर ने आपके लिए सब कुछ किया है और करते रहते हैं, फिर भी आप उन्हें प्रसन्न करने से इनकार करते हैं; शैतान आपके लिए कुछ नहीं करता है और केवल पाप के माध्यम से आप पर अत्याचार करता है, फिर भी आप स्वेच्छा और अथक परिश्रम उसके लिए करते हैं। आप पाप के द्वारा उसके मित्र हैं, जबकि वह आपके प्रति उससे द्वेष रखता है। वह आपको पाप के सुखों के वादे से पाप में फँसाता है; फिर भी वह उन लोगों को पीड़ित और कष्ट देता है जो पाप में गिर जाते हैं। यहाँ वह यह सुझाव देता है कि पाप कुछ भी नहीं हैं, फिर वहाँ वह उन्हें हमारे खिलाफ सबूत के तौर पर, गंभीर आरोपों के रूप में पेश करेगा। जब कोई पाप के जाल में फँसता है और वहीं बना रहता है, तो वह दुर्भावनापूर्ण आनंद से काँप उठता है। इन सब पर विचार करो और अपने भीतर इस मानव-द्वेषी और उसके कर्मों के प्रति घृणा जगाओ।

जब आप इस प्रकार अपने हृदय में एक के बाद एक ऐसी भावनाएँ भरते हैं जो बारी-बारी से उसे कुचलती और कोमल बनाती हैं — भय और आतंक, दुःख और करुणा, घृणा और द्वेष — तो वह धीरे-धीरे गर्म होकर जीवंत हो उठेगा, और उसके साथ ही आपकी शिथिल इच्छाशक्ति भी हिलने और तनने लगेगी। जैसे बिजली की धाराएँ शरीर में एक विशेष तनाव और उत्साह भर देती हैं, या जैसे सुबह की स्वच्छ, ठंडी हवा एक विशेष ताजगी और जोश प्रदान करती है, वैसे ही ये भावनाएँ, आत्मा को भरकर, उसकी सुप्त ऊर्जा को जगाएंगी और अपनी खतरनाक स्थिति से बचने के लिए कार्य करने की इच्छा और तत्परता को फिर से प्रज्वलित करेंगी। ये अपने स्वयं के उद्धार के लिए सक्रिय चिंता की पहली हलचलें होंगी। इसलिए, इसी क्षण से, और भी दृढ़ संकल्प के साथ कार्य करें।

२) **लापरवाही की नींद को** दूर भगाएँ। पाप में लंबे समय तक रहने से अच्छा करने की आपकी इच्छा कमजोर हो गई है—अब इसके चारों ओर ऐसे विचारों को इकट्ठा करें जो आमतौर पर ऊर्जा जगाते हैं: अच्छाई की ओर, मोक्ष, गरिमा, सार्वभौमिकता, पूर्ति की आसानी और बाधाओं का दूर होना, हाथ में तैयार आनंद, और सबसे बढ़कर—आवश्यकता की कल्पना करें; हालाँकि, पाप की ओर सब कुछ इसके विपरीत है; इसे स्वयं को विस्तार से और पूरी ईमानदारी से समझाएँ, जब तक कि आप स्वयं को जगा न लें और स्वयं को सतर्क ऊर्जा की स्थिति में न ला लें, जो तुरंत कार्य शुरू करने के लिए तैयार

हो। अपनी आत्मा से कहें:

क) आखिरकार, दो में से एक बात है: या तो यदि आप ऐसे ही रहे तो आप अनंतकाल तक नष्ट हो जाएँगे, या, यदि आप ऐसा नहीं चाहते, तो पश्चाताप करें और प्रभु और उनकी आज्ञाओं की ओर मुड़ें। देरी क्यों? आप जितना अधिक इंतजार करेंगे, उतना ही बुरा होगा। सतर्क रहें, क्योंकि मृत्यु द्वार पर है।

ख) क्या यह इतना बड़ा प्रयास है? बस शुरू करें; बस प्रयास करें। प्रभु निकट हैं, और उनसे सभी सहायता आपके लिए तैयार है।

c) और यह कितना बड़ा आशीर्वाद है! आप इस बोझ और इन बंधनों को उतार फेंकेंगे, और परमेश्वर की संतान होने की स्वतंत्रता में प्रवेश करेंगे।

d) आप खुद को उस तरह क्यों सता रहे हैं जैसे कि आप कोई दुश्मन हों? आपको दिन-रात कोई शांति नहीं मिलती। हर जगह भ्रम और चिंता है। बस अपने भीतर एक छोटा सा बदलाव लाएं, और यह सब गायब हो जाएगा; आप जीवन का आनंद देखेंगे।

e) देखो, सभी पहले ही प्रभु के पास जा चुके हैं… एक ने मुंह फेर लिया, और दूसरे ने, और तीसरे ने। तुम वहाँ खड़े क्यों हो? जाओ! क्या तुम दूसरों से भी बुरे हो?

f) आपके चारों ओर सब कुछ जीवित है और सब कुछ आपको जीवन की ओर बुलाता है। ईश्वर मृतकों के नहीं, बल्कि जीवितों के ईश्वर हैं। उनके जीवन को जीने वालों में शामिल हो जाइए। जाइए, जीवन के जल के झरनों से पियें।

एक सुस्त इच्छाशक्ति की ऊर्जा तब हमेशा जागृत होती है जब कोई व्यक्ति खुद को दो चरम सीमाओं के बीच रखता है — या तो नष्ट हो जाना या अपना जीवन बदलना। आत्म-संरक्षण की प्रवृत्ति उन्हें तुरंत कार्रवाई के लिए प्रेरित करेगी। इसके बाद इस बात पर प्रकाश डालें कि अपने जीवन को बेहतर बनाने से कितनी बड़ी आशीष की उम्मीद की जा सकती है, ऐसा करना कितना आसान है, और आप इसके लिए सक्षम हैं और इसकी ओर बुलाए गए हैं, और आपके पास इसके लिए सभी साधन उपलब्ध हैं; कैसे पृथ्वी और स्वर्ग में सभी शुभ चीज़ें आनंदित होंगी, आपके साथ संगति करेंगी, आपको अपनी बाहों में उठा लेंगी, और हमारे प्रभु यीशु मसीह में रहने वालों के साथ सामूहिक जीवन में आनंद का प्रवाह होगा—इन सभी बातों की ओर इशारा करें, और आपकी दुर्बल इच्छाशक्ति पुनर्जीवित हो जाएगी, और आपके सुस्त घुटने मजबूत हो जाएँगे।

इस प्रकार स्वयं पर परिश्रम करके, आप अपनी अंधापन, असंवेदनशीलता और लापरवाही को लगातार दूर करेंगे। लेकिन परिश्रम करें, और बिना थके परिश्रम करें। पापी आत्मा में एक चालाकी होती है, जो हर तरह से मोक्ष के लिए आवश्यक परिश्रम से बचती है। आओ, इसे पकड़ो और उठाओ; यह प्रतिरोध नहीं करेगा—यह बस स्वयं परिश्रम नहीं करना चाहता। आपके अंतर्मन में, आप के सिवा कोई और स्वामी नहीं हो सकता। अपने भीतर प्रवेश करो और अपने ही मन को तोड़ो, गिरा दो और समझदार बनाओ; परमेश्वर के साम्हने अपना ही मुकदमा पेश करो; स्वयं को मनाओ और विश्वास दिलाओ। यही कारण है कि, परिवर्तन के कार्य में, स्वयं से तर्क करना, कहा जा सकता है, इसका एकमात्र प्रवेश द्वार है। यदि आप स्वयं से तर्क नहीं करते और यह विचार नहीं करते कि क्या करना है, तो आपके लिए यह कौन करेगा? इसीलिए आपसे कहा जाता है: 'इस पर विचार करो, उस पर मनन करो, ऐसे-ऐसे मामलों में गहराई से जाओ।'

इसी से कोई यह आँकलन कर सकता है कि एक पापी के लिए यह कितना बड़ा आशीर्वाद है कि उसके भीतर का भ्रष्टाचार अभी तक सत्य के ज्ञान की ज्योति को पूरी तरह से बुझा नहीं पाया है। चाहे उसका चरित्र भ्रष्ट हो, उसकी भावनाएँ अशुद्ध हों; लेकिन यदि उसकी आत्मा में सही विचार बचे हुए हैं, तो उद्धार के बारे में सोचना शुरू करने वाले के पास पकड़ने के लिए अभी भी कुछ है। लेकिन जब ये भी चले जाते हैं, जब मन भी भ्रष्ट हो जाता है—चाहे वह संदेह में पड़ जाए, अपनी दृढ़ विश्वास खो दे, या पूरी तरह से विकृत शिक्षाओं को अपना ले—तो एक व्यक्ति के लिए अपने लिए कुछ भी करने को नहीं बचता; तब उसे यह स्वीकार करना होगा कि उसमें सिर से पाँव तक कोई ईमानदारी नहीं है। हालाँकि, बहुत कम लोग ऐसी स्थिति तक पहुँचते हैं। और जो लोग वहाँ पहुँचते भी हैं, यदि उनके धर्म-परिवर्तन की कोई संभावना होती है, तो वे ईश्वर की अनुग्रह की असाधारण और आश्चर्यजनक कृत्यों के द्वारा परिवर्तित होते हैं। हालाँकि, अधिकांश पापी अपना विश्वास नहीं खोते, या, प्रेरित के शब्दों में, 'स्वस्थ शिक्षा' नहीं खोते, बल्कि केवल नैतिक रूप से भ्रष्ट हो जाते हैं। ऐसे लोगों के लिए, उपेक्षा के कारण धुंधली हो गई अवधारणाओं को फिर से जगाना और उनमें कमजोर पड़ गई दृढ़ विश्वास को मजबूत करना पर्याप्त है—जो सामान्य रूप से सभी अच्छी चीजों के प्रति लापरवाही और उदासीनता से उत्पन्न होता है। बैठें और स्वयं यह परखें कि आपको क्या मानना चाहिए, कैसे जीना चाहिए, और क्या आशा रखनी चाहिए, धर्म-विश्वास-सूची और प्रभु की आज्ञाओं के अनुसार। यदि आपको यह कठिन लगे, तो धर्मशिक्षा-पुस्तिका देखें; यदि आप वह भी नहीं कर सकते, तो किसी से बात करें—और सबसे बढ़कर अपने आध्यात्मिक पिता से। जब आप ऐसा कर लेंगे, तो राजसी सत्य आपके भीतर विजयी होकर प्रकट होगा—और

अधिकार के साथ, आपके ऊपर हावी हो चुके कर्मों, स्वभाव और भावनाओं के झूठ को भगाना शुरू कर देगा। तब आपके विवेक के लिए अपनी ही अंधाधुंधता को उजागर करना, आपकी असंवेदनशीलता को ध्वस्त करना, और आपकी लापरवाही को दूर करना आसान हो जाएगा।

जब इतने सारे विषय सामने रखे जाते हैं जिन पर किसी को अपने भीतर मनन करना चाहिए, तो यह नहीं सोचना चाहिए कि यह केवल विद्वान ही कर सकते हैं। कोई भी मोक्ष पर आत्म-चिंतन कर सकता है, यहाँ तक कि एक बच्चा भी। यह विद्वतापूर्ण तर्क-वितर्क जैसा नहीं है। मन में आने वाला हर सत्य तुरंत ही वह प्रेरणा देता है जिसकी उसे आवश्यकता होती है। आपको बस ईमानदार होना है और अपने भले के लिए एक सच्ची इच्छा को फिर से जगाना है, साथ ही सत्य के आदेशों का पालन करने के लिए तैयार रहना है। (इसके साथ ही, आत्मा के उद्धार पर किताबें पास रखना किसी भी तरह से अनावश्यक नहीं है, जिनमें स्वयं के भीतर विचार किए जाने वाले सभी विषयों को स्पष्ट और प्रभावशाली ढंग से समझाया गया है। इस संबंध में, पादरी टिकॉन के पाप, आध्यात्मिक अंधापन, पश्चाताप न करने वालों के लिए क्षमा, और उनके मठवासी पत्रों पर लेख अतुलनीय हैं। इसी आत्म-चिंतन में सहायता के लिए, पवित्र पिताओं के लेखों का एक संग्रह 'हे सोए हुए, उठो...' शीर्षक के तहत प्रकाशित किया जा रहा है।

लेकिन हर तरह से, मनन-चिंतन को इस तरह से करना चाहिए कि वह उद्देश्य के अनुकूल हो—आत्मा को प्रभावित करने और उसे कर्म के लिए प्रेरित करने के। इस उद्देश्य के लिए:

क) जब आप चिंतन करें, तो विभिन्न प्रश्न पूछकर बौद्धिक अटकलें न लगाएँ, बल्कि, विषय को अपने लिए स्पष्ट करने के बाद, उसे उस दृष्टिकोण से हृदय में ग्रहण करें जो आपको सबसे अधिक मार्मिक लगेगा, और उसी तरह उस पर मनन करें।

ख) एक विचार से दूसरे विचार पर बहुत जल्दी न कूदें—यह मन को इकट्ठा करने के बजाय बिखेरने की अधिक संभावना रखता है, और आत्मा पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। न ही सूर्य यदि एक क्षण में पृथ्वी की सतह को पार कर जाए तो वह पृथ्वी पर किसी एक प्राणी को भी गर्म कर पाएगा। किसी भी विषय पर अपने तर्क का मापदंड सहानुभूति को बनाएं। हर विचार को भावना के स्तर पर लाएँ, और जब तक वह आपके हृदय में समा न जाए, तब तक उसे जाने न दें।

c) यदि संभव हो, तो किसी विचार को, कह सकते हैं, शुद्ध तर्कसंगत रूप में खाली न छोड़ें, बल्कि उसे किसी न किसी छवि में ढालें और फिर उस छवि को अपने मन में एक निरंतर उत्तेजना के रूप में रखें। यदि संभव हो, तो एक ही छवि के भीतर कई प्रभावशाली छवियों को केंद्रित करना सबसे अच्छा है। इस प्रकार, संत टिकॉन, पापी के मन में उसकी स्थिति के खतरे को अंकित करने के लिए, निम्नलिखित कहते हैं: "तुम्हारे ऊपर न्याय की तलवार है; तुम्हारे नीचे नरक है, जो तुम्हें निगलने को तैयार है; आगे मृत्यु पड़ी है; तुम्हारे पीछे पापों की भीड़ है; तुम्हारे दाहिने और बाएँ दुर्भावनापूर्ण दुश्मनों की भीड़ है: क्या तुम सच में आत्मसंतुष्ट रहने का जोखिम उठा सकते हो?" एक छवि को याद करना और मन में बनाए रखना आसान होता है; इसका प्रभाव अधिक मजबूत और शक्तिशाली होता है।

d) अपनी स्थिति पर लागू होने वाली संक्षिप्त लेकिन प्रभावशाली कहावतों का चयन करें, और फिर उन्हें अपने मन में या ज़ोर से अधिक बार दोहराएँ। उदाहरण के लिए: *'सांड अपने स्वामी को जानता है, और गधा अपने स्वामी के तख्ते को'* (यशायाह 1:3), लेकिन आप का क्या? *या क्या आप परमेश्वर की दया, कोमलता और धैर्य की संपत्ति की उपेक्षा करते हैं? परन्तु तुम्हारी कठोरता और अकथनी हृदय के कारण, तुम क्रोध के दिन और परमेश्वर के न्याय के प्रगट होने के दिन के लिए अपने लिए क्रोध इकट्ठा कर रहे हो* (रोमियों 2:5–6)। *इसलिए, जागते रहो, क्योंकि तुम नहीं जानते कि तुम्हारा प्रभु किस घड़ी आएगा* (मत्ती 24:42)। यहाँ मेरी कब्र है; यहाँ मेरी मृत्यु प्रतीक्षा कर रही है। *मैं तेरी आत्मा से कहाँ जा सकता हूँ, और तेरी उपस्थिति से कहाँ भाग सकता हूँ?* (भजन संहिता 138:7)। *पाप, जब परिपूर्ण हो जाता है, तो मृत्यु उत्पन्न करता है* (याकूब 1:15)। *तुम्हारा विरोधी शैतान गरजते हुए सिंह की नाईं इधर-उधर घूमता है* (1 पतरस 5:8)। *'अपने प्रबंधन का हिसाब दे'* (लूका 16:2)। *'जिसको बहुत दिया गया है, उससे बहुत माँगा* जाएगा' (लूका 12:48)। *'परन्तु वह दास जो अपने स्वामी की इच्छा जानता था और उसने अपने आप को तैयार नहीं किया, न उसकी इच्छा के अनुसार किया, वह बहुत डँटों से पीटा जाएगा* (लूका 12:47)। *याद करो कि तुम कहाँ से गिर गए हो* (प्रकाशितवाक्य 2:5), ' ' और इसी तरह की बातें। ऐसी बातों को इकट्ठा करो और उन्हें याद करो, और अपने दिल पर उन बातों से वार करो। शायद उनमें से कोई एक तीर बन जाए जो तुम्हें भेद दे और तुम्हें आग में लगा दे।

हालाँकि, किसी एक तर्क पर अटके न रहें; उसे प्रार्थना के साथ बदलते रहें। क्योंकि हम अब ठीक वैसा ही कर रहे हैं जैसा हमने तब किया था, जब हम ज़मीन में गहरी जड़ें जमा चुके एक पेड़ को उखाड़ना चाहते थे। हम उसके पास जाते हैं और उसे हिलाते हैं, अपने तर्क, आत्म-विवशता और आत्म-दृढ़ विश्वास की शक्तियों को झोंकते हुए। हम उसे हिलाते हैं, लेकिन हम उसे बाहर नहीं खींच सकते—जड़ें गहराई तक जमी होती हैं। इसलिए हममें ताकत की कमी है; इन जड़ों को काटने की ताकत भी हममें नहीं है। तो मदद मांगो!

क) यदि, तर्क-वितर्क करते समय, आपका हृदय किसी विशेष भावना से स्पर्शित होता है या आपके भीतर कोमलता की अनुभूति जागृत होती है — तो उठें और प्रार्थना करें। प्रार्थना करें कि परमेश्वर आपके कठोर हृदय पर आपके श्रम को पवित्र करें, कि वह आपके कुछ विचारों को नष्ट करने और बनाने, दोनों की शक्ति प्रदान करें, या कि वह स्वयं आकर उसे कोमल, जाग्रत और भेद दें।

ख) इस प्रार्थना में, अपनी ही भाषा में प्रार्थना करें; जो कुछ भी आपके दिल में है, उसे कहें, और अपनी सबसे गहरी ज़रूरत को सरल, बच्चों जैसी, संक्षिप्त भाषा में आत्मविश्वास के साथ प्रकट करें—या इससे भी बेहतर, बिना शब्दों के ही—इस प्रकार दिल से की गई एक सच्ची विनती में ईश्वर से चिपके रहें।

c) इसके बारे में ज़्यादा मत सोचिए, प्रार्थनाएँ मत रचिए। सादगी के साथ, अपनी एकमात्र आवश्यकता के साथ, एक बीमार व्यक्ति की तरह डॉक्टर के पास, एक बंदी की तरह मुक्तिदाता के पास, एक लकवाग्रस्त व्यक्ति की तरह चिकित्सक के पास, अपनी कमज़ोरी और खुद पर काबू पाने में अपनी असमर्थता की ईमानदार स्वीकारोक्ति के साथ, और ईश्वर की सर्वशक्तिमान क्रिया के प्रति अपने आत्मसमर्पण के साथ उनके पास जाइए।

d) प्रणाम करो, बार-बार झुको—और अपनी छाती पर प्रहार करो। और जब तक प्रार्थना जारी है, प्रार्थना से पीछे न हटो। यदि प्रार्थना ठंडी पड़ जाए, तो ध्यान में लौट आओ, और वहाँ से एक बार फिर प्रार्थना में लौटो।

(e) और प्रार्थना के लिए, जैसे ध्यान के लिए, ईश्वर के लिए संक्षिप्त प्रार्थनाएँ तैयार करें और उन्हें बार-बार दोहराएँ: *'हे प्रभु, अपनी सृष्टि पर दया करें!' — 'हे ईश्वर, मुझ पापी पर दया करें!' — 'हे प्रभु, मुझे बचाएँ!' — 'हे प्रभु, मुझे सफलता दें!'* चर्च के प्रेरक भजनों को याद करें और उन्हें गाएँ: *'देखो, वर आ रहा है...' 'मैंने जो अनेक दुष्ट कर्म किए हैं, उन्हें सोचकर, मैं, एक दीन प्राणी, न्याय के भयानक दिन से कांपता हूँ। हे मेरी आत्मा, हे मेरी आत्मा, उठ, तू सो क्यों रही है?'* — और इसी तरह के...

इस प्रकार परिश्रम करते हुए, परमेश्वर की दया के द्वार पर निरंतर दस्तक देते रहो।

हम इस परिश्रम से क्या खोज रहे हैं? ईश्वर की प्रेरक कृपा। ईश्वर की कृपा हमें प्रभावित करने के लिए कुछ निश्चित साधनों को चुनने की आदी है, जैसा कि कृपा के असाधारण कार्यों के विवरण में कहा गया है। इसलिए, इन साधनों को अपने ऊपर लागू करें और उनके आश्रय और प्रभाव में चलें। क्या अनुग्रह की एक किरण आप पर भी नहीं पड़ सकती, ठीक वैसे ही जैसे यह आप जैसे अन्य पापियों पर पड़ी है?

क) ईश्वर की कृपा ने अपने कार्य के साधन के रूप में ईश्वर के गिरजाघरों और उपासना के क्रम को चुना है। खुद चर्च जाएँ, और पवित्र अनुष्ठानों को धैर्यपूर्वक, ध्यानपूर्वक और श्रद्धापूर्वक सहन करें। चर्च का दृश्य और उसकी बनावट, सेवाओं का क्रम, और गायन और पाठ—ये सभी प्रभाव डाल सकते हैं। और इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि, एक बेफिक्र दिल से चर्च में प्रवेश करने के बाद, आप उद्धार की भावना को ग्रहण करके वहाँ से निकल सकते हैं।

ख) अनुग्रह परमेश्वर के वचन के माध्यम से काम करता है। इसे स्वयं हाथ में लें और पढ़ें। शायद आपको कोई ऐसा अंश मिलेगा जो आपको प्रभावित करेगा, ठीक वैसे ही जैसे उस अंश ने ऑगस्टीन को प्रभावित किया था जब उन्होंने नया नियम खोला था।

ग) धर्मनिष्ठ लोगों के साथ बातचीत से अन्य पापियों के हृदय कोमल हो गए थे। खुद जाइए और बातचीत कीजिए। बातचीत में एक-एक शब्द—क्या कोई ऐसा नहीं हो सकता जो आपको आत्मा और प्राण तक विभाजित कर दे, और **हृदय के विचारों और इरादों का न्याय करे**? शायद प्रेम से ऊष्मित कोई जीवित वचन आपके हृदय की गहराइयों तक प्रवेश करेगा और वहाँ जड़ जमा चुके पाप के किलों को हिला देगा।

d) गरीबों की प्रार्थना शक्तिशाली थी। जाओ और अपना दान बढ़ाओ; दुखियों के आँसू पोंछो; और, यदि तुम कर सकते हो, तो बर्बादी में पड़े लोगों की सहायता करो। एक भिखारी की प्रार्थनापूर्ण पुकार स्वर्ग तक पहुँचती है और स्वर्गों के स्वर्गों से होकर गुजरती है। क्या यह तुम्हारे लिए एक रक्षक स्वर्गदूत नहीं भेज सकती, ठीक वैसे ही जैसे इसने शताध्यक्ष कोर्नेलियुस के लिए किया था?

जब आप इन और इसी तरह के कार्यों को *करते* हैं, तो आपका संपर्क अनुग्रह के पात्रों और वाहकों से होगा। शायद इसका जीवन-दायक ओस कहीं से आपके ऊपर गिर पड़ेगा और आपके भीतर आध्यात्मिक जीवन के जमे हुए अंकुरों को पुनर्जीवित कर देगा।

तो, अब जब आपके जीवन और आपके चरित्र को सुधारने का विचार आपके मन में आया है—टालमटोल को त्यागकर, शारीरिक परिश्रम के माध्यम से अपने शरीर को वश में करें और हल्का करें; अपनी सामान्य गतिविधियों को अस्थायी रूप से बंद करके और एकांत की तलाश करके अपनी चिंताओं और विकर्षणों को दूर करें; और फिर, अपना ध्यान अपने भीतर केंद्रित करने के बाद, विभिन्न उद्धारकारी विचारों के माध्यम से, अपने आप से तर्क करके या अपनी आत्मा से संवाद करके

अंधापन, असंवेदनशीलता और लापरवाही को दूर करने का प्रयास करें, इसे प्रार्थना के साथ बारी-बारी से करें और स्वयं को उन परिस्थितियों के प्रभाव में रखें जिन्हें दिव्य अनुग्रह ने पहले ही पापियों की आत्माओं पर अपना प्रभाव डालने के साधन के रूप में चुन लिया है।

मेहनत करो, प्रयास करो, खोजो—और तुम पाओगे; खटखटाओ—और तुम्हारे लिए खोल दिया जाएगा। थको मत और हतोत्साहित मत होओ। लेकिन इन सब के बावजूद, यह याद रखो कि ये प्रयास केवल अनुग्रह को आकर्षित करने के लिए हमारे द्वारा किए गए प्रयत्न हैं, न कि वह वास्तविक चीज़ जिसे हम अभी भी खोज रहे हैं। मुख्य चीज़ तो अनुपस्थित है—अनुग्रह से परिपूर्ण वह हलचल। यह बहुत स्पष्ट है कि, चाहे हम तर्क-वितर्क कर रहे हों, प्रार्थना कर रहे हों या कुछ और कर रहे हों, हम, मानो, बाहरी रूप से अपने हृदयों में कुछ परायी चीज़ जबरदस्ती ठूँस रहे हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि, हमारे प्रयास की तीव्रता के आधार पर, इन प्रयासों का एक निश्चित प्रभाव हृदय में एक निश्चित गहराई तक उतर जाता है, लेकिन फिर उसे वहां से फिर से बाहर निकाल दिया जाता है, एक ऐसे हृदय की एक निश्चित दृढ़ता और इस पर अपरिचित होने के कारण, ठीक वैसे ही जैसे पानी में लंबवत डूबी हुई एक लकड़ी को पानी से बाहर निकाल दिया जाता है। तुरंत बाद, आत्मा में ठंडक और भारीपन लौट आता है—यह एक स्पष्ट संकेत है कि यहाँ कोई अनुग्रह-पूर्ण प्रभाव नहीं था, बल्कि केवल हमारी अपनी मेहनत और प्रयास था। इसलिए, केवल इन कर्मों से ही संतुष्ट न रहें, न ही उन पर इस तरह निर्भर रहें जैसे कि वे ही वह चीज़ हैं जिसे आपको खोजना चाहिए। एक खतरनाक भ्रम! यह सोचना भी उतना ही खतरनाक है कि ये परिश्रम एक ऐसी योग्यता है जिसके लिए अनुग्रह अवश्य प्रदान किया जाना चाहिए। बिल्कुल नहीं! यह तो उसे प्राप्त करने की केवल तैयारी मात्र है; उपहार स्वयं पूरी तरह से दाता की इच्छा पर निर्भर करता है। अतः, उपरोक्त सभी साधनों का परिश्रमपूर्वक उपयोग करते हुए, साधक को ईश्वर की कृपा की प्रतीक्षा करते हुए निरंतर आगे बढ़ते रहना चाहिए, जो कि इच्छानुसार नहीं आती, और न ही कोई जानता है कि यह कहाँ से आती है।

केवल जब यह प्रेरणादायक अनुग्रह आता है, तभी किसी के जीवन और चरित्र को बदलने का सच्चा आंतरिक कार्य शुरू होता है। इसके बिना सफलता की उम्मीद नहीं की जा सकती—सिर्फ असफल प्रयास ही होंगे। धन्य ऑगस्टीन इस बात की गवाही देते हैं: उन्होंने लंबे समय तक स्वयं से संघर्ष किया, लेकिन केवल तभी स्वयं पर विजय प्राप्त की जब उन पर अनुग्रह हुआ। जब तक आप प्रतीक्षा कर रहे हों, दृढ़ आशा के साथ परिश्रम करें। यह आएगा—और सभी चीज़ों को ठीक कर देगा।

इसके बाद स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है: फिर, यह अनुग्रह का प्रवाह क्या है? यह पापी व्यक्ति को किस अवस्था में लाता है? और यह अवस्था अन्य समान अवस्थाओं से कैसे भिन्न है? इस उद्वेग की विशिष्ट विशेषताओं को जानना आवश्यक है, ताकि इसे व्यर्थ न जाने दिया जाए, और किसी प्राकृतिक अवस्था को इसकी भूल से न समझ लिया जाए। अनुग्रह से जागृत आत्मा की अवस्था को पाप से सुस्त पड़ी आत्मा की अवस्था के विपरीत परिभाषित किया गया है:

पाप ईश्वर को मनुष्य से अलग करता है। एक व्यक्ति, जो ईश्वर से मुंह मोड़कर पाप की ओर जाता है, उसे ईश्वर पर अपनी निर्भरता का एहसास नहीं होता; वह ऐसे जीता है मानो वह ईश्वर का नहीं है और ईश्वर उसका नहीं है, ठीक वैसे जैसे कोई शरारती दास अपने मालिक से भाग गया हो। अब यह बाधा टूट जाती है।

ईश्वर पर निर्भरता की भावना लौट आती है। मनुष्य ईश्वर के प्रति अपनी पूर्ण समर्पण और उनके सामने अपनी पूरी जवाबदेही के प्रति तीव्र रूप से सचेत हो जाता है। पहले, स्वर्ग उसके लिए सीसे जैसा भारी लगता था, जो उसके सिर पर एक मोटे पर्दे की तरह फैला हुआ था; लेकिन अब प्रकाश की एक किरण इस उदास पर्दे को भेदकर उसे ईश्वर, प्रभु और साथ ही, न्यायाधीश की ओर ले जाती है। उसके भीतर **दिव्यता की एक** शक्तिशाली **अनुभूति** जागृत होती है, जिसमें उसकी सभी सिद्धियाँ समाहित हैं, और वह आत्मा में अजेय रूप से विराजमान होकर उसे पूरी तरह से भर देती है। यहीं पर आध्यात्मिक अनुग्रह से परिपूर्ण एक भविष्य के जीवन की नींव और संभावना निहित है।

पाप मनुष्य को अंधापन, असंवेदनशीलता और लापरवाही में घेर लेता था। जिस क्षण अनुग्रह प्रभावी होता है, यह तीन-परत वाला, जमी हुई खोल उस आत्मा से गिर जाती है जिसे उसने जकड़ा हुआ था। मनुष्य अब अपनी **सारी** आंतरिक **कुरूपता को** स्पष्ट रूप से **देखता है**, और न केवल देखता है, बल्कि **उसे महसूस** भी **करता है**। साथ ही, उन्हें अपनी स्थिति के खतरे का एहसास होता है, वे अपने लिए डरने लगते हैं और अपनी तकदीर को लेकर **चिंतित हो जाते हैं**। और केवल कायरता ही उनकी आत्मा पर हावी नहीं होती, बल्कि, परमेश्वर के प्रति अपनी जिम्मेदारी के एहसास के साथ, डर, पीड़ा, क्लेश और शर्म उनके हृदय को गहराई से भेदने लगते हैं। **उनका अंतरात्मा उन्हें कुरेदता है**।

लेकिन ठीक उसी क्षण, उसे ईश्वर के अनुसार जिए गए जीवन की मिठास का एक निश्चित एहसास होता है। पापी जीवन की पूर्ण निरर्थकता को महसूस करते हुए और उससे, एक दुष्टता के सागर की तरह, घृणा रखते हुए, वह एक ही समय में यह पूर्वानुमान लगाता है कि आनंद और सांत्वना उस सद्गुण के क्षेत्र में छिपी हुई हैं जो अब उसकी आंतरिक आँख को प्रकट हुआ

है। वह इसे प्रतिज्ञात भूमि के रूप में, सबसे आनंदमय और सुरक्षित स्थान के रूप में देखता है, जो सभी उथल-पुथल से मुक्त है। यही पूर्वाभास, सबसे बढ़कर, एक पापी आत्मा में एक ऐसी घटना है जिसे कोई व्यक्ति अपने प्रयासों से उत्पन्न नहीं कर सकता। ये ईश्वर की कृपा हैं, और ये उसकी शक्ति के भीतर हैं। उनके बारे में सोचना और उनका अनुभव करना एक समान नहीं है। ईश्वर स्वयं एक व्यक्ति की आत्मा को अपनी कोष में ले जाता है और उसे उसकी कृपा का स्वाद चखने देता है।

ध्यान दें कि पाप के क्षेत्र से आत्मा की मुक्ति के मार्ग पर ईश्वर की इस दया का कार्य कितना आवश्यक है। इस अनुग्रह-पूर्ण हलचल का उद्देश्य और इसकी शक्ति इस तथ्य में निहित है कि यह एक व्यक्ति को पाप की बेड़ियों से बाहर खींचती है और उन्हें अच्छाई और बुराई के बीच उदासीनता के एक बिंदु पर रखती है। हमारी इच्छा का तराजू, जो पहले एक ओर और फिर दूसरी ओर झुकता था, अब संतुलित होना चाहिए। लेकिन यह तब तक नहीं होगा जब तक पापी को ईश्वर की कृपा से ( ) भलाई की मिठास का, भले ही पूर्वानुमान में ही सही, स्वाद चखने की अनुमति नहीं दी जाती। यदि यह नहीं दिया जाता है, तो पाप की मिठास, जो पहले से ही परिचित है, उसे भलाई की तुलना में अधिक मजबूती से अपनी ओर खींच लेगी, और उसकी पसंद हमेशा बाद वाले पक्ष पर पड़ेगी, ठीक वैसे ही जैसे बिना अनुग्रह-भरी प्रेरणा के अपने जीवन को बदलने के संकल्पों में होता है। क्योंकि यह एक सार्वभौमिक नियम है: *ignoti nulla cupido*—अर्थात, जिसे कोई नहीं जानता, उसे कोई इच्छा नहीं करता। लेकिन जब, अनुग्रह-भरी प्रेरणा की अवस्था में, उसे भलाई की मिठास का स्वाद चखने को मिलता है, तो वह भी उसे अपनी ओर खींचने लगती है, एक ऐसी चीज़ के रूप में जिसे पहले ही अनुभव किया गया हो, जाना-पहचाना और महसूस किया गया हो। तराजू संतुलित हो जाती है। मनुष्य के पास कार्य करने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है।

इस प्रकार, बिजली की चमक की तरह, व्यक्ति के भीतर और उसके आसपास सब कुछ इस दैवीय प्रेरणा से प्रकाशित हो जाता है। एक क्षण के लिए, उनका हृदय उस व्यवस्था में बहाल हो जाता है जिससे उसे पाप द्वारा बाहर निकाल दिया गया था; उन्हें सृष्टि की श्रृंखला में, उस बंधन में फिर से शामिल कर लिया जाता है जिससे वे पाप के द्वारा जानबूझकर खुद को अलग कर चुके थे। यही कारण है कि अनुग्रह की यह क्रिया लगभग हमेशा एक झटके और एक क्षणिक सदमे से चिह्नित होती है, ठीक वैसे ही जैसे गहरी सोच में डूबे कोई व्यक्ति तेज़ी से चलते हुए 'रुक जाओ!' की अचानक पुकार से चौंक जाता है। यदि कोई इस स्थिति पर मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करे, तो यह आत्मा के जागरण के अलावा और कुछ नहीं है। वास्तव में, हमारी आत्मा का स्वभाव दिव्य और एक निश्चित उच्चतर दुनिया या चीजों के क्रम को समझना है, मनुष्य को सभी इंद्रिय संबंधी चीजों से ऊपर उठाना और उसे एक शुद्ध आध्यात्मिक क्षेत्र में ले जाना है। लेकिन पाप की अवस्था में, हमारी आत्मा अपनी शक्ति खो देती है और आत्मा के साथ, और उसके माध्यम से इंद्रियों के साथ मिल जाती है, इस हद तक कि ऐसा लगता है कि वह उनमें विलीन हो गई है। अब, अनुग्रह से, इसे वहाँ से बाहर खींच लिया जाता है, हमारे भीतरी पवित्र स्थल में, जैसे एक दीपकदान पर, स्थापित किया जाता है, और यह वहाँ मौजूद सभी चीज़ों पर और वहाँ से दिखाई देने वाली सभी चीज़ों पर प्रकाश डालता है।

जिस अवस्था में आत्मा अनुग्रह-पूर्ण जागृति के दौरान स्थापित होती है, वह कई प्राकृतिक अवस्थाओं के समान है, जिनके साथ, तथापि, इसे भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए।

कृपा की अवस्था में, एक व्यक्ति स्वयं और अपनी परिस्थितियों से असंतोष की एक निश्चित पीड़ादायक, दुःखद अवस्था में खुद को पाता है; फिर भी यह उब की तरह नहीं है। उब में, कोई विशिष्ट वस्तु नहीं होती: यहाँ एक व्यक्ति बिना यह जाने कि क्यों या किस बात पर, कुचला और दुखी होता है; इसके विपरीत, कृपा की अवस्था में दुःख का एक विशिष्ट कारण होता है, अर्थात्: ईश्वर के विरुद्ध अपराध और स्वयं का अपवित्र होना। पहला भावनात्मक है, जबकि दूसरा आध्यात्मिक है; पहला पीड़ादायक, उदास और निराशाजनक है, इसीलिए लोग कहते हैं, 'उदासी घुटन पैदा करती है,' जबकि दूसरा आत्मा को पुनर्जीवित और प्रेरित करता है। हमारे सामान्य दैनिक जीवन में, चाहत के ऐसे कई अस्पष्ट वेदनाएँ होती हैं, जिनमें से प्रत्येक की अपनी बारीकियाँ होती हैं। उनमें, हमारे स्वर्गीय स्वदेश की लालसा, सभी सृजित चीजों से असंतोष की भावना, और आध्यात्मिक भूख का एहसास विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। और यह हमारी आत्मा की प्राकृतिक गतिविधियों में से एक है। जब भावुकताएँ धीरे-धीरे शांत हो जाती हैं, तो आत्मा अपनी ही पुकार उठाती है—जो हृदय में स्पष्ट रूप से गूँजती है—उस दमनकारी और अपमानजनक स्थिति के विरुद्ध जिसमें उसे रखा गया है, यह पूछते हुए कि उसे वैसा क्यों नहीं पोषित किया जाता जैसा कि होना चाहिए, बल्कि इसके बजाय उसे भूख से क्यों पीड़ित किया जाता है। यह स्वदेश के लिए एक तड़प है, एक आह जिसे प्रेरित ने सभी सृष्टि में भी सुना (रोमियों 8:22)। फिर भी, यह भी अनुग्रह-भरी हलचल के समान नहीं है। यह हमारी आत्मा की प्राकृतिक हलचलों या कार्यों में से एक है, और अपने आप में यह दुर्बल और निष्फल है। उस पर अनुग्रह की लहर आती है और उसे तेजस्वी और जीवंत बना देती है।

कृपा के जागने पर, आत्मा टूटती है, और अंतरात्मा की पीड़ा जागृत होती है; फिर भी यह हमारे दैनिक जीवन की

गलतियों, चाहे वे छोटी हों या बड़ी, के लिए होने वाले सामान्य आत्म-निंदा से बिल्कुल अलग है। हम खुद को सताते हैं जब हम गलत बात कहते हैं या गलत काम करते हैं, और आम तौर पर उन सभी मामलों में जहाँ, जैसा कि कहा जाता है, हमने खुद को शर्मिंदा किया है; तब भी हम कहते हैं: 'ओह, मुझे कितनी शर्म आ रही है!' लेकिन यह आत्मा के भीतर अंतरात्मा की आवाज़ से बिल्कुल अलग है, जो अब सुनी जाती है। वहाँ, एक व्यक्ति के मन में केवल स्वयं और अपनी सांसारिक परिस्थितियाँ होती हैं; यहाँ, इसके विपरीत, वे स्वयं और सभी सांसारिक चीज़ों को पूरी तरह से भूल जाते हैं, और केवल परमेश्वर को देखते हैं, जिन्हें ठेस पहुँचाई गई है, और उनके साथ अपने स्वयं के शाश्वत संबंध को टूटा हुआ देखते हैं। वहाँ, कोई अपना और मानवीय नियमों का पक्ष लेता है; यहाँ, ईश्वर की इच्छा और उसकी महिमा का। वहाँ, लोगों के सामने खुद को शर्मिंदा करने पर दुःख होता है; यहाँ, ईश्वर के सामने खुद को शर्मिंदा करने पर, जबकि लोग और यहाँ तक कि पूरी दुनिया भी उसकी चिंता का विषय नहीं होती। इसके अलावा, वहाँ का दुःख निराशाजनक होता है, जबकि यहाँ यह कुछ सांत्वना से हल्का होता है। क्योंकि वहाँ, उसका सारा सहारा स्वयं और दूसरों पर टिका होता है, और जब यह आधार ध्वस्त हो जाता है, तो उसके पास मुड़ने के लिए कहीं नहीं बचता; जबकि यहाँ, सब कुछ ईश्वर से आता है, जिनसे उसे अस्वीकार किए जाने की उम्मीद नहीं है, बल्कि जिनमें वह अपनी आशा रखता है। और हमारी सामान्य अंतरात्मा की पीड़ा सच्ची अंतरात्मा की कार्यप्रणाली की नकल करती है: कहा जा सकता है कि वे भी अंतरात्मा के कार्य हैं, यद्यपि एक विकृत अंतरात्मा के, जिसे उसके उचित स्थान से नीचे गिरा दिया गया है। आत्मा के साथ-साथ, यह भी अपनी उचित ऊँचाई से, आध्यात्मिक क्षेत्र से गिर गया है, और आत्मा तथा शरीर के हाथों और शक्ति में आ गया है; यह केवल सांसारिक उद्देश्यों की सेवा करने लगा है, और, कह सकते हैं, एक सांसारिक अंतःकरण बन गया है, जो ईश्वर के विरुद्ध अपराधों की तुलना में मनुष्य के विरुद्ध अपराधों को अधिक तीव्रता से महसूस करता है।

जब अनुग्रह से प्रेरित होता है, तो हृदय को एक अलग, बेहतर, अधिक पूर्ण और अधिक आनंदमय जीवन का अनुभव होता है; फिर भी यह उन लोगों के साथ होने वाली घटना से बिल्कुल अलग है जो दिव्य प्रेरणाओं और सबसे उत्तम आकांक्षाओं (जिसे विचारों की गति कहा जा सकता है) का जागरण अनुभव करते हैं। ये घटनाएँ इस बात में समान हैं कि वे व्यक्ति को सामान्य चीजों के क्रम से ऊपर उठाती हैं और जो प्रेरित होता है उसके साकार होने की दिशा में प्रयास करती हैं; लेकिन वे अपनी दिशाओं और उद्देश्यों में बहुत भिन्न हैं। बाद वाली किसी अस्पष्ट क्षेत्र में ले जाती हैं, जबकि पहली व्यक्ति को ईश्वर की ओर मोड़ती हैं, उसमें शांति की ओर इशारा करती हैं, और उसका एक पूर्वाभास देती हैं। पहले का उद्देश्य ईश्वर में शाश्वत आनंद के साथ जीवन है, जबकि बाद वाले के मन में कुछ ऐसा है जो, बेशक, हमेशा महान और विशेष होता है, लेकिन जिसके बारे में 'कुछ' से अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता। हालांकि, उनके बीच सबसे उल्लेखनीय अंतर इस तथ्य में निहित है कि बाद वाले क्षणिक और अलग-थलग होते हैं: आत्मा यहाँ एक व्यक्ति में एक पहलू से, दूसरे में दूसरे पहलू से प्रेरित होती है; दूसरी ओर, पहले वाले पूरे आत्मा को व्यापक रूप से अपनाते हैं और, इसे अपने लक्ष्य की ओर निर्देशित करके, इसे संतुष्ट करते हैं या इस क्रम में पूर्ण संतुष्टि का पूर्वाभास देते हैं। आत्मा की उच्चतम आकांक्षाओं की लहरें मनुष्य में ईश्वर की प्रतिमा के अवशेष हैं—एक ऐसी प्रतिमा जो चकनाचूर हो चुकी है—और इसलिए वे टूटी-फूटी और बिखरी हुई किरणों की तरह प्रकट होती हैं। इन किरणों को, मानो, एक साथ इकट्ठा करके केंद्रित किया जाना चाहिए, और फिर फोकल पॉइंट पर एक तेजस्वी किरण बनती है। यही, कह सकते हैं, आत्मा की किरणों का वह एकाग्रता है—जो स्वयं में एक है लेकिन बहुआयामी आत्मा के भीतर खंडित हो गई है—जो उस अनुग्रह को उत्पन्न करती है जो इसे प्रेरित करता है और आध्यात्मिक जीवन की अग्नि को प्रज्वलित करता है, जो मनुष्य को शीतल चिंतन में नहीं बल्कि एक प्रकार के जीवन-दायक उत्साह में ले जाता है। आत्मा का ऐसा संकलन दिव्यता की अनुभूति में एकत्रित होता है: यहाँ जीवन का बीज निहित है। प्रकृति में भी ऐसा ही है: जीवन तब तक प्रकट नहीं होता जब तक उसकी शक्तियाँ खंडित रूप से कार्य करती हैं, लेकिन जैसे ही सर्वोच्च शक्ति उन्हें एक साथ लाती है, एक सजीव प्राणी—उदाहरण के लिए, एक पौधा—तत्क्षण अस्तित्व में आ जाता है। आत्मा में भी ऐसा ही है। जब तक उसकी आकांक्षाएँ खंडित रूप से फूटती हैं—यहाँ एक चीज़, वहाँ दूसरी, एक दिशा में एक और दूसरी दिशा में दूसरी—तब तक उसमें कोई जीवन नहीं है। लेकिन जब अनुग्रह की सर्वोच्च, दिव्य शक्ति, आत्मा को एक साथ जीवंत करते हुए, उसकी सभी आकांक्षाओं को एक साथ लाती है और उन्हें इस एकता में रखती है—तब आध्यात्मिक जीवन की अग्नि प्रज्वलित होती है।

इन संकेतों से, अनुग्रह-पूर्ण उल्लास की अवस्था को किसी व्यक्ति के आध्यात्मिक जीवन की सामान्य घटनाओं से आसानी से अलग किया जा सकता है, ताकि दोनों में भ्रम न हो और, सबसे बढ़कर, इसका उपयोग अपनी मुक्ति के लिए करने में चूक न हो। यह उन लोगों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है जिन पर ईश्वर की कृपा उनके किसी पूर्व प्रयास के बिना और किसी विशेष तीव्रता के बिना कार्य करती है। इस आध्यात्मिक हलचल की अवस्था को अनदेखा नहीं करना चाहिए, लेकिन यह संभव है कि इसे उचित ध्यान न दिया जाए और इसे अनुभव करने के बाद, आत्मा और शरीर की सामान्य गतिविधियों के चक्र में वापस फिसल जाएँ। यह हलचल एक पापी के परिवर्तन का कार्य पूरा नहीं करती है, बल्कि केवल इसकी शुरुआत करती

है; इसके बाद, स्वयं पर काम करने का कार्य आता है—एक ऐसा कार्य जो बहुत जटिल है। हालाँकि, इससे संबंधित सब कुछ स्वतंत्रता के दो चरणों में होता है: पहले, स्वयं की ओर एक गति में, और फिर स्वयं से ईश्वर की ओर। पहले में, एक व्यक्ति उस अधिकार को फिर से प्राप्त करता है जो उससे खो गया था; दूसरे में, वे स्वयं को ईश्वर को बलिदान के रूप में अर्पित करते हैं—स्वतंत्रता की एक होमबलि। पहले चरण में, वह पाप को त्यागने का संकल्प लेता है; दूसरे चरण में, ईश्वर के और निकट आकर, वह अपने शेष जीवन के लिए केवल उसी का हो जाने का संकल्प लेता है।

पाप को त्यागने और स्वयं को ईश्वर की प्रसन्नता के लिए समर्पित करने के संकल्प तक की उन्नति

पाप त्यागने के संकल्प की ओर आरोहण

चाहे अनुग्रह अपने आप किसी व्यक्ति पर आता है या कोई उसे खोजता और पाता है—जिस अवस्था में यह व्यक्ति को अपनी पहली क्रिया में लाता है, वह दोनों ही मामलों में एक ही होती है। जिस व्यक्ति में यह प्रेरणा जागृत हुई है, उसे अनुग्रह पाप और पुण्य के बीच एक मध्यवर्ती अवस्था में स्थापित करता है। यह उसे पाप की बेड़ियों से मुक्त करता है, जिससे पाप को उसकी इच्छा के विरुद्ध कार्य करने के लिए बाध्य करने की शक्ति से वंचित कर दिया जाता है; फिर भी यह उसे पुण्य की ओर नहीं ले जाता, बल्कि केवल उसे पुण्य की श्रेष्ठता और आनंद का बोध कराता है, साथ ही उसके पक्ष में खड़े होने की अनिवार्यता की भावना भी जगाता है। अब मनुष्य ठीक दो चौराहों के बीच खड़ा है, और उसके सामने एक निर्णायक विकल्प है। मिस्र के संत मकरियस कहते हैं कि उसे (मनुष्य को) मिलने वाली अनुग्रह भी किसी भी तरह से उसकी इच्छा को जबरदस्ती बाध्य नहीं करती, न ही वह उसे भलाई में अपरिवर्तनीय बनाती है, चाहे वह (मनुष्य) चाहे या न चाहे। इसके विपरीत, मनुष्य में निहित ईश्वर की शक्ति स्वतंत्रता के लिए स्थान छोड़ती है, ताकि मनुष्य की इच्छा प्रकट हो सके, चाहे वह अनुग्रह से सहमत हो या न हो' (होमीली 1. ऑन द गार्डिंग ऑफ द हार्ट, अध्याय 12)। इसी क्षण से, स्वतंत्रता का अनुग्रह के साथ मिलन शुरू होता है। अनुग्रह ने पूरी तरह से अपनी इच्छा से कार्य किया है—और पूरी तरह से अपनी इच्छा से ही कार्य करता रहता है। यह आत्मा की शक्तियों के भीतर प्रवेश करता है और उन पर अधिकार करना शुरू करता है, केवल तभी जब कोई व्यक्ति, अपनी ही इच्छा से, अपने भीतर इसके लिए मार्ग खोलता है, या इसे प्राप्त करने के लिए अपना मुँह खोलता है। यदि कोई व्यक्ति इसकी इच्छा करता है—तो यह ईश्वर की कृपा की सहायता से तैयार है। कोई व्यक्ति अपने भीतर अच्छाई ला नहीं सकता या स्थापित नहीं कर सकता, लेकिन वह इसकी इच्छा करता है और इसके लिए प्रयास करता है; और इस प्रयास के लिए, कृपा व्यक्ति के भीतर उस अच्छाई को मजबूत करती है जिसकी वह इच्छा करता है। सब कुछ इसी तरह तब तक जारी रहेगा जब तक कि व्यक्ति अंततः अच्छाई और ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए अपने ऊपर अधिकार नहीं प्राप्त कर लेता।

आत्म-सुधार के इस प्रयास में, या किसी संकल्प तक पहुँचने के लिए, एक व्यक्ति को जो कुछ भी करना होता है, वह वही है जो आमतौर पर तब होता है जब हम किसी कार्य या प्रयास को करने का संकल्प लेते हैं। आमतौर पर, एक बार जब कुछ करने का विचार मन में आता है, तो हम इच्छा के माध्यम से उस विचार की ओर झुकते हैं, बाधाओं को दूर करते हैं, और अपना मन बना लेते हैं। एक ईसाई जीवन जीने के संकल्प पर भी यही लागू होता है: व्यक्ति को चाहिए कि: क) इच्छा से इसकी ओर आकर्षित हो, ख) उस संकल्प को बनाने में आने वाली किसी भी आंतरिक बाधा को दूर करे, और ग) अपना मन बना ले। यद्यपि अनुग्रह की क्रिया आत्मा को उत्तेजित अवस्था में ले आती है, फिर भी अपने जीवन को बदलने के लिए इसका आग्रह केवल एक विचार ही है, भले ही वह अधिक या कम स्पष्ट हो: 'क्या मुझे पाप नहीं छोड़ देना चाहिए?' या: 'मुझे इसे छोड़ना ही चाहिए।' जो व्यक्ति नींद से जाग गया है, वह देखता है कि उठने का समय हो गया है और उसे उठना चाहिए, लेकिन उठने के लिए, उसे विशेष प्रयास करना पड़ता है और शरीर के विभिन्न अंगों से विशिष्ट गतिविधियाँ करनी पड़ती हैं। कोई अपनी मांसपेशियों को कसता है, जिस भी चादर में वह ढका हो उसे एक तरफ फेंकता है, और उठ जाता है।

इसलिए, अपने भीतर इस अनुग्रह-पूर्ण हलचल को महसूस करने के बाद, अपनी इच्छा को इसकी मांगों के अनुसार ढालने में शीघ्रता करें; इसके प्रेरण के प्रति समर्पित हो जाएँ कि आपको, जो परमेश्वर के सामने उत्तरदायी और अशुद्ध हैं, अपने रास्तों को निश्चित रूप से सुधारना होगा और **तुरंत** ऐसा करना शुरू कर देना **होगा।**

जिसने अनुग्रह-भरी सहायता मांगी है और अब उसकी उपस्थिति को महसूस करता है, उसमें ऐसी इच्छा स्वाभाविक होनी चाहिए—उसने पहले ही उल्लिखित सभी परिश्रमों में उसका मार्गदर्शन किया है; लेकिन यहाँ, भी, उसकी संरचना, या

उसकी पूर्णता में कुछ जोड़ा जाता है। एक मानसिक इच्छा है: मन मांग करता है, और व्यक्ति स्वयं को बाध्य करता है; ऐसी इच्छा ही प्रारंभिक परिश्रमों को नियंत्रित करती है।

एक सहानुभूतिपूर्ण इच्छा होती है; यह अनुग्रह-पूर्ण प्रेरणा के प्रभाव में उत्पन्न होती है। अंत में, एक सक्रिय इच्छा होती है—इच्छाशक्ति की सहमति कि ठीक इसी क्षण अपने पतन से उठने का कार्य शुरू किया जाए; अनुग्रह-पूर्ण प्रेरणा के बाद अब इसे आकार लेना चाहिए। और इस प्रेरणा से प्रेरित व्यक्ति का पहला कार्य यही है।

यह सर्वविदित है कि जो व्यक्ति प्रेरित होता है, वह हर कोई अपने जीवन को बेहतर बनाने के लिए काम शुरू नहीं करता, ठीक उसी तरह जैसे हर कोई जो जागता है, वह तुरंत उठ नहीं जाता, बल्कि कई बार फिर से सो सकता है।

यह अनुग्रह-पूर्ण प्रेरणा, एक ओर, व्यक्ति को सहजता और जीवंतता की स्थिति में रखती है, जबकि दूसरी ओर, यह काफी चुनौतीपूर्ण आवश्यकताएँ भी थोपती है। जो कोई भी अब पहले वाले की ओर अधिक झुकता है, वह अपने विचारों को भटकने दे सकता है और समय से पहले जीवन के सुखों में लिप्त हो सकता है, मानो उनके पास वह सब कुछ पहले से ही मौजूद हो जो उनके पास होना चाहिए। यह आत्म-तुष्ट आराम व्यक्ति को इस बात पर उचित ध्यान देने से रोकता है कि क्या हुआ है, और इसके साथ आने वाला आंतरिक विचलन जल्द ही चीजों को ठंडा कर देगा—और अनुकूल क्षण और मानसिक स्थिति दोनों ही हाथ से निकल जाएँगे। एक बार फिर, वही सामान्य सुस्ती छा जाती है, जिसमें कोई व्यक्ति खुद पर काबू नहीं पा पाता। दूसरी ओर, जो व्यक्ति दूसरे पहलू की ओर अधिक झुकता है, वह खुद को इस बंधन से कुछ हद तक मुक्त करने की अनुमति दे सकता है, ठीक वैसे ही जैसे एक बच्चा ठीक हो रहे घाव से बैंडेज सिर्फ इसलिए हटा देता है क्योंकि वह बहुत तंग है। ऐसा करते हुए, एक व्यक्ति, अपने लिए निराशाजनक लगने वाले विचारों को दूर करने के लिए, बातचीत, पढ़ने जैसी मासूम दिखने वाली मनोरंजन गतिविधियों की ओर मुड़ जाता है—जबकि दूसरा उत्पन्न हुई दमनकारी भावना की जांच करता है, यह पता लगाने की कोशिश करता है कि यह क्यों और कैसे उत्पन्न हुई होगी। वहाँ, बाहरी छापें, और यहाँ, बारीकी से जाँच का क्षरणकारी प्रभाव, भीतर हुए हितकर परिवर्तन को अस्पष्ट कर देते हैं। परिणामस्वरूप, यह व्यक्ति भी अंततः अपनी सामान्य, अपरिवर्तनीय सुस्ती में वापस फिसल जाता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा नहीं होना चाहिए, फिर भी ऐसा होता है, क्योंकि आशीर्वाद प्राप्त प्रवृत्तियाँ भी विभिन्न स्तरों पर मौजूद होती हैं, और जिन परिस्थितियों में वे उत्पन्न होती हैं, वे ऐसी हो सकती हैं कि वे भीतर उनकी अभिव्यक्ति के महत्व और मूल्य को अस्पष्ट कर दें। ज्ञान-युक्त अनुग्रह ऐसा होने देता है, और मनुष्य की स्वतंत्र इच्छा की परीक्षा करता है। इसीलिए हम कहते हैं: जैसे ही आप इस हलचल के अनुग्रह को महसूस करें, और यह समझ जाएँ कि यही है—और कुछ भी नहीं—तो अपनी इच्छा को इसके आवेगों के आगे समर्पित करने में जल्दी करें। और ऐसा करने के लिए:

क) एक सरल हृदय से विश्वास करें कि यह ईश्वर की ओर से आया है, कि ईश्वर स्वयं आपको अपनी ओर बुला रहे हैं, कि उन्होंने स्वयं आपके भीतर एक उद्धारकारी परिवर्तन लाने के लिए आपके समीप आकर आपको अपनी ओर खींचा है।

ख) विश्वास करने के बाद, ईश्वर की इस कृपा के कार्य को व्यर्थ में आपसे चूकने न दें। केवल यही उत्थान आपको स्वयं पर विजय प्राप्त करने की शक्ति देता है। एक बार यह बीत जाने के बाद, आप स्वयं पर अकेले काबू नहीं पा सकेंगे। और यह कि क्या यह फिर आएगा, आप नहीं कह सकते। शायद यह दया का कार्य आपको बिल्कुल आखिरी बार दिखाई दे रहा है। इसके बाद, आप कठोर-हृदयता की अवस्था में पड़ जाएँगे, और उससे—निराशा और हताशा में।

c) उस उद्धारक अवस्था में बने रहने के लिए यथासंभव परिश्रम और प्रयास करें जिसमें आपको रखा गया है। जैसे कोई ज्वलनशील पदार्थ, यदि उसे लंबे समय तक आग के सामने रखा जाए, तो वह न केवल गर्म हो जाता है, बल्कि उसमें आग भी लग सकती है, वैसे ही अनुग्रह के जीवन की इच्छा स्वाभाविक रूप से प्रज्वलित हो सकती है यदि आप थोड़ी और देर तक अनुग्रह के प्रभाव में रहते हैं।

d) अतः, उस हर चीज़ को हटा दो जो इस नवोदित चिंगारी को बुझा सकती है, और स्वयं को उन सभी चीज़ों से घेर लो जो इसे पोषित कर सकती हैं और इसे एक ज्वाला में बदल सकती हैं। एकांत में जाओ, प्रार्थना करो, और अपने भीतर इस बात पर मनन करो कि आगे कैसे बढ़ना है। जीवन, प्रयासों और परिश्रमों का वह क्रम जो पहले से ही निर्धारित है—और जिसका पालन करने के लिए आपने अनुग्रह की अपनी खोज में स्वयं को विवश किया है—आपके भीतर उस अनुग्रह को बनाए रखने के लिए सबसे अनुकूल है जो प्रभावी होना शुरू हो गया है। इस मामले में, इनमें से सबसे अच्छे एकांत, प्रार्थना और चिंतन हैं। एकांत में, आपका मन अधिक केंद्रित होगा; प्रार्थना में, आपकी भक्ति गहरी होगी; और चिंतन में, आपका विचार अधिक प्रभावी होगा। अपने आप से तर्क करें; उन सभी विचारों को दोहराएँ जो आपने अज्ञानता, असंवेदनशीलता और सुस्ती को दूर करने का प्रयास करते हुए पहले एकत्र किए थे। अब ये तीनों चले जाएँ, लेकिन आपको तुरंत काम शुरू करने की इच्छा जगानी होगी। अपने सभी प्रयास इसी की ओर निर्देशित करें। अब आपका आत्म-चिंतन वैसा नहीं रहेगा जैसा पहले था। बिना

उत्तेजना के, यह आमतौर पर सामान्य बातों में भटक जाता है; अब, इसके विपरीत, अनुग्रह का अनुकरण करते हुए और उसके मार्गदर्शन में, यह बिना किसी बहाने या भटकने के, सब कुछ सीधे आपसे ही संबंधित करेगा; यह मामलों को आपके सामने उन दृष्टिकोणों से पेश करेगा जिनका आप पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ने की संभावना है। इसलिए, इस मामले में, आप उतना प्रतिबिंबित नहीं करेंगे जितना कि एक संवेदना से दूसरी संवेदना की ओर बढ़ेंगे।

सही इसी आत्म-सुधार के श्रम में, अनुग्रह की मदद से, वह शब्द, जो एकमात्र ईश्वर और आप स्वयं को सुनाई देता है, अंततः आपके हृदय में उच्चारित होगा: 'तो, अब बहुत देर हो चुकी है; अतः, मैं अभी से शुरू करूँगा।' यह स्पष्ट है कि यह एक निष्कर्ष है; लेकिन यह किस नियमों और किन पूर्वधारणाओं से व्युत्पन्न है, इसे कोई भी विज्ञान निर्धारित नहीं कर सकता। पहले के तर्कों के सभी विषय स्पष्ट रूप से समझ में आ सकते हैं, फिर भी निष्कर्ष तक नहीं पहुँचा जा सकता। ऐसा भी होता है कि कोई व्यक्ति इन सभी विषयों को भाषण में इतनी शक्ति से समझाता है कि, उनके प्रभाव से, दस-बीस और सैकड़ों लोग उस निष्कर्ष तक पहुँच जाते हैं, जबकि व्यक्तिगत रूप से वह स्वयं अपने हृदय में इसे व्यक्त नहीं करता। न ही कोई यह कह सकता है कि यहाँ कौन सा कार्य कर रहा है—कृपा या स्वतंत्रता—क्योंकि ऐसा होता है कि कृपा का कार्य अनदेखा रह जाता है, जबकि स्वतंत्रता के सभी प्रयास निष्फल रह जाते हैं। दोनों हमारे लिए अकल्पनीय तरीके से संयुक्त हैं, फिर भी प्रत्येक अपनी प्रकृति को बनाए रखता है। इसे इस तरह कहा जा सकता है: स्वतंत्रता स्वयं को समर्पित करती है (हवाले करती है, देती है — *संपादक*), जबकि अनुग्रह इसे ग्रहण करता है और इसमें व्याप्त हो जाता है। इसीलिए इच्छा की शक्ति है: 'तो चलिए, काम शुरू करते हैं।'

आखिरकार, मनुष्य ने भलाई की ओर मुंह किया है, इस पवित्र मार्ग पर चलने के लिए तैयार है, ईश्वर को प्रसन्न करने वाले पुण्य कर्मों में आगे बढ़ने को तत्पर है; लेकिन ठीक उसी क्षण, हृदय में छिपा बुराई का संपूर्ण गर्त धूल की तरह उड़ जाता है और एक बार फिर पूरी आत्मा को ढकने का प्रयास करता है। उत्साह और प्रवृत्ति के क्षण में, पाप चुप रहता है, मानो जो व्यक्ति के साथ हो रहा है उससे उसका कोई लेना-देना न हो; लेकिन अब, जब वे इसे पैरों तले कुचलने का प्रयास करते हैं, तो यह—जैसा कि सेंट जॉन क्लाइमक्स इसे कहते हैं—हजार सिर वाला, इस षड्यंत्र रचने वाले व्यक्ति के विरुद्ध हजारों चीखें निकालता है। जैसे जब कोई व्यक्ति जाग गया है, पर अभी भी केवल उठने के बारे में सोच रहा है, तो उसके शरीर में सब कुछ शांत रहता है। लेकिन जैसे ही वह वास्तव में उठने की ओर बढ़ता है और अपनी मांसपेशियों पर थोड़ी भी ताकत लगाता है, तो उसके शरीर के सारे दर्द—जो तब तक उसे परेशान नहीं कर रहे थे—अब महसूस होने लगते हैं और अपनी शिकायतें करने लगते हैं। इसी तरह, जिसने अनुग्रहपूर्ण आह्वान के प्रति समर्पण किया है, उसके लिए पाप के दर्द तब तक शांत रहते हैं जब तक वह समर्पण के बिंदु तक नहीं पहुँच जाता; लेकिन जैसे ही वह इस कार्य को शुरू करने का संकल्प लेता है, ये सभी दुर्बलताएँ एक तीव्र और चिंताजनक चेतावनी जारी कर देती हैं। एक के बाद एक विचार, एक के बाद एक हरकत, वे उस बेचारे आदमी पर हावी हो जाती हैं और उसे खींचकर वापस ले जाती हैं, बिना किसी क्रम के हमला करती हैं, उसकी आत्मा को हर तरफ से घेर लेती हैं और उसे अपने उथल-पुथल में धकेल देती हैं। एक व्यक्ति में जो कुछ भी अच्छा है, वह मानो एक धागे से लटका होता है, और वह स्वयं हर पल उसे तोड़कर उसी वातावरण में फिर से कूदने के लिए तैयार रहता है जिससे वह भागना चाहता था। एक चीज़ उसे बचाती है—वह मिठास, वह राहत और वह आनंद जिसे उसे प्रेरणा के उस क्षण में चखने का अवसर मिला था, और वह शक्ति जो उसे तब महसूस हुई जब उसने मन ही मन कहा: 'तो, अब मैं शुरू करूँगा।' जो कोई भी धुएँ में इधर-उधर उछलती-फिरती एक छोटी सी चिंगारी को, जो फिर भी अपनी जगह बनाए हुए लगती है, या लहरों के बहाव से उछाले जा रहे लकड़ी के एक छोटे से टुकड़े को—कभी ऊपर, कभी नीचे, कभी दाईं ओर, कभी बाईं ओर—देख चुका है, वह इस बात को पहचान जाएगा कि एक व्यक्ति की अच्छी इच्छा के साथ ठीक इसी क्षण भी ऐसा ही होता है। केवल आत्मा ही उथल-पुथल में नहीं होती, बल्कि खून भी उबलने लगता है; यहाँ तक कि कानों में गूँज और आँखों के सामने धुंध छा जाती है। यह समझना मुश्किल नहीं है कि ऐसा उथल-पुथल केवल हृदय में बसने वाले पाप से नहीं, बल्कि सभी पापों के पिता—शैतान—से उत्पन्न होता है, जो अपने राज्य में जब ऐसा उपद्रवी दिखाई देता है तो शांत नहीं रह सकता। संत टिकॉन कहते हैं: "जब कोई पापी, ईश्वर की कृपा से प्रेरित होकर, पश्चाताप करना शुरू करता है, तो वह विभिन्न प्रलोभनों का सामना करता है। जैसे ही कोई व्यक्ति मसीह के करीब आने लगता है, शैतान उसका पीछा करता है (उसका पीछा करता है, उसका शिकार करता है — *संपादक*) और उसे मसीह से भटकाता है, उसे ठोकर खिलाता है और विभिन्न जाल बिछाता है।" यहाँ हमारे देश में, लोग भूतों की कहानियाँ सुनाते हैं—जो भयानक और आकर्षक दोनों होती हैं—जिनका सामना खजाने की तलाश में किसी विशेष फूल की खोज करने वालों को होता है; यह मनोवैज्ञानिक मिथक किसी व्यक्ति को कीमती मनकों को प्राप्त करने या ग्रामीण इलाकों में छिपे खजाने को उजागर करने के अच्छे इरादे से भटकाने के शैतान के सभी प्रयासों का सबसे अच्छी तरह से वर्णन करता है।

यहीं पर एक व्यक्ति को अपने भीतर एक तीव्र संघर्ष का सामना करना पड़ता है, मानो पाप के खिलाफ एक निर्णायक लड़ाई हो। यहाँ उन्हें दृढ़ संकल्प के साथ अपने शत्रु को वश में करना और परास्त करना होगा, इस साँप को रौंदना होगा, उसे बाँधना होगा और उसकी सारी शक्ति को समाप्त करना होगा। पाप के खिलाफ उनके व्यक्तिगत संघर्षों में उनकी सभी बाद की विजयों की आशा और वास्तविकता, यहाँ पाप पर सफलतापूर्वक विजय पाने पर ही निर्भर करती है। यहाँ शामिल पात्रों की विविधता को देखते हुए, यहाँ होने वाली हर चीज़ को परिभाषित करना असंभव है। इस संघर्ष के मुख्य बिंदु, या चरण, की पहचान करना कठिन नहीं है, हालाँकि यह ज्ञान के लिए कम और संघर्ष कर रहे लोगों की सहायता के लिए अधिक किया जाता है।

यह स्पष्ट है कि आत्मा का कोई ठोस आधार नहीं है: वह डगमगाती है (हिचकिचाती है, उथल-पुथल में है — *संपादक),* हालांकि वह अपनी अच्छी मंशा में अखंड, अटूट बनी रहती है, जो ईश्वर की कृपा से समर्थित है। और उसका समर्थन कौन करेगा, उसे स्थिर कौन करेगा? इसीलिए अब पहले से कहीं ज़्यादा ज़रूरी है कि वह अपनी पूरी ताकत से ईश्वर से पुकारे, ठीक वैसे ही जैसे कोई डूबता हुआ आदमी पुकारता है। शत्रु ने उसे पकड़ लिया है और उसे निगल जाना चाहता है—चीखो, जैसे योनह ने व्हेल की पेट में चीखा था या जैसे पतरस ने डूबते समय चीखा था। प्रभु आपकी आवश्यकता और आपके संघर्ष को देखते हैं—और वह एक सहायक हाथ बढ़ाएंगे, आपका समर्थन करेंगे और आपको युद्ध में आगे बढ़ने वाले योद्धा के योग्य स्थापित करेंगे।

यही आपका सहारा है! यह सबसे खतरनाक है यदि आत्मा यह कल्पना करे कि वह यह सहारा अपने भीतर ही पा सकती है; तब वह सब कुछ खो देगी। बुराई फिर से उस पर हावी हो जाएगी, उसके भीतर अभी भी कमजोर उस प्रकाश पर छा जाएगी, और उस चिंगारी को बुझा देगी जो मुश्किल से जलना शुरू हुई है। आत्मा जानती है कि वह अपने आप में कितनी शक्तिहीन है; इसलिए, स्वयं से कुछ भी अपेक्षा किए बिना, उसे ईश्वर के सामने विनम्रता से झुक जाना चाहिए, उसे अपने हृदय में स्वयं को **शून्य** कर लेना चाहिए। तब सर्वशक्तिमान अनुग्रह इस **शून्यता** से उसके भीतर सब कुछ सृजित करेगा। जो कोई भी, पूर्ण आत्म-नम्रता में, स्वयं को ईश्वर के हाथों में सौंपता है, वह उन्हें—दयालु को—अपने पास खींचता है और उनकी शक्ति से शक्तिशाली हो जाता है।

फिर भी, आत्म-अपमान के क्रम में, किसी को आध्यात्मिक सुस्ती में नहीं पड़ना चाहिए, और न ही स्वयं को ईश्वर के हवाले करने के बाद, एक ही समय में निष्क्रियता में डूब जाना चाहिए। नहीं; ईश्वर से सब कुछ और स्वयं से कुछ भी उम्मीद करते हुए, किसी को कर्म की ओर भी प्रयास करना चाहिए और अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करना चाहिए, ताकि दिव्य सहायता के आने के लिए कुछ हो, दिव्य शक्ति के छा जाने के लिए कुछ हो। अनुग्रह पहले से ही मौजूद है, लेकिन यह व्यक्ति के अपने प्रयासों के जवाब में कार्य करेगा, और उनकी कमजोरी की भरपाई अपनी शक्ति से करेगा। अतः, ईश्वर की इच्छा के प्रति विनम्र, प्रार्थनापूर्ण समर्पण में दृढ़ होकर, स्वयं बिना किसी ढिलाई के कार्य करें।

सामान्य रूप से पाप के विरुद्ध, लेकिन विशेष रूप से इसके मूल कारणों के विरुद्ध लड़ें। जब आत्मा के भीतर सब कुछ उथल-पुथल में हो, और विचार, किसी प्रकार के भूत-प्रेत की तरह, खड़े होकर उसे घेर लें, और चारों ओर से सीधे हृदय में तीर चला रहे हों—तब, कहने का भाव है, बुराई के मुख्य उकसाने वालों को पहचानना कठिन नहीं है। अनेक छोटे-छोटे योद्धाओं के पीछे, ठीक पीछे, मुख्य कमांडर खड़े होते हैं, जो आदेश जारी करते हैं, सभी व्यवस्थाओं और युद्ध के पूरे क्रम की देखरेख करते हैं। ये ही, मूल रूप से, पाप के मूल कारण हैं। इन्हीं पर पूरा ध्यान केंद्रित करना चाहिए; इनके खिलाफ सीधे हथियारबंद होना चाहिए, इन्हें हराना और नष्ट करना चाहिए। एक बार जब उन्हें पराजित कर दिया जाता है, तो छोटे योद्धा अपने आप ही बिखर जाएँगे।

उद्धारकर्ता ने पाप के मुख्य उकसाने वालों और उसके प्रमुख रक्षकों की ओर इशारा किया जब उन्होंने लोगों को अपना अनुसरण करने के लिए बुलाया (मार्क 8:34–38)। 'जो कोई मुझसे अनुसरण करना चाहता है,' उन्होंने कहा, *'उसे स्वयं को नकारना होगा*—स्वयं से मुंह मोड़ना, स्वयं को एक अजनबी मानना, ध्यान या सहानुभूति के योग्य न समझना, जिसके लिए खड़ा होना भी उचित न हो। इसका अर्थ यह है कि पाप-प्रेमी हृदय में इसके विपरीत स्वभाव—**आत्म-दया**—निरंतर वास करता और हावी रहता है। पापी व्यक्ति अपने साथ वैसा ही व्यवहार करता है जैसा एक माँ अपने लाड़ले बच्चे के साथ करती है: उसे अपने लिए कुछ भी मना करना या अपनी इच्छाओं के विरुद्ध जाना मुश्किल लगता है; वह किसी भी तरह से अपने आप पर सख्त नहीं हो पाता। इसके अलावा, उद्धारकर्ता हमें आत्मा के उद्धार के लिए संसार में जो कुछ भी है, उसे त्यागने की आज्ञा देते हैं: *'क्योंकि मनुष्य यदि सारे संसार को प्राप्त करे, और अपनी आत्मा का नाश करे, तो उसे क्या लाभ होगा?'* (मरकुस 8:36)। दुनिया हमारे बाहर की चीज़ों का समष्टि है: दृश्यमान, मूर्त, इंद्रिय संबंधी। परिणामस्वरूप, यह दायित्व मानव हृदय में भौतिक वस्तुओं की ओर झुकाव, मूर्त चीज़ों के प्रति लगाव, और केवल दृश्यमान और इंद्रिय संबंधी चीज़ों में ही स्वयं को पोषित

करने और आनंद खोजने की एक निश्चित प्रवृत्ति को दर्शाता है। और वास्तव में, **कामुकता** पाप-प्रेमी की एक विशेषता है: उसे अदृश्य और आध्यात्मिक चीज़ों में कोई रुचि नहीं है, जबकि जो कुछ भी कामुक है वह बहुत परिचित और पूरी तरह से आज़माया हुआ और परखा हुआ है। फिर प्रभु हमें इस व्यभिचारी और पापी दुनिया में उनसे लज्जित न होने के लिए प्रेरित करते हैं। यह दर्शाता है कि पाप-प्रेमी हृदय में लोगों की सोच का एक डर होता है, जो अच्छाई और सच्चाई के लिए हानिकारक है। और ऐसा ही है। एक व्यक्ति आमतौर पर अपने आसपास की स्थापित व्यवस्था या स्थापित संबंधों की इस अटूटता के सहारे जीता है; इस कारण से, वे उन्हें हिलाने-डुलाने से डरते हैं और, उन्हें बनाए रखने के लिए, किसी की इच्छा के विरुद्ध जाने, अनादर दिखाने, या मुसीबत में पड़ने की तुलना में अपने विवेक से समझौता करने को अधिक तैयार रहते हैं। यह **दूसरों को खुश करने की इच्छा** है: 'लोग क्या कहेंगे, और अगर मुझे संबंध तोड़ने पड़ें तो मैं क्या करूँगा?' पाप का यह सबसे संवेदनशील बंधन ही होगा, यदि इसे तोड़ने के लिए, किसी को सार्वभौमिक न्याय में लज्जा की धमकी दी जाती है: *'क्योंकि जो कोई इस व्यभिचारी और पापी युग में मुझ से और मेरी बातों से लजाएगा, उससे मनुष्य का पुत्र भी अपने पिता की महिमा में पवित्र स्वर्गदूतों के साथ आकर लजाएगा'* (मरकुस 8:38)। आने वाले युग के लिए यह अंतिम अपील, पाप-प्रेमी हृदय में आने वाले जीवन की किसी भी भावना की अनुपस्थिति को प्रकट करती है; यह यह मानने के लिए प्रेरित करती है कि, जहाँ तक उस व्यक्ति का सवाल है, वह जीवन मौजूद नहीं है, और वे पूरी तरह से वर्तमान जीवन में डूबे हुए हैं। और ऐसा ही है। लोग आमतौर पर पृथ्वी पर इस तरह रहते हैं जैसे कि वे यहाँ हमेशा रहेंगे, और भविष्य को भूल जाते हैं; वे केवल सांसारिक सुख जानते हैं, और उनके सभी लक्ष्य एक ही लक्ष्य पर केंद्रित होते हैं—कि यहाँ अच्छा जीवन कैसे जिया जाए—जबकि इसके बाद क्या होगा, इस बारे में वे सोचते भी नहीं हैं। इस प्रकार, **आत्म-दया, कामुकता, दूसरों को खुश करने की इच्छा**, और **सांसारिकता** (यह विश्वास कि जीवन केवल पृथ्वी पर मौजूद चीजों से ही बनता है) एक पाप-प्रेमी हृदय के विशिष्ट लक्षण हैं — और परिणामस्वरूप, पाप के मूल कारण और इसके मुख्य समर्थक हैं। हम स्वयं, पापी होने के नाते, उन्हें पहचान नहीं पाते; और यदि उद्धारकर्ता ने उन्हें इंगित न किया होता, तो हम निश्चित रूप से उन्हें नहीं जानते। अब, हालाँकि, जब वे प्रकट हो गए हैं, तो यह स्पष्ट है कि ऐसा ही होना था, जैसा कि होना ही था। मनुष्य, परमेश्वर से दूर हो जाने के बाद, अपने ही भीतर मुड़ गया—और आत्म-दया से दंडित होता है: यह पतन के प्राथमिक स्वभाव से उत्पन्न होता है। पतित मनुष्य अपने भीतर अव्यवस्थित हो गया है; वह आत्मा से देह में गिर गया है—और कामुकता में तड़पता है। वह मुख्य क्षेत्र जहाँ पाप प्रकट होता है और उग्र हो उठता है, वह पापी मनुष्यों का समाज है, जिसमें उनके बीच ऐसे आदेश और संबंध होते हैं जो पाप को पोषित करते हैं और बनाए रखते हैं। जब, पाप की इन सभी संरचनाओं के भीतर, सब कुछ सुचारू रूप से चलता है—तो वही सुख है। लेकिन चूँकि घटनाओं का ऐसा क्रम केवल इस युग में ही हो सकता है, जबकि आने वाला युग पूरी तरह से कुछ और ही माँगता है, इसलिए इसका विचार भी नहीं आता—यह मन में बैठता नहीं है और, उससे भी बढ़कर, हृदय में कोई सहानुभूति नहीं पाता।

तो यही पाप की जड़ें ही उन सभी विचारों की उत्प्रेरक हैं जो एक व्यक्ति पर तब आक्रमण करते हैं जब वह पाप के क्षेत्र से भलाई की ओर कदम बढ़ाने के लिए तैयार होता है—वे प्रलोभन भरे विचारों का एक पूरा झुंड उकसाती हैं जो भ्रमित करते हैं, आतंकित करते हैं और बाधित करते हैं। **आत्म-दया** पुकारती है: "यह कैसा जीवन है? आगे कुछ भी नहीं है सिवाय परिश्रम, कठिनाइयों, दुःखों और अभावों के, जिनका कोई अंत नहीं दिखता; यह काँटों पर नंगे पैर चलने जैसा है—हर पल घाव!" **कामुकता** बोलती है: 'इस चीज़ को छोड़ दो, और उस चीज़ को; यह करना बंद करो, और वह करना बंद करो—संक्षेप में, वह सब कुछ जिसमें मुझे आनंद मिलता था—और खुद को केवल आध्यात्मिकता के लिए समर्पित कर दो! यह अमूर्त, शुष्क, असंतोषजनक, निर्जीव है।" "**लोग क्या कहेंगे**? वे इसे अजीब समझेंगे और मुझसे दूर होने लगेंगे; फिर भी मुझे दोनों नाते तोड़ने ही होंगे—लेकिन फिर क्या? और इस तरफ से भी शत्रुता की अपेक्षा रखो।" यह **लोगों को खुश करने की इच्छा का** पुकार है। लेकिन यहाँ **सांसारिकता की** पुकार है: 'भविष्य तो आएगा ही—इसमें कौन शक कर सकता है?—लेकिन वह अभी बहुत दूर है; तो फिर मैं इस बीच जिएँगा कैसे? दूसरों ने भी इसी तरह जिया है… हम सांसारिक जीवन को जानते हैं, लेकिन दूसरे जीवन का क्या? यह हमारी पहुँच में है, लेकिन वह कहाँ है?'

वास्तव में, जब कोई व्यक्ति प्रभु के लिए काम करने निकलता है, तो ये सब उसके विरुद्ध पुकारेंगे। और यह एक बात होती अगर ये केवल क्षणिक विचार होते, लेकिन नहीं: वे आत्मा की गहराइयों तक प्रवेश करते हैं, चोट करते हैं और व्यक्ति को अपनी ओर खींचते हैं, जैसे किसी ने किसी के जीवित मांस में एक कांटा गड़ा दिया हो और उसे अपनी ओर खींच रहा हो। तो यहाँ एक व्यक्ति क्या करे?

मदद पास ही है… आपको बस एक प्रयास करना है—और आप जीत जाएंगे, लेकिन उस प्रयास को बुद्धिमानी से करें। जैसा कि कहा गया है, ईश्वर की इच्छा के प्रति विनम्र समर्पण और अनुग्रह के सर्वशक्तिमान कार्य के माध्यम से प्रार्थना में स्वयं को स्थापित करने के बाद: क) इन सभी विचारों को अपनी आत्मा से दूर भगाने में शीघ्रता करें; आत्म-नियंत्रण के एक

विशेष प्रयास के माध्यम से उन्हें अपनी चेतना से हटा दें; उन्हें उस छिपे हुए स्थान में वापस धकेल दें जहाँ से वे उत्पन्न हुए थे, और अपने हृदय में शांति बहाल करें; क्योंकि जब तक आपका हृदय शांत नहीं हो जाता, तब तक आप आगे कुछ भी करने में असमर्थ रहेंगे। इस उद्देश्य के लिए, सबसे पहले, उन्हें बिल्कुल भी ध्यान न दें और उनके साथ बातचीत में न पड़ें, भले ही वह बातचीत सौहार्दपूर्ण न हो। यदि आप शुरुआत से ही अनपढ़ों के झुंड से सख्ती से पेश आते हैं तो वह जल्द ही तितर-बितर हो जाएगा; लेकिन यदि आप एक को तिरस्कारपूर्ण शब्द कहते हैं, फिर दूसरे को, फिर तीसरे को — तो वे हिम्मत जुटा लेंगे और अपनी मांगों में और अधिक आग्रहपूर्ण हो जाएंगे। इसी तरह, प्रलोभन भरे विचारों का समूह और भी अधिक जिद्दी हो जाता है यदि आप उन्हें एक पल के लिए भी अपनी आत्मा में ठहरने दें, और और भी अधिक यदि आप उनसे बातचीत में शामिल हो जाएँ। लेकिन यदि आप उन्हें पहली ही बार में इच्छाशक्ति के दृढ़ प्रयास, अस्वीकृति और ईश्वर की ओर मुड़ने से खारिज कर देते हैं, तो वे तुरंत पीछे हट जाएँगे और आपकी आत्मा के वातावरण को शुद्ध छोड़ देंगे।

ख) लेकिन भले ही बुराई के विचारों के इस अंधकारमय झुंड को भगा दिया गया हो, भले ही हृदय फिर से शांत हो गया हो और आत्मा हल्की हो गई हो—यह याद रखना चाहिए कि, वास्तव में, अभी तक इस उद्देश्य के लिए कुछ भी हासिल नहीं हुआ है। ये दुश्मन अभी भी जीवित हैं। वे केवल ध्यान से बाहर धकेले गए हैं और हो सकता है कि वे जानबूझकर छिप गए हों, ताकि किसी अनुकूल क्षण में एक आश्चर्यजनक हमले में, वे और भी निश्चित रूप से विजय प्राप्त कर सकें। नहीं, किसी भी परिस्थिति में वहाँ नहीं रुकना चाहिए; अन्यथा, न तो शांति होगी और न ही सफलता। उन्हें आत्म-बलिदान के वेदी पर लुभाकर बाहर निकालकर मार डालना चाहिए।

इसलिए, एक बार फिर से ईश्वर और उनकी कृपा के प्रति प्रार्थनापूर्ण समर्पण में स्वयं को स्थापित करके, पाप के प्रत्येक उकसाने वाले को बुलाओ और अपने हृदय को उनसे हटाकर उनके विपरीत की ओर मोड़ने का प्रयास करो—इस प्रकार वे आपके हृदय से कट जाएँगे और मुरझा जाएँगे। इस उद्देश्य के लिए, तर्कसंगत सोच को पूरी स्वतंत्रता दें, और अपने हृदय को उसके पदचिन्हों पर चलने दें। सत्य से प्रबुद्ध होकर और गुप्त रूप से कार्य करने वाली कृपा की सहायता से, आपकी तर्कसंगत सोच: क) सबसे पहले इन, कह सकते हैं, नरक की संतानों की पूरी कुरूपता को प्रस्तुत करे; जबकि आप अपने हृदय से इनके प्रति **घृणा की** भावना रखने का आग्रह करें; ख) फिर इसे उस खतरे को जीवंत रूप से चित्रित करने दें जिसमें वे आपको धकेलते हैं, और उनमें सबसे दुष्ट दुश्मन को इंगित करें; आप अपनी ओर से, अपने दिल में उनके प्रति **घृणा** पालने के लिए उसे प्रेरित करें; c) फिर यह आपके सामने उस जीवन की सारी सुंदरता और मिठास प्रस्तुत करे, जिसमें प्रवेश करने से वे आपको रोकते हैं, इन अत्याचारियों से मुक्ति के आकर्षण को भी; और आप, अपने हृदय में पहले ही उनके प्रति घृणा और द्वेष भर लेने के बाद, एक हिरण की तरह जल-झरने की तलाश में उनसे दूर होकर उस जीवन की ओर **मुड़ने का** प्रयास करें। इस प्रकार, वांछित परिणाम प्राप्त होगा। यह एक संक्षिप्त कार्यक्रम है, लेकिन यह कार्य इतनी जल्दी पूरा नहीं हो सकता। यहाँ केवल उन बिंदुओं का संकेत दिया गया है जिनकी ओर तर्क को मोड़ना चाहिए; तर्क का सूत्र—इसे कैसे मार्गदर्शन करें और इसे इसके लक्ष्य तक पहुँचाएँ—इसका प्रबंधन प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं करना होगा; विवेकी मन के लिए, एक प्रभावी और शक्तिशाली विचार किसी न किसी रूप में स्पष्ट हो जाएगा। हालाँकि, यह महसूस करना चाहिए कि तर्क केवल एक उत्तोलक है; असली बात तो दिल के बदलावों में है। यह कहा जा सकता है कि जैसे ही दिल में बताए गए बदलाव होते हैं, हम अपने लक्ष्य तक पहुँच जाएँगे।

इच्छाशक्ति को तोड़ने की प्रक्रिया में यह प्रयास सबसे महत्वपूर्ण है। इसे दृढ़ता से करना चाहिए और तब तक हार नहीं माननी चाहिए, जब तक कि हृदय इन उतार-चढ़ावों में अपनी चरम सीमा तक न पहुँच जाए; और ये सीमाएँ पापी प्रवृत्तियों के प्रति **प्रतिरोध** हैं — ऐसी प्रवृत्तियाँ जो पाप की मूलभूत माँगों के विपरीत हैं। इस प्रकार, मनुष्य को स्वयं पर तब तक परिश्रम करना चाहिए, जब तक कि **आत्म-दया** के स्थान पर, अपने प्रति **निर्दयता** और कठोरता का पुनर्जन्म न हो, और पीड़ा की प्यास महसूस न हो, स्वयं को यातना देने, अपने शरीर और आत्मा दोनों को थका देने की इच्छा न हो; जब तक कि **दूसरों को खुश करने की इच्छा** के स्थान पर, एक ओर, सभी अस्वास्थ्यकर रीति-रिवाजों और संबंधों के प्रति **एक घृणा**, उनके प्रति एक निश्चित शत्रुतापूर्ण और चिड़चिड़ा प्रतिरोध, और दूसरी ओर, सभी अन्याय और सभी मानवीय निंदा को सहने की **इच्छा** उत्पन्न न हो; जब तक कि केवल भौतिक, कामुक और दृश्यमान चीजों के **स्वाद** के बजाय, इन चीजों के प्रति **अरुचि** और घृणा उत्पन्न नहीं हो जाती, और आध्यात्मिक, शुद्ध और दिव्य की खोज और लालसा शुरू नहीं हो जाती; जब तक कि सांसारिकता—जीवन और सुख को केवल पृथ्वी तक सीमित करने की भावना—**के** बजाय, हृदय **पृथ्वी पर एक अजनबी होने की** भावना से भर न जाए, और उसकी एकमात्र आकांक्षा स्वर्गीय स्वदेश के प्रति न हो जाए।

जब ऐसी प्रवृत्तियाँ बनती हैं, तो पाप की सभी नींवें कमजोर हो जाएँगी। यह अपनी दृढ़ता और अपनी निर्णायक शक्ति खो देगा, जो अब स्वयं व्यक्ति के पास आ जाती है। पाप को बाहर निकाल दिया जाएगा, और वह एक बाहरी वस्तु बन जाएगा।

उस क्षण से, यह एक निर्णायक शक्ति के बजाय केवल एक प्रलोभन होगा। और जब भी यह आवश्यक होगा, तो उसे दूर भगाने के लिए बस उसके प्रति अब प्राप्त हुई प्रतिकूल भावनाओं को सक्रिय करने की आवश्यकता होगी। इससे यह स्पष्ट है कि अब वर्णित प्रयास का कितना बड़ा महत्व है: इसके माध्यम से, हमारे भीतर से एक नया स्वरूप बनता है, जिसमें बुराई के प्रति दृढ़ अरुचि और अच्छाई की ओर मुड़ना शामिल है—इच्छा में एक निर्णायक मोड़ आता है, जिसके परिणामस्वरूप हमारे भीतर सब कुछ एक नए क्रम को अपना लेता है।

यह एक ऐसा व्यक्ति है जो पहले से ही पाप के क्षेत्र के बिल्कुल किनारे पर खड़ा है—उन्हें प्रकाश, स्वतंत्रता और आनंद की भूमि से कुछ भी अलग नहीं करता है। बंधन टूट चुके हैं; आत्मा हल्की और प्रसन्न महसूस करती है; वह ईश्वर की ओर उड़ान भरने के लिए तैयार है। लेकिन दुश्मन की चालाकी अभी खत्म नहीं हुई है। उसके पास अभी भी एक तीर बचा है जिसे उसने बिल्कुल आखिरी पल के लिए संजो कर रखा है। जैसे ही आत्मा स्वच्छंद पाप के क्षेत्र से बाहर निकलने के लिए अंतिम कदम उठाने हेतु अपनी शक्ति जुटाने वाली होती है, एक करुण पुकार उसका ध्यान खींच लेती है: 'बस एक और दिन और वह काफी होगा; कल तुम इस सीमा को पार कर जाओगे।' चाहे ऐसा इसलिए हो कि पिछले संघर्ष में आत्मा थक गई है और उसे विश्राम की लालसा है, या क्योंकि पाप का स्वभाव ही ऐसा है, केवल यही आवाज़ सुनी जाती है। यहाँ अच्छाई का कोई विरोधी नहीं है, बल्कि केवल एक विनती है—जो बन गई तनाव को, भले ही थोड़ा सा ही सही, कम कर दे। यह पुकार सबसे अधिक मोहक है: दुश्मन हमारे पक्ष में लगता है, जो हमसे खुद पर दया करने की विनती कर रहा है; लेकिन यदि आप इस पुकार, इस सुझाव के आगे थोड़ा सा भी झुक गए, तो आप वह सब कुछ खो देंगे जो आपने हासिल किया है। किसी गुप्त तरीके से, पाप के वे निर्वासित उकसाने वाले हृदय में रेंग जाते हैं, और हमारी जानकारी के बिना उसके साथ व्यभिचार करते हैं—और उस सारी योजना को कमजोर कर देते हैं और बिखेर देते हैं जो बनाई गई थी, ताकि जब कोई होश में आता है, तो वह खुद को फिर से उसी पुराने रास्ते पर पाता है, मानो उसने खुद को सुधारने का प्रयास कभी किया ही न हो। ठंड, सुस्ती और जड़ता फिर से उस पर हावी हो जाती है, जिससे उसे उन सभी चीजों को फिर से शुरू करना पड़ता है जो पहले ही हासिल हो चुकी थीं। इसलिए, इस पहली नज़र में तुच्छ लगने वाली मांग का तिरस्कार न करें: यह छोटी और महत्वहीन लगती है, लेकिन वास्तव में यह सभी बुराइयों का सार है; यह स्वतंत्रता के भेष में छुपी गुलामी का आकर्षक मुखौटा है, एक चापलूसी भरी दोस्ती जो एक असमाधान योग्य दुश्मन को छिपाती है। इससे अपनी पूरी ताकत से नफरत करो, और जैसे ही तुम्हारा ध्यान इस पर जाए—क्योंकि यह बिजली की तरह चमकता हुआ गुजर जाता है—इसके निशान मिटाने के लिए जल्दी करो ताकि इसका एक निशान भी न बचे। खुद को उसी अवस्था में वापस ले आओ जिसमें तुम पहले थे, और उस आंतरिक और बाहरी तनाव को हमेशा बनाए रखने का संकल्प लो। इस शत्रु को भी परास्त करने के बाद, आप स्वयं पर नियंत्रण पाकर, एक दृढ़संकल्पी विजेता बने रहेंगे; आप स्वयं के पूर्ण स्वामी बन जाएँगे।

इस प्रकार, अनुग्रह के प्रवाह के बाद, मानवीय स्वतंत्रता के सामने **पहला** कार्य **स्वयं की ओर गति करना** है, जिसे यह तीन कार्यों के माध्यम से पूरा करती है: क) यह भलाई की ओर झुकती है—यह उसे चुनती है; ख) यह बाधाओं को दूर करता है और उन बंधनों को तोड़ता है जो व्यक्ति को पाप में बाँधे रखते थे, हृदय से **आत्म-दया, दूसरों को खुश करने की इच्छा, कामुकता की प्रवृत्ति** और **सांसारिकता को** दूर करता है, और उनकी जगह आत्म-अनुशासन, कामुकता के प्रति उदासीनता, हर तरह की अपमान सहने की इच्छा और यहाँ एक अजनबी होने की भावना के साथ आने वाले युग पर हृदय को केंद्रित करना जगाता है; ग) अंत में, उसे तुरंत ही भलाई के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया जाता है, बिना स्वयं को थोड़ी भी छूट दिए, बल्कि स्वयं को निरंतर, मध्यम तनाव की स्थिति में रखते हुए। इस प्रकार, आत्मा के भीतर सारी हलचल शांत हो जाती है। इस प्रकार प्रेरित होकर, सभी बंधनों से मुक्त होकर, वह पूर्ण तत्परता के साथ स्वयं से कहता है: *'उठकर, मैं चलता हूँ'*

इसी क्षण से, आत्मा की **एक अलग गति** शुरू होती है—**ईश्वर की ओर**। स्वयं पर विजय पाने, अपनी सभी गतिविधियों पर नियंत्रण करने और अपनी स्वतंत्रता पुनः प्राप्त करने के बाद, उसे अब अपना सम्पूर्ण अस्तित्व ईश्वर को बलिदान के रूप में अर्पित करना चाहिए। इसका अर्थ है कि कार्य केवल आधा ही पूरा हुआ है।

ईश्वर को समर्पित करने के संकल्प का प्रभात

ऐसा लग सकता है कि पाप को छोड़ने का संकल्प लेने के बाद सब कुछ पहले ही हो चुका है और अब बस काम करना बाकी है। और वास्तव में, कोई काम कर सकता है; लेकिन यह किस तरह की गतिविधि होगी, और इसमें कैसा भाव होगा? व्यक्ति ने केवल खुद पर ही ध्यान केंद्रित किया है। यदि वे इसी शुरुआती बिंदु से कार्य करना शुरू करते हैं, तो वे नैतिक दृष्टि से ही सही, अपने आप से और अपने लिए कार्य कर रहे होंगे। यह एक स्वार्थी, मूर्तिपूजक नैतिकता होगी। कुछ लोग ऐसे

भी हैं जो कहते हैं कि वे सिर्फ अच्छा करने के लिए अच्छा करते हैं—वे ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि मानवीय गरिमा इसकी मांग करती है, या क्योंकि इसके विपरीत कार्य करना नीच या मूर्खतापूर्ण होगा। ऐसे सभी कर्म करने वाले यह प्रकट करते हैं कि उनके भीतर के आंतरिक, नैतिक व्यक्ति का निर्माण पूरा नहीं हुआ है: वे अपने आप में लौट आए हैं, लेकिन उन्होंने स्वयं से ईश्वर की ओर कदम नहीं बढ़ाया है और न ही स्वयं को उनके लिए बलिदान के रूप में अर्पित किया है—इसलिए, वे आधे रास्ते में ही रुक गए हैं। मानवीय स्वतंत्रता का उद्देश्य स्वयं स्वतंत्रता में भी नहीं, और न ही मनुष्य में, बल्कि ईश्वर में निहित है। स्वतंत्रता में, ईश्वर ने मनुष्य को अपने दिव्य अधिकार का एक निश्चित हिस्सा सौंपा है, लेकिन इस शर्त पर कि मनुष्य स्वयं अपनी स्वतंत्र इच्छा से इसे ईश्वर को सबसे पूर्ण बलिदान के रूप में अर्पित करे। और इसलिए, यदि आप अपने ऊपर विजय प्राप्त कर चुके हैं, तो जाइए और अब स्वयं को ईश्वर को अर्पित कर दीजिए। जब आपने पाप किया, तो आपने केवल स्वयं को ही नहीं खोया, बल्कि स्वयं को खोने में, आपने स्वयं को ईश्वर से भी दूर कर लिया। अब, पाप की बंधन-मुक्ति से लौटकर, स्वयं पर विजय प्राप्त कर, स्वयं को ईश्वर के सुपुर्द कर दो। ऐसा भी प्रतीत होता है कि स्वयं से ईश्वर की ओर मुड़ना न तो कठिन है और न ही जटिल, ठीक वैसे ही जैसे पश्चिम से पूर्व की ओर मुड़ना। लेकिन निश्चय ही जो पापी परमेश्वर के पास आता है, वह उससे स्वतंत्र व्यक्ति नहीं है, न ही वह इस तरह से उसके निकट आता है मानो उसके पीछे कुछ भी न हो। नहीं, वह एक भागे हुए दास की तरह है जो अपने स्वामी के पास लौट रहा है, या एक दोषी व्यक्ति जो राजा-न्यायाधीश के सामने उपस्थित हो रहा है। इसलिए, इस तरह से निकट आना चाहिए कि उसे स्वीकार किया जाए। मानवीय मामलों में, एक स्वामी एक सेवक को स्वीकार करता है और एक राजा दोषी व्यक्ति पर अपनी कृपा लौटाता है, जब वह उनके पास आकर अपना दोष स्वीकार करता है, उस पर पश्चाताप करता है, और अब से पूरी तरह से ईमानदार रहने का सच्चा वादा करता है।

उसी प्रकार पापी के ईश्वर के पास लौटने पर भी यही लागू होता है। यदि वह अ) अपने पापों को स्वीकार करता है, ब) उनसे पश्चाताप करता है, और स) पाप न करने का संकल्प लेता है, तो उसे ईश्वर द्वारा स्वीकार कर लिया जाएगा। ईश्वर के साथ हार्दिक मेल-मिलाप में ये अनिवार्य कृत्य हैं, जिन पर नए जीवन में दृढ़ता, उसमें पूर्णता, और इसकी आवश्यकताओं का अटूट पालन सुनिश्चित करने की गारंटी निर्भर करती है। व्यर्थ पुत्र, अपने पिता के पास लौटकर, ने कहा: *'मैं कहूँगा: मैंने पाप किया है'* — पाप का बोध; *'मैं योग्य नहीं हूँ'* — आत्म-निंदा; *'मुझे अपने भाड़े के दासों में से एक के रूप में स्वीकार करें'* — काम करने का संकल्प (लूका 15:18–19)। अतः, ईश्वर के पास लौटते समय:

क) **अपने पापों को पहचानें।** और पाप को त्यागने का संकल्प लेते समय, आप जानते थे कि आप एक पापी हैं; क्योंकि अन्यथा, जीवन में बदलाव की योजना बनाने की क्या आवश्यकता होती? लेकिन यह पापिता तब आपको एक अस्पष्ट रूप में दिखाई दी। अब आपको निश्चित रूप से यह पता लगाना होगा कि वास्तव में क्या पाप है और किस हद तक है — स्पष्ट रूप से, और विशिष्ट रूप से, मानो आप अपने पापों को गिन रहे हों, उन सभी परिस्थितियों के साथ जो आपके कार्यों की पापिता को कम या बढ़ाती हैं: अपने पूरे जीवन की कठोर और निष्पक्ष न्याय के साथ आलोचनात्मक समीक्षा करें।

इस उद्देश्य के लिए, एक ओर ईश्वर के विधान को और दूसरी ओर अपने जीवन को रखें, और देखें कि वे कहाँ मेल खाते हैं और कहाँ भिन्न हैं। अपने आचरण को लें और उसे कानून के साथ मापें, यह देखने के लिए कि क्या वह वैध है; या कानून को लें और देखें कि क्या वह आपके जीवन में पूरा हुआ है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि इस महत्वपूर्ण मामले में कुछ भी अनदेखा न रह जाए, किसी प्रकार का क्रम अपनाएँ। बैठ जाएँ और ईश्वर, अपने पड़ोसी और स्वयं के प्रति अपने सभी कर्तव्यों को याद करें, और फिर इन सभी पहलुओं के संबंध में अपने जीवन की जाँच करें। या — दस आज्ञाओं और धन्यवचन को, एक-एक करके, उनके सभी निहितार्थों के साथ देखें, और देखें कि क्या आपका जीवन उनके अनुरूप है। या — मत्ती के अनुसार पवित्र सुसमाचार के अध्यायों को पढ़ें, जहाँ उद्धारकर्ता विशेष रूप से ईसाई कानून प्रस्तुत करते हैं, साथ ही प्रेरित याकूब का पत्र, और प्रेरित पॉल के पत्रों के अंतिम अध्यायों को पढ़ें, जिनमें एक ईसाई पर आने वाले कर्तव्यों का सारांश दिया गया है, उदाहरण के लिए: रोमियों के नाम पत्र के अध्याय 12 से, एफिसियों के नाम पत्र के अध्याय 4 से, और इसी तरह। ये बाद वाले विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे ईसाई जीवन की भावना को स्पष्ट करते हैं। यह भावना सेंट जॉन द थियोलोजियन के पहले पत्र में भी स्पष्ट और सशक्त रूप से व्यक्त की गई है। यह सब पढ़ें और अपने जीवन की जाँच करें कि क्या यह इसके अनुरूप है। या, अंत में, पाप-स्वीकार के क्रम को लें और अपने आचरण की जाँच करने के लिए इसका उपयोग करें। अपने जीवन और कर्मों पर केवल एक मनुष्य के कर्मों के रूप में नहीं, बल्कि एक ईसाई के कर्मों के रूप में विचार करें, और इसके अलावा, एक विशिष्ट पद और स्थिति में।

अपने जीवन की ऐसी समीक्षा के परिणामस्वरूप, कर्मों, शब्दों, विचारों, भावनाओं और अवैध इच्छाओं की एक अनगिनत भीड़ सामने आएगी—ऐसी चीजें जो नहीं की जानी चाहिए थीं लेकिन करने की अनुमति दी गई; ऐसी अनगिनत चीजें जो की जानी चाहिए थीं लेकिन नहीं की गईं; और कानून के अनुसार किए गए काफी संख्या में कर्म अशुद्ध उद्देश्यों से कलंकित

पाए जाएँगे। जब यह सब एक साथ इकट्ठा किया जाता है, तो यह अच्छी तरह से सामने आ सकता है कि किसी का पूरा जीवन केवल अस्वास्थ्यकर कर्मों से ही बना है। अपनी पापी प्रकृति को पहचानने के इस पहले चरण में ध्यान में रखने वाली मुख्य बात अपने कर्मों की सटीक परिभाषा है। जिस प्रकार एक सेवा रिकॉर्ड संख्यात्मक सटीकता के साथ तैयार किया जाता है, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को भी अपने मन में अपने कर्मों की सूची को उसी सटीकता के साथ देखना चाहिए—जिसमें समय, स्थान, व्यक्ति, बाधाएँ और इसी तरह की सभी परिस्थितियाँ शामिल हों। यदि हमारा आत्म-परीक्षण निष्फल रहता है, तो इसका कारण यह है कि हम केवल सामान्य सर्वेक्षण ही करते हैं।

फिर भी, किसी को इन बारीकियों पर अटकना नहीं चाहिए, बल्कि पाप के मार्ग पर और आगे बढ़ना चाहिए, या पापी हृदय में और गहराई तक उतरना चाहिए। हमारे कर्मों, शब्दों, निजी विचारों, इच्छाओं और भावनाओं के नीचे हृदय की स्थायी प्रवृत्तियाँ छिपी होती हैं, जो हमारे परिभाषित करने वाले गुणों का निर्माण करती हैं। हमारे कुछ कर्म संयोग से हुए, जबकि अन्य इतनी प्रबलता से हृदय से उत्पन्न हुए कि हम उन्हें रोकने में असहाय थे; और कुछ अनवरत रूप से किए गए, जो मानो अपने आप में एक कानून बन गए। इस प्रकार की परीक्षा हमें यह प्रकट करेगी कि हृदय में कौन-सी प्रवृत्तियाँ छिपी हुई हैं और वे एक निरंतर, आंतरिक आवेग को जन्म देती हैं कि उन पर अमल किया जाए। यही पापी प्रवृत्तियों का सार है। इन्हें उजागर करके, हम अपने हृदय की संरचना, उसकी प्रवृत्तियों की संख्या और उनके आपसी तालमेल को बेनकाब करेंगे।

एक बार ऐसा हो जाने पर, वह प्रधान वासना भी, जो उन सभी को नियंत्रित करती है, छिपी नहीं रह सकती। यह सर्वविदित है कि सभी पापों की जड़ आत्म-स्नेह है। आत्म-स्नेह से अहंकार, लालच और कामुकता उत्पन्न होती है, और इनसे—अन्य सभी वासनाएँ, जिनमें से आठ को प्रमुख माना जाता है, जबकि शेष, व्युत्पन्न होने के कारण, अनगिनत हैं। हर पापी में ये सभी भाव होते हैं—कुछ प्रकट रूप में, कुछ उनके प्रारंभिक चरणों में—क्योंकि हर पापी में, आत्म-प्रेम, जो सभी भावों या पापी प्रवृत्तियों का बीज है, उनके मामलों पर शासन करता है। लेकिन हर किसी में ये सभी समान रूप से प्रकट नहीं होते: एक में, अहंकार हावी होता है; दूसरे में, कामुकता; तीसरे में, स्वार्थ। और अहंकारी लोग कामुक सुखों से परहेज़ नहीं करते—लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि अगर उन्हें उनका आनंद नहीं मिलता। और स्वार्थी लोग अपने बारे में बहुत ऊँचा सोचते हैं—लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि, लाभ के लिए, उन्हें कभी-कभी नीचता करनी पड़ती है। और सुखवादी सुख का शौकीन होता है—लेकिन अगर ऐसे सुख खरीदे जाएँ तो यह कोई बड़ी हानि नहीं है। इस प्रकार, हर व्यक्ति का एक प्रमुख जुनून होता है। बाकी सभी उसके साये में, उसके अधीन और उसके द्वारा नियंत्रित रहते हैं, और प्रमुख जुनून के खिलाफ अधिकारपूर्वक कार्य करने की हिम्मत नहीं करते। सभी प्रवृत्तियाँ और बुरी आदतें, जिन्हें कोई व्यक्ति पहले से ही अपने भीतर पहचान लेता है, किसी विशेष जुनून की पृष्ठभूमि पर होती हैं और उससे प्रेरित होती हैं। इसी में सभी बुराइयों की जड़—आत्म-प्रेम—उस व्यक्ति में सबसे पूरी तरह से प्रकट और मूर्त होती है। अपनी पापी प्रकृति का एहसास इस मान्यता में ही परिणत होना चाहिए।

इस प्रकार, अंततः, आप अपनी पापी प्रवृत्ति की जड़ और उसकी तत्काल शाखाओं—आपकी प्रवृत्तियों—तथा उसकी और भी शाखाओं, आपके अनगिनत कर्मों को जान जाएँगे; आप अपनी पापी प्रवृत्ति के पूरे इतिहास को कल्पना में देखेंगे और उसे मानो किसी चित्र में चित्रित कर देंगे।

ख) अपनी पापी प्रवृत्ति को पहचानने के बाद, इसके प्रति एक निष्क्रिय दर्शक बने न रहें, बल्कि इसके अनुरूप **हार्दिक पश्चाताप की** उद्धार करने वाली **भावनाओं को** जगाने का प्रयास करें**।** ऐसा लग सकता है कि जैसे ही आप पाप को पहचानते हैं, ये भावनाएँ आपके भीतर उत्पन्न हो जाएँगी, लेकिन वास्तव में ऐसा हमेशा नहीं होता है। पाप से हृदय कठोर हो जाता है। जैसे एक मजदूर अपने काम से कठोर हो जाता है, वैसे ही पापी व्यक्ति भी, जो स्वयं को पाप की नीरसता में बेच देता है—काँटों को खोदकर उनका भक्षण करता है। इसीलिए, यहाँ भी, पश्चाताप की भावनाओं को जगाने के लिए स्वयं पर काम करना चाहिए।

इन भावनाओं तक व्यक्ति अपने पापों के लिए **अपराध-बोध** और उनके लिए जवाबदेह न होने की भावना के माध्यम से पहुँचता है। अपराध-बोध की भावना पापों की पहचान और पश्चाताप की भावनाओं के बीच मध्यस्थता करती है, और **यह** स्वयं **आत्म-निंदा से** उत्पन्न होती है**।**

तो सबसे पहले, **स्वयं को कोसना** शुरू करें—और ऐसा करें। बाकी सब कुछ एक तरफ रख दें और स्वयं को ईश्वर—सर्व-द्रष्टा न्यायाधीश—के समक्ष अपने अंतरात्मा के साथ अकेला छोड़ दें। यह प्रकट करें कि आप जानते थे कि यह गलत था, फिर भी आपने इसकी इच्छा की; कि आप ऐसा करने से बच सकते थे—और फिर भी आपने अपने भले के लिए अपने आत्म-नियंत्रण का उपयोग करने में विफल रहे: आपका तर्क और आपकी अंतरात्मा दोनों इसके खिलाफ थे, और निश्चित रूप से बाधाएँ थीं, लेकिन आपने इन सभी चेतावनियों को अनदेखा कर दिया। हर पाप के संबंध में ऐसा ही करें। आप देखेंगे कि हर

पाप किसी की अपनी इच्छा से, उसकी पापपूर्णता की पूरी जानकारी के साथ और बाधाओं को पार करने के प्रयास के साथ किया जाता है — और आपका अंतरात्मा आपको बिना किसी हिचकिचाहट के अपना दोष स्वीकार करने के लिए मजबूर करेगा। पापी हृदय की चालाकी बहाने गढ़ना शुरू कर सकती है—चाहे वह स्वभाव की कमजोरी हो, स्वभाव की दृढ़ता हो, परिस्थितियों का मेल हो, या रोजमर्रा की जिंदगी का दबाव हो—उनकी न सुनें। इन सभी बातों ने पाप की ओर झुकाव को तो मजबूत किया होगा, लेकिन कोई भी आपको पाप करने के लिए कभी मजबूर नहीं कर सकता—यह हमेशा स्वतंत्र इच्छा की बात है। यदि आप कहें, 'मैं नहीं चाहता,' तो सभी प्रलोभन समाप्त हो जाएँगे! *अपने पापों के दोष को कम करने के* इन *प्रयासों का* विरोध करते हुए, अपनी व्यक्तिगत परिस्थितियों की अधिक गहनता से जाँच करें: आप कौन हैं, कहाँ, कब और कैसे आपने पाप किया, ताकि यह प्रकट हो सके कि आपके मामले में और आपकी परिस्थितियों में आपका विशेष पाप कितना पापपूर्ण है—और इस सब में आपको बहानों का आधार नहीं, बल्कि ऐसे कारक दिखाई देंगे जो आपके दोष को बढ़ाते हैं। आत्म-आरोपण की प्रक्रिया को जिस हद तक ले जाया जाना चाहिए, वह है अटूट अपराध-बोध की अनुभूति—एक ऐसी अवस्था जिसमें हृदय स्वीकार करता है: 'मेरे पास कोई बचाव नहीं है—मैं दोषी हूँ।'

अपने अंतरात्मा के सामने आत्म-आरोपण के इस कार्य में, एक व्यक्ति एक के बाद एक पापों को स्वीकार करेगा, और कहेगा: 'मैं इस पाप का, और उस पाप का, और तीसरे पाप का दोषी हूँ; मैं हर चीज़ का, हर चीज़ का दोषी हूँ'—वे अपने पापों को स्वीकार कर लेंगे और यह महसूस करना शुरू कर देंगे कि वे अपने पूरे बोझ के साथ उन पर भारी हैं। अपने पापों को पहचानते हुए, कोई व्यक्ति अभी भी उन्हें अपने बाहर मौजूद मान सकता है; लेकिन इस निंदा की क्रिया में, वे हमारे भीतर बहुत विशेष रूप से देखे जाते हैं और हमें दबाते हैं, और वे हमें और भी अधिक दबाते हैं क्योंकि हमारे पास उनके लिए कोई बहाना नहीं है। इस बिंदु पर पहुँचने के बाद, पापी के पास कहने के लिए और क्या बचता है, सिवाय इसके: '**मैं नीच हूँ**! वह अच्छा नहीं है, और यह बुरा है; मैं स्वयं दोषी हूँ कि यह अच्छा नहीं है और यह मुझमें मौजूद है।'

जैसे ही कोई व्यक्ति अपने दिल में कहता है, 'मैं नीच हूँ,' उसके पापों के लिए पश्चाताप की पीड़ा तुरंत उसके भीतर एक के बाद एक उमड़ने लगेगी। उसे **शर्म आती है** कि वह इतने नीच कर्मों तक गिर गया; **वह दुखी है** कि उसने स्वयं को मग्न किया और अपनी दुष्ट इच्छाओं के आगे झुक गया; **उसे पीड़ा होती है** कि उसने स्वयं को इतनी नैतिक तबाही में पहुँचा दिया; और **वह भयभीत है** कि उसने ईश्वर को नाराज़ किया और स्वयं को समय और अनंतकाल दोनों में इतनी खतरनाक स्थिति में डाल दिया। ये भावनाएँ एक के बाद एक आती हैं, और व्यक्ति इन भावनाओं में आग में जलता हुआ महसूस करता है। वह खुद को एक खाई के ऊपर लटका हुआ देखता है और, अपनी भावनाओं में, वह बहिष्कृत लोगों की स्थिति में पहुँच जाता है। यह निराशाजनक पीड़ा हताशा की भावना में बदल जाती है। और यही वह क्षण है जब कभी-कभी हताशा का दानव पापी व्यक्ति पर हावी हो जाता है, और फुसफुसाता है: *'तुम्हारा अपराध* और भी बड़ा है *क्योंकि तुम्हें अपने हाल पर छोड़ दिया गया था।'*

हर पापी इन भावनाओं को अधिक या कम मात्रा में अनुभव करता है। इनके अस्तित्व पर पछताने की कोई आवश्यकता नहीं है; बल्कि, मनुष्य को इनके अस्तित्व की कामना करनी चाहिए, और इनके और भी प्रबल होने की। कोई व्यक्ति इनसे जितना अधिक जलता है, और यह ज्वाला जितनी प्रबल होती है, उतना ही अधिक उद्धारकारी होता है। इसी जलन की ताकत में भविष्य के पश्चाताप की नींव निहित है। यहीं पर हृदय को यह एहसास होता है कि पाप का फल कितना मीठा है, और इसी से यह उसके आकर्षण से मुँह मोड़ने की शक्ति प्राप्त करता है।

ग) पश्चाताप की भावनाओं का स्पष्ट रूप से एक क्षरणकारी प्रभाव होता है। एक विशेष वचन आत्मा और प्राण, जोड़ों और मज्जा तक भी प्रवेश कर जाता है, और हृदय के विचारों और इरादों का न्याय करता है। लेकिन वह उद्देश्य जिसके लिए ईश्वर की कृपा से किसी व्यक्ति में यह लाया जाता है, केवल नष्ट करना नहीं है, बल्कि पुराने के विनाश के माध्यम से कुछ नया बनाना है। यह नवीनता सब कुछ सही करने की संभावना में आशा की एक सांस से बोई जाती है। जो गलत है उसे सुधारना और जो खो गया है उसे बहाल करना संभव है; बस इस कार्य को आरंभ करना ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चाताप की भावनाओं से एक सीधा संक्रमण एक संकल्प की ओर होता है: 'इसलिए, मैं पाप का त्याग करता हूँ और उसकी आज्ञाओं का पालन करके एकमात्र ईश्वर की सेवा करने का वचन देता हूँ।' लेकिन जो ऐसा संकल्प करता है, उसे एक ओर यह निश्चित होना चाहिए कि उसकी अतीत की चूकों को क्षमा किया जा सकता है, और दूसरी ओर, कि उसे संकल्प में दृढ़ रहने के लिए आवश्यक शक्ति प्राप्त हो सकती है। इसीलिए प्रभु की सेवा करने का संकल्प लेने का कार्य, उनकी दया में विश्वास और ऊपर से सहायता प्राप्त करने से संभव होता है; और यह विश्वास हमारे उद्धारकर्ता प्रभु में विश्वास से उत्पन्न होता है, जिनके द्वारा, क्रूस पर, हमारे पापों का अभिलेख फाड़ दिया गया था और, उनके स्वर्गारोहण के बाद, *'जीवन और भक्ति के लिए आवश्यक सभी बातें* हमें *'उनकी दिव्य शक्ति के द्वारा'* प्रदान की गईं / (2 पतरस 1:3)। इस विश्वास और इससे उत्पन्न होने वाली आशा

के बिना, जो पश्चाताप की भारी भावनाओं से पीड़ित है, वह यहूदा के मार्ग पर चलता है। तभी उद्धारकर्ता का क्रूस वास्तव में किसी व्यक्ति के लिए एक लंगर बन जाता है! अपने पापों के लिए अत्यधिक पश्चाताप में, मानो किसी खाई के ऊपर मंडराते हुए, वह इसे अपने एकमात्र उद्धारकर्ता के रूप में देखता है; वह अपने विश्वास और आशा की सारी शक्ति से इस पर चिपक जाता है, और इससे अपने व्रत को पूरा करने की शक्ति प्राप्त करता है। जैसे कोई डूबता हुआ व्यक्ति किसी पेड़ से कसकर चिपक जाता है, वैसे ही पश्चातापी मसीह के क्रूस से चिपक जाता है, और महसूस करता है कि वह अब नष्ट नहीं होगा। हम सामान्यतः क्रूस पर प्रभु की मृत्यु की शक्ति से अवगत हैं, लेकिन जो व्यक्ति अपने पापों के लिए इस पीड़ादायक पश्चाताप से गुज़रा है, वह इसे महसूस करता है, क्योंकि ई उसके जीवन का एक अभिन्न अंग बन जाता है।

इस प्रकार, पश्चाताप की भावनाओं से पीड़ित और पहले से ही निराशा में डगमगाते हुए, जैसे ही आप अपनी प्रिय प्रतिज्ञा की ओर बढ़ते हैं:

क) सबसे पहले, उद्धारकर्ता मसीह के क्रूस पर चढ़ाए जाने की शक्ति में एक जीवित विश्वास को पुनर्जीवित करने के लिए तत्पर हो। सभी लोगों के सभी पाप क्रूस पर ठोक दिए गए हैं, और परिणामस्वरूप, आपके भी। इस निश्चितता को पुनर्जीवित करें, और आनंद आपके हृदय में प्राण फूँकेगा, और यह इस विश्वास से गर्म होते ही आशा में बदल जाएगा।

ख) इसमें यह दृढ़ विश्वास जोड़ें कि जैसे ही आप संस्कार प्राप्त करेंगे, आपको अपना व्रत पूरा करने की शक्ति दी जाएगी। किसी को भी उनसे वंचित नहीं किया जाता है। इसी कारण से, प्रभु ने उन्हें प्रदान किया है, ताकि वे प्रदान किए जा सकें। यह विश्वास आपकी अपनी शक्ति को प्रेरित करेगा और ऐसी सहायता के साथ लगन से काम करने की तत्परता पैदा करेगा। क्या ऊपर से मदद के भरोसे के बिना कोई संकल्प उत्पन्न हो सकता है? लेकिन, दूसरी ओर, क्या यह भरोसा तब आएगा जब कोई संकल्प लेने के बारे में सोचे ही नहीं? यहाँ एक पारस्परिक अंतःक्रिया है।

ग) और जब आपके भीतर विश्वास और तत्परता का यह संयोजन उत्पन्न होता है, तो एक व्रत लें—अपने जीवन के सभी दिनों तक एकमात्र **सच्चे** ईश्वर की सेवा करने का। यह हार्दिक संकल्प, जो हमारे प्रभु यीशु मसीह में विश्वास से लिया गया और सच्चे मन से व्यक्त किया गया है, आपकी आत्मा पर छाए हुए सभी अंधकार को दूर कर देगा और आपके अंतर्मन के प्रत्येक पहलू तथा आपके बाह्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रकाशित करेगा। यहीं पर मसीह यीशु में परमेश्वर के साथ हृदय की वाचा निहित है। इसलिए, इस कृत्य के माध्यम से, आपका पूर्व संकल्प एक सच्चा ईसाई स्वरूप धारण कर लेता है।

प्रतिज्ञा की ओर आरोहण, प्रायश्चित करने वाले पापी की प्रभु की ओर यात्रा का चरमोत्कर्ष है। अब प्रभु, जो उससे मिलने आते हैं, को प्राप्त करने से पहले उसे बस कुछ ही कदम और चलने हैं। पिता ने व्यर्थ पुत्र को उसकी गर्दन में बाहें डालकर और पूर्ण क्षमा के प्रतीक के रूप में उसे चूमकर स्वागत किया; फिर उसने उसे उचित वस्त्र पहनाए और उसके लिए एक भोज तैयार किया। a) ईश्वर पश्चातापी को पापक्षमा संस्कार में पूर्ण क्षमा प्रदान करते हैं; b) वे उसे शक्ति से परिपूर्ण करते हैं और पवित्र संस्कार में उसे एक भोज प्रदान करते हैं।

पश्चातापी को पाप-क्षमा संस्कार में पूर्ण क्षमा प्रदान की जाती है

एक बार जब किसी पापी ने अब से एकमात्र सच्चे ईश्वर की सेवा करने का संकल्प ले लिया है, तो उसे तुरंत प्रायश्चित्त की संस्कार की ओर बढ़ना चाहिए। इसकी आवश्यकता इतनी महान है कि, इसके बिना, अब तक किया गया सब कुछ न केवल अधूरा ही रहेगा, बल्कि व्यर्थ होकर नष्ट भी हो जाएगा। यह अपना सारा भार, महत्व और शक्ति केवल इसी संस्कार से प्राप्त करता है। इसीलिए, जहाँ प्रायश्चित का संस्कार नहीं है, वहाँ कोई भी सच्चे ईसाई ढंग से नहीं जीता।

(क) यह संस्कार आवश्यक बनाने वाली पहली बात सामान्य रूप से हमारे आंतरिक जीवन में दृढ़ता की एक निश्चित कमी, एक निश्चित अस्पष्टता और अस्थिरता है। हमारे विचार, जब तक वे हमारे मन में हैं, अपने प्रवाह में परिवर्तनशील, अपनी अनुक्रमण में अव्यवस्थित और अपनी गति में अस्थिर होते हैं—और यह केवल तभी सच नहीं है जब विषय अभी स्पष्ट न हो, बल्कि तब भी जब हमने उस पर पूरी तरह से चर्चा कर ली हो। लेकिन जैसे ही हम उन्हें कागज पर उतारते हैं, वे न केवल क्रमबद्ध हो जाते हैं, बल्कि निश्चित रूप से स्पष्ट और पुष्ट भी हो जाते हैं। ठीक इसी तरह, जीवन में बदलाव, जब केवल मन में ही सोचा जाता है, तो वह अपने आप में अनिश्चित और अस्थिर रहता है, और उस समय कल्पना किए गए जीवन के रूप अस्थिर और अनिर्दिष्ट होते हैं। उन्हें प्रायश्चित के संस्कार में एक ठोस आधार मिलता है, जब पापी चर्च में अपनी कमियों का इकरार करता है और अपने रास्ते सुधारने की अपनी प्रतिज्ञा की पुष्टि करता है। पिघला हुआ मोम बिना आकार के बहता है; लेकिन

जब इसे किसी साँचे में डाला जाता है या मुहर से छापा जाता है, तो यह एक निश्चित आकार ले लेता है। और हमारे अंतर्मन पर भी एक मुहर लगनी चाहिए ताकि वह एक निश्चित रूप धारण कर सके। यह प्रायश्चित की संस्कार में पूरा होता है: यहाँ, पवित्र आत्मा की दिव्य कृपा इसे सील कर देती है।

b) एक व्यक्ति को परमेश्वर की आत्मा से आध्यात्मिक जीवन प्राप्त होता है। आत्मा की कृपा हमारे भीतर वास करती है, हमारे भीतर जीने और कार्य करने लगती है, और आत्मा के अनुसार जीवन लाती है। पश्चातापी में, इसने अब तक बाहर से कार्य किया है: बाहर से ही इसने उसे प्रेरित किया, बाहर से ही इसने उसके भीतर सभी सुधारात्मक आंदोलनों को देखा और उनकी सहायता की; लेकिन यह अभी तक भीतर प्रवेश नहीं किया है, न ही इसने निवास किया है। यह पवित्र आत्मा द्वारा प्रायश्चित की संस्कार में (और, पहली बार प्रभु की ओर मुड़ने वाले के लिए, बपतिस्मा में) पूरा किया जाता है। जैसे प्यासे को ठंडा पानी पीने पर ताजगी और शक्ति महसूस होती है, वैसे ही पश्चाताप की आग में जलने वाला भी प्रायश्चित की संस्कार में, एक निश्चित —एक ऐसी शक्ति प्राप्त करता है जो उनके दुःख को शांत करती है और साथ ही उन्हें मजबूत भी करती है।

ग) पश्चाताप की संस्कार को विशेष रूप से आवश्यक बनाने वाली चीज़, एक ओर पाप का स्वभाव है, और दूसरी ओर हमारे अंतरात्मा का स्वभाव है। जब हम पाप करते हैं, तो हम सोचते हैं कि पाप का कोई निशान न तो हमारे बाहर रहता है और न ही हमारे भीतर। इस बीच, यह हमारे भीतर और हमारे बाहर दोनों जगह गहरे निशान छोड़ जाता है—हमारे आसपास की हर चीज़ पर, और विशेष रूप से स्वर्ग में, दैवीय न्याय के विधानों में। पाप के क्षण में, वहाँ यह तय हो जाता है कि पापी क्या बन गया है: जीवन की पुस्तक में, उसे दंडितों के रजिस्टर में दर्ज कर दिया जाता है—और इस प्रकार स्वर्ग में बाँध दिया जाता है। जब तक वह स्वर्ग में दण्डितों की सूची से हटाया नहीं जाता, जब तक उसे वहाँ पापमुक्ति नहीं मिलती, तब तक उस पर दैवी अनुग्रह नहीं उतरेगा। लेकिन ईश्वर को यह उचित लगा कि स्वर्गीय पापमुक्ति—दण्डितों की सूची से स्वर्गीय हटाया जाना—पृथ्वी पर पाप के बंधनों से बँधे लोगों की पापमुक्ति पर निर्भर हो। इसलिए, प्रायश्चित का संस्कार ग्रहण करो, ताकि तुम पूर्ण क्षमा के योग्य माने जाओ और अनुग्रह के आत्मा के लिए अपने भीतर मार्ग खोलो। हमारा अंतरात्मा, जो अब शुद्ध हो गया है और नैतिक व्यवस्था के संबंध में अपनी संवेदनशीलता और विवेक फिर से प्राप्त कर चुका है, हमें तब तक चैन नहीं लेने देगा जब तक हमें क्षमा का दृढ़ विश्वास नहीं हो जाता। हमारे जीवन के सामान्य क्रम में इसकी प्रकृति ऐसी ही है: यह हमें उस व्यक्ति से मिलने तक भी नहीं छोड़ता जिसे हमने आहत किया है, जब तक हमें यह निश्चित नहीं हो जाता कि उन्होंने हमें क्षमा कर दिया है। लेकिन जब बात ईश्वर की आती है, तो यह और भी अधिक सूक्ष्मदर्शी हो जाता है। यद्यपि, उस क्षण जब कोई व्यक्ति दृढ़ संकल्प करने के लिए उठता है, उस पर एक निश्चित आश्वासन आता है कि वह अब ईश्वर के विरुद्ध नहीं है, यह आश्वासन—जो स्वयं उसके बनाए हुए है—टिकाऊ नहीं हो सकता; यह जल्द ही संदेह से हिल जाएगा: 'क्या यह वास्तव में सच है, या यह केवल आत्म-वंचना है?', और यह संदेह भीतर चिंता बोएगा, और चिंता से शिथिलता आती है। परिणामस्वरूप, जीवन में दृढ़ता और व्यवस्था दोनों की कमी होगी। इसलिए, एक व्यक्ति को ईश्वर के मुख से सार्वभौमिक क्षमा का वचन सुनना चाहिए, ताकि ईश्वर की दया में विश्वास से अंतिम आश्वासन प्राप्त करके, वे उसी विश्वास में और अधिक दृढ़ संकल्प और अटूटता के साथ कार्य कर सकें। तो जाओ, और अपने पापों का इकरार करो—और तुम ईश्वर से क्षमा का घोषणापत्र प्राप्त करोगे।

उद्धारकारी पापस्वीकार के लिए स्वयं को ठीक से तैयार करना चाहिए। जिसने भी अब तक कही गई सभी बातों का पालन किया है, वह तैयार है। तो फिर, श्रद्धापूर्ण विश्वास के साथ आगे बढ़ें!

(क) इस संस्कार की आवश्यकता के बारे में दृढ़ता से विश्वास हो जाने पर, इसके पास जाएँ—न कि अपने जीवन में बदलाव या किसी सरल रीति-रिवाज़ के केवल एक हिस्से के रूप में, बल्कि इस पूर्ण विश्वास के साथ कि एक पापी के रूप में, आपके लिए यह उद्धार का एकमात्र संभव मार्ग है; कि, यदि आप इसे दरकिनार करते हैं, तो आप शापितों में से एक बने रहेंगे और, परिणामस्वरूप, सभी दया से वंचित रह जाएँगे; कि, जब तक आप इस उपचार कक्ष में प्रवेश नहीं करते, आप अपनी आत्मा को स्वस्थ नहीं कर पाएँगे और पहले की तरह ही बीमार और परेशान बने रहेंगे; कि आप तब तक राज्य को नहीं देख पाएँगे जब तक कि आप पश्चाताप के द्वार से उसमें प्रवेश नहीं करते।

ख) इन दृढ़ विश्वासों के साथ, अपने भीतर इस संस्कार की इच्छा को फिर से जगाएँ। इसके पास बलिदान की जगह के रूप में नहीं, बल्कि आशीर्वाद के स्रोत के रूप में जाएँ। जो कोई भी पाप-स्वीकार के माध्यम से हमारे भीतर उत्पन्न होने वाले फल की जीवंत कल्पना करता है, वह स्वाभाविक रूप से उसकी ओर प्रयास किए बिना नहीं रह सकता। एक व्यक्ति वहाँ घावों से ढका हुआ जाता है, जिसके सिर से पैर तक एक भी स्वस्थ अंग नहीं होता, फिर भी वह वहाँ से हर अंग में स्वस्थ, जीवित, मजबूत और भविष्य की परेशानियों से सुरक्षा की भावना के साथ लौटता है। वह वहाँ एक भारी बोझ उठाकर जाता है—अपने अतीत के पापों का पूरा भार अपने ऊपर, जो उसे सताता है और उसका सारा शांति छीन लेता है—फिर भी वह वहाँ से राहत महसूस करते हुए, आनंदित, प्रसन्न मन से लौटता है, क्योंकि उसे सार्वभौमिक क्षमा का प्रमाणपत्र प्राप्त हुआ है।

ग) लज्जा और भय को हावी होने दो—होने दो! इस संस्कार को ठीक इसलिए इतना लालायित किया जाना चाहिए क्योंकि यह लज्जा और भय उत्पन्न करता है; और जितनी अधिक लज्जा और भय, उतना ही अधिक उद्धारकारी होता है। इस संस्कार की इच्छा करते हुए, अधिक लज्जा और अधिक भय की इच्छा करें। क्या कोई भी व्यक्ति जो उपचार कराने का निश्चय करता है, यह नहीं जानता कि वह उपचार दर्दनाक होगा? वे जानते हैं, लेकिन उपचार कराने का निश्चय करते हुए, वे ठीक होने की आशा में उससे जुड़ी पीड़ा को सहने का भी एक साथ निश्चय करते हैं। और आप, जब पश्चाताप की भावनाओं से पीड़ित थे जो आप पर आई थीं और ईश्वर के करीब आने का प्रयास कर रहे थे, तो क्या आपने यह नहीं कहा था: 'मैं कुछ भी सहने को तैयार हूँ, केवल दया करें और मुझे क्षमा करें!' और इस प्रकार आपकी इच्छानुसार ही हुआ है। अब जो शर्म और डर आप महसूस कर रहे हैं, वह आपको विचलित न करे—वे आपके अपने भले के लिए इस संस्कार से जुड़े हुए हैं। उनसे परिष्कृत होकर, आप चरित्र में और मज़बूत होंगे। आप पश्चाताप की अग्नि से पहले ही एक से अधिक बार शुद्ध हो चुके हैं—एक बार फिर शुद्ध हो जाइए। तब आप ईश्वर और अपनी अंतरात्मा के समक्ष अकेले शुद्ध हुए थे, लेकिन अब ईश्वर द्वारा नियुक्त एक साक्षी की उपस्थिति में शुद्ध होइए, उस निजी शुद्धिकरण की ईमानदारी की गवाही के रूप में, और शायद उसकी अपूर्णता की पूर्ति के लिए। एक न्याय होगा, और उसके साथ ही तीव्र लज्जा और भय भी। पाप-स्वीकृति के दौरान अनुभव की गई लज्जा और भय, उस समय की लज्जा और भय का प्रायश्चित करते हैं। यदि आप उनका सामना नहीं करना चाहते, तो इनका सहन करें। इसके अलावा, यह हमेशा सच होता है कि पश्चातापी जितना अधिक चिंता अनुभव करता है, पाप-स्वीकृति के बाद उसे उतना ही अधिक सांत्वना मिलती है। यहीं पर उद्धारकर्ता स्वयं को वास्तव में थके हुए और बोझिल लोगों के सांत्वनादाता के रूप में प्रकट करते हैं! जो व्यक्ति सच्चे मन से पश्चाताप कर चुका है और अपना पाप स्वीकार कर चुका है, वह यह सत्य अपने व्यक्तिगत अनुभव से जानता है, और इसे केवल विश्वास के द्वारा स्वीकार नहीं करता।

ग) फिर, आपने जो भी पाप किए हैं, उन्हें एक बार फिर से याद करें और यह संकल्प नया करें कि आप उन्हें दोबारा नहीं करेंगे , एक जीवित विश्वास को जगाएँ कि आप स्वयं प्रभु के सामने खड़े हैं, जो आपके पाप-स्वीकार को स्वीकार करते हैं, और सब कुछ बताएं, अपने विवेक पर बोझ बनने वाली किसी भी बात को छिपाए बिना। यदि आप स्वयं को लज्जित करने की इच्छा से आए हैं, तो आप कुछ भी छिपाएंगे नहीं, बल्कि पाप की ओर झुकाव पर अपनी लज्जा को यथासंभव प्रकट करेंगे। यह आपके पश्चात्तापी हृदय को सांत्वना देने का काम करेगा। यह सुनिश्चित होना चाहिए कि हर स्वीकार किया गया पाप हृदय से बाहर निकल जाता है, जबकि हर छिपाया गया पाप उसमें बना रहता है, और यह और भी बड़ी निंदा लाता है क्योंकि, उस घाव के साथ, पापी सर्व-चिकित्सक के करीब था। एक पाप को छिपाकर, उसने उस घाव को ढक दिया है, यह महसूस किए बिना कि यह उसकी आत्मा को पीड़ा और कष्ट देता है। धन्य थियोडोरा के वृत्तांत में, जिन्होंने अपनी परीक्षाओं को सहा, कहा गया है कि उनके दुष्ट आरोपियों को अपने अभिलेखों में वे पाप नहीं मिल सके जिनका उसने स्वीकारोक्ति किया था। बाद में स्वर्गदूतों ने उसे समझाया कि स्वीकारोक्ति पाप को हर उस स्थान से मिटा देती है जहाँ यह दर्ज होता है। न तो विवेक की पुस्तक में, न जीवन की पुस्तक में, और न ही इन दुष्ट विनाशकों के पास उस व्यक्ति के विरुद्ध अब इसका कोई रिकॉर्ड रहता है—स्वीकारोक्ति ने इन प्रविष्टियों को मिटा दिया है। इसलिए, बिना कुछ भी रोके, वह सब कुछ बहा दो जो आपके ऊपर बोझ है। अपने पापों का खुलासा करते समय किसी को किस हद तक जाना चाहिए, यह इस बात पर निर्भर करता है कि आपका आध्यात्मिक पिता आपके बारे में एक सटीक समझ बना सके, ताकि वह आपको वैसा ही देख सके जैसा आप वास्तव में हैं, और पापमुक्ति प्रदान करते समय, वह विशेष रूप से आपको ही पापमुक्त करे, न कि किसी और को; ताकि जब वह कहे: 'उन पापों के लिए पश्चातापी को क्षमा और पापमुक्ति प्रदान करो जो उन्होंने किए हैं,' — आपके भीतर ऐसा कुछ भी नहीं बचता जो इन शब्दों के दायरे में न आता हो। जो लोग, लंबे समय तक पाप में जीवन जीने के बाद पहली बार पाप-स्वीकृति की तैयारी करते समय, पहले से ही अपने आध्यात्मिक पिता से बात करने का अवसर लेते हैं और उन्हें अपने पापी जीवन का पूरा इतिहास सुनाते हैं, वे अच्छा करते हैं। इस तरह, पाप-स्वीकृति के दौरान होने वाली उलझन में कुछ भी भूलने या छोड़ देने का कोई खतरा नहीं रहता। अपने पापों का पूरा खुलासा सुनिश्चित करने के लिए हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए। प्रभु ने पापमुक्ति की शक्ति बिना शर्त नहीं, बल्कि पश्चाताप और स्वीकारोक्ति की शर्त पर प्रदान की है। यदि यह पूरा नहीं होता है, तो ऐसा हो सकता है कि जब आध्यात्मिक पिता कहें, 'मैं आपको क्षमा करता हूँ और पापमुक्त करता हूँ,' तो प्रभु कहें, 'लेकिन मैं आपको निन्दा करता हूँ।'

घ) अब पाप-स्वीकृति समाप्त हो गई है। आध्यात्मिक पिता एपिटरैक्लियन को उठाते हैं, उससे पापी के सिर को ढकते हैं और, उस पर अपना हाथ रखकर, सभी पापों से मुक्ति का उच्चारण करते हैं, और सिर पर क्रॉस के चिह्न से इसे सील करते हैं। उस क्षण आत्मा में क्या होता है, यह हर वह व्यक्ति जानता है जिसने सच्चे मन से पश्चाताप किया है। कृपा की धाराएँ सिर से हृदय में बहती हैं और उसे आनंद से भर देती हैं। यह मनुष्यों से नहीं आता—न तो पश्चातापी से और न ही पापमोचन करने

वाले से: यह प्रभु, आत्माओं के उपचारकर्ता और सांत्वनादाता का रहस्य है... कभी-कभी ऐसा होता है कि कुछ लोग अपने हृदय में एक दिव्य वचन को स्पष्ट रूप से सुनते हैं, जो उनके भविष्य के प्रयासों के लिए शक्ति और प्रेरणा का स्रोत बनता है। यह, यूं कहें, एक आध्यात्मिक हथियार है जो उद्धारकर्ता मसीह द्वारा उस व्यक्ति को प्रदान किया जाता है जो अब उनके झंडे के नीचे लड़ने वालों की कतार में शामिल हो जाता है। जिसने भी ऐसे वचन को सुनने के योग्य समझा गया है, उसे बाद में इसे सांत्वना और प्रेरणा के स्रोत के रूप में रखना चाहिए; सांत्वना का स्रोत, क्योंकि यह स्पष्ट है कि जब प्रभु को पश्चातापी से, मानो, बातचीत करने में प्रसन्नता हुई, तो पाप-स्वीकृति स्वीकार हो गई है; प्रेरणा का स्रोत, क्योंकि परीक्षा के समय व्यक्ति को बस इसे याद करना होता है, और इससे ही शक्ति प्राप्त होगी! युद्ध में सैनिक कार्रवाई के लिए खुद को कैसे उत्साहित करते हैं? — कमांडर के भाषण के उस शब्द से जो सबसे अधिक प्रभावशाली होता है। यहाँ भी ऐसा ही है।

ई) और इस प्रकार सब कुछ समाप्त होता है... अब बस इतना ही शेष है कि ईश्वर की अनुपम दया के लिए कृतज्ञतापूर्वक उनके सामने स्वयं को नमन किया जाए और एक व्रत के प्रतीक के रूप में क्रूस और सुसमाचार को चूमा जाए — सुसमाचार में बताई गई राह पर दृढ़ता से चलना, आत्म-त्याग के माध्यम से, मसीहा मसीह के पदचिन्हों पर चलना, जैसा कि सुसमाचार में वर्णित है, उनके कोमल जुए के अधीन, जिसे आपने अब स्वयं पर लिया है। ऐसा करने के बाद, शांति से जाएँ, यह निश्चय करके कि आप ठीक वैसे ही कार्य करेंगे जैसे आपने वादा किया है, यह ध्यान में रखते हुए कि इस क्षण से आपका न्याय आपके अपने शब्दों से होगा। एक व्रत बनाकर, उसे निभाएँ; उसे संस्कार से सील करके, उसमें और भी अधिक निष्ठावान बनें, कहीं ऐसा न हो कि आप फिर से उन लोगों की श्रेणी में आ जाएँ जो अनुग्रह को रौंदते हैं।

ग) यदि आपके आध्यात्मिक पिता आप पर कोई तपस्या थोपते हैं, तो उसे खुशी से स्वीकार करें। और यदि आपके आध्यात्मिक पिता ऐसा नहीं करते हैं, तो उनसे ऐसा करने के लिए कहें। यह न केवल आपके लिए उस अच्छे मार्ग पर एक मार्गदर्शक के रूप में काम करेगा जिस पर आप चल रहे हैं, बल्कि आपके नए जीवन के तरीके में बाहरी लोगों द्वारा आपके खिलाफ निर्देशित शत्रुतापूर्ण कार्यों से सुरक्षा और ढाल के रूप में भी काम करेगा। इस विषय पर कॉन्स्टेंटिनोपल के परम पावन पैट्रिआर्क (जेरेमिया — संपादक) अपनी 'लुथरन लोगों को उत्तर' में लिखते हैं: 'हम कई वैध कारणों से पापों की क्षमा के साथ प्रायश्चित जोड़ते हैं। पहला, ताकि यहाँ स्वैच्छिक पीड़ा के माध्यम से पापी वहाँ, आने वाले जीवन में, कठोर अनैच्छिक दंड से मुक्त हो सके, क्योंकि पीड़ा से अधिक कुछ भी प्रभु को प्रसन्न नहीं करता, और स्वैच्छिक पीड़ा तो और भी अधिक। इसीलिए संत ग्रेगरी कहते हैं कि आँसुओं को मानवता के प्रति प्रेम से पुरस्कृत किया जाता है। दूसरा, ताकि पापी की देह की वे पापी इच्छाएँ, जो पाप को जन्म देती हैं, पापी के भीतर से समाप्त हो जाएँ, क्योंकि हम जानते हैं कि समान का उपचार समान से ही होता है। तीसरा, ताकि प्रायश्चित आत्मा के लिए एक प्रकार से बंधन या लगाम का काम करे, जो उसे उन्हीं बुराइयों पर लौटने से रोकता है, जिनसे ' ' वह अभी-अभी शुद्ध हुई है। चौथा, हमें परिश्रम और धैर्य का आदी बनाने के लिए, क्योंकि सदाचार परिश्रम का फल है। पाँचवाँ, ताकि हम देख और जान सकें कि क्या पश्चातापी ने वास्तव में पाप से घृणा करने लगा है।"

जो कोई भी इस संपूर्ण आध्यात्मिक उपचार की प्रक्रिया को जैसा कि उसे करना चाहिए, वैसे करता है, और—सबसे महत्वपूर्ण बात—अपने पापों का बिना कुछ छिपाए पूरा-पूरा इकरार करता है, वह परमेश्वर के घर से ठीक वैसे ही लौटता है जैसे अपराधी न्याय की जगह से लौटता है, जहाँ उसने मृत्युदंड की सजा के बजाय, क्षमा का घोषणापत्र और अपने अपराधों की माफी सुनी होती है, — वे हमारे आत्मा के उद्धारकर्ता के प्रति गहरी कृतज्ञता की भावना के साथ लौटते हैं, अपने शेष जीवन को उनके प्रति और उनके आज्ञाओं के पालन के लिए समर्पित करने के दृढ़ संकल्प के साथ, अपने सभी पूर्व पापों से परम घृणा के साथ और अपने पूर्व दुष्ट जीवन के सभी निशानों को मिटा देने की एक अदम्य इच्छा के साथ। जिसने पापमुक्ति प्राप्त की है, वह अपने भीतर महसूस करता है कि वह सुस्त नहीं है, कि एक विशेष शक्ति उस पर आई है। दिव्य अनुग्रह, जो अब तक केवल बाहरी रूप से उस पर स्वयं पर विजय पाने में मदद करने के लिए कार्य कर रहा था, अब 'मैं क्षमा करता हूँ और अनुमति देता हूँ' शब्दों के साथ, भीतर प्रवेश कर गया है, उसकी आत्मा में विलीन हो गया है, और उसे एक ऐसे उत्साह और जोश से भर दिया है, जिसके साथ वह अब अपने जीवन के अंत तक अपना काम और कर्तव्य निभाने के लिए निकल पड़ता है।

पश्चातापी पवित्र सहभाग के संस्कार के पास जाता है

व्यर्थ उड़ाऊ पुत्र की दृष्टांत कथा में, पिता ने अपने उस पुत्र का, जो पश्चाताप कर उसके पास लौटा था, स्वागत किया, उसके पैरों पर गिरकर और पूर्ण क्षमा के प्रतीक के रूप में उसे चूमकर, उसे वस्त्र पहनाने और एक आनंदमय और उत्सवपूर्ण भोज तैयार करने का आदेश दिया। पिता का हृदय केवल क्षमा से ही संतुष्ट नहीं था; वह अपने पुत्र को उसके साथ मेल-मिलाप का आश्वासन देने और इतनी दुखद विदाई के बाद उनके पुनर्मिलन की खुशी को और भी उत्साहपूर्वक व्यक्त करने के लिए

दृढ़ था। एक पिता का प्रेम वह प्रदान करता है जिसकी पुत्र की आशा ने कल्पना भी नहीं की थी। पूर्ण क्षमा प्राप्त करने के बाद कौन सा पापी कुछ और बड़ा पाने की उम्मीद कर सकता था? और फिर भी, उसे प्रभु भोज में भी आमंत्रित किया जाता है, जहाँ प्रभु स्वयं उसे अपना शरीर खाने के लिए और अपना लहू पीने के लिए देते हैं। पश्चातापी पापी के प्रति उदारता की यह चरम महिमा है; फिर भी यह कोई अतिशयोक्ति नहीं, बल्कि प्रभु के साथ पुनर्मिलन के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता है।

ईसाई जीवन प्रभु यीशु मसीह में जीवन है। विश्वासी मसीह के वस्त्र पहनता है और उसी के द्वारा जीता है। जो बपतिस्मा के बाद गिर जाता है, वह इस अनुग्रह को खो देता है; गिरावट से उठकर और प्रभु के पास लौटकर, उसे एक बार फिर इसके योग्य बनना चाहिए—और वह पवित्र सहभागिता के द्वारा योग्य बनाया जाता है। *'जो मेरी देह खाता है और मेरा लहू पीता है, वह मुझ में वास करता है, और मैं उसमें,'* प्रभु कहते हैं (यूहन्ना 6:56)। यहाँ, एक पश्चातापी आत्मा में, मसीह यीशु में जीवन की शुरुआत निहित है। प्रभु ने कहा कि वह दाख की बेल हैं, और जो उन पर विश्वास करते हैं वे डालियाँ हैं (देखें यूहन्ना 15:4-6)। एक डाल तब तक जीवित नहीं रहती जब तक वह बेल पर न हो; इसी प्रकार, विश्वासी तब तक जीवित नहीं रहते जब तक वे प्रभु में न हों। इस बेल के सिवा और कहीं भी सच्चा जीवन नहीं है। जो कुछ भी इस पर नहीं है, वह मृत है। इसलिए, जो कोई भी सचमुच जीना चाहता है, उसे इसमें गूँथ दिया जाना चाहिए, इससे जीवन-दायक रस प्राप्त करना चाहिए, और इसी से पोषण लेकर जीना चाहिए। यह कलम संस्कार पवित्र सहभागिता में होता है: यहाँ ईसाई प्रभु के साथ एक हो जाता है। जब प्रभु केवल एक पापी का मार्गदर्शन पूर्ण पश्चाताप की ओर कर रहे थे, तो वे केवल हृदय के द्वार पर खटखटा रहे थे; लेकिन जब पश्चाताप और अनुशोचना के द्वारा वह द्वार खुलता है, तो वे प्रवेश करते हैं और सहभागियों के साथ प्रभु भोज का सेवन करते हैं।

अब एक व्यक्ति नया जन्म लेता है। उनके लिए एक बिल्कुल नए प्रकार का जीवन शुरू होता है। जीवन भोजन के बिना जारी नहीं रह सकता, और वह भी ऐसा भोजन जो उसके अनुकूल हो। और ऐसा भोजन ही प्रभु का शरीर और रक्त है। उन्होंने स्वयं कहा: *'मेरा मांस सच्चा भोजन है, और मेरा रक्त सच्चा पेय है'* (यूहन्ना 6:55)। एक नए जीवन की शुरुआत करने वाले को इसी से उस जीवन को पोषित करना चाहिए। अपने नए जीवन की शुरुआत में, बिल्कुल आरंभ में ही, इस भोजन को ग्रहण करना और भी अधिक आवश्यक है। कहा जाता है कि पहला भोजन किसी के शारीरिक जीवन के स्वभाव को प्रभावित करता है और बाद में शरीर की एक स्थायी आवश्यकता बन जाता है। तो फिर, पश्चातापी के जीवन का स्वभाव कैसा होना चाहिए? हमारे प्रभु, मसीह यीशु पर केंद्रित एक जीवन। उसकी निरंतर आवश्यकता क्या होनी चाहिए? प्रभु के साथ संगति की आवश्यकता। अतः उसे इस जीवन की शुरुआत में ही, मसीह के शरीर और लहू को ग्रहण करने के लिए शीघ्रता करनी चाहिए, ताकि, कह सकते हैं, मसीह के अनुरूप जीवन की नींव रखी जा सके, और इस ग्रहण के माध्यम से उसके साथ निरंतर संगति की एक जीवंत इच्छा को प्रज्वलित किया जा सके। एक बार जब कोई इस स्वर्गीय मन्ना का स्वाद चख लेता है और इसकी मिठास का अनुभव कर लेता है, तो वह इस संगति के लिए और अधिक लालायित और प्यासा हुए बिना नहीं रह सकता।

इसलिए, पश्चाताप के माध्यम से दया और पूर्ण क्षमा प्राप्त करने के बाद, अपने अंतर्मन के पूर्ण पुनरुद्धार के लिए पवित्र सहभागिता ग्रहण करें।

इसके लिए तैयारी करने हेतु विशिष्ट नियम निर्धारित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। पश्चाताप करने वाला व्यक्ति पहले से ही आवश्यक सभी चीज़ों का स्वामी होता है, और स्वाभाविक रूप से पवित्र सहभागिता की ओर बढ़ता है। जिसने भी अपने पापों पर शोक मनाया है और उनका इक़रार किया है, व ह इस महान संस्कार में भाग लेने के लिए तैयार है। और प्रेरित इससे अधिक कुछ निर्धारित नहीं करते; वे केवल कहते हैं: *'मनुष्य अपना परीक्षण करे, और तब वह उस रोटी में से खाए और उस प्याले में से पिए'* (1 कुरिन्थियों 11:28)। कोई कह सकता है: जो आपके पास है उसे बनाए रखें, या जो आपके पास है उसे खोएं नहीं — और इतना ही काफी है।

हमारी स्थापित प्रथा के अनुसार, पापस्वीकार और संस्कार के बीच अधिक समय नहीं बीतता है: आमतौर पर, केवल शाम, सुबह और धर्मविधि। इन क्षणों में, पापस्वीकार के बाद चर्च से लाई गई मन की शांतिपूर्ण अवस्था को बनाए रखने का ध्यान रखना चाहिए, और इसे पवित्र संस्कार में प्रभु के साथ एकता के लिए लागू करना चाहिए।

क) अपना ध्यान विचलित रहित और अपना हृदय शांत रखें। ध्यान भटकाने वाली चीज़ों और परेशान करने वाली चिंताओं से सावधान रहें; सब कुछ एक तरफ रखकर, अपने भीतर की ओर मुड़ें और उस एकलौते प्रभु के एक ही विचार के साथ अकेले रहें जो आप पर आने वाले हैं। हर भटकते हुए विचार को दूर करें और, एकमात्र प्रभु का चिंतन करते हुए, उनसे एकाग्रचित्त, हार्दिक प्रार्थना करें।

ख) यदि आपका मन इस एक विचार पर स्थिर नहीं रह पाता है, तो उसे स्वयं संस्कार पर चिंतन में लगाएँ; और, यह सुनिश्चित करने के लिए कि वह बहुत अधिक भटके नहीं, उसे इस संस्कार के संबंध में प्रभु और पवित्र प्रेरितों के वचनों से बाँधें।

ग) जब आप प्रभु या पवित्र प्रेरितों की किसी बात पर मनन करें, तो उनसे आत्मिक पोषण प्राप्त करें और पश्चात्तापी

प्रार्थना के लिए स्वयं को तैयार करें। जब प्रार्थना का समय आए, तो प्रभु के सामने साष्टांग दण्डवत करें और जब तक प्रार्थना चलती रहे, उससे पीछे न हटें।

d) शाम को इन कार्यों में तब तक व्यस्त रहें जब तक नींद न आ जाए। सुबह आएगी। जागते ही होश में आते ही, सबसे पहले, आपके लिए उग आए दिन की महानता के प्रति अपनी चेतना को फिर से जगाएँ। लेकिन बेचैन न हों, कई चीजों से विचलित न हों, केवल वही बात ध्यान में रखें जो आपके साथ और आपके भीतर रहने वाली है। सतर्क रहें! शत्रु हर तरह से आपको बहकाएगा कि वह आपकी आत्मा को बुराई की स्थिति में ला सके, वह या तो आपके विचारों को भटकाने, या किसी बात को लेकर चिंता पैदा करने, या किसी चीज़ से असंतोष जगाने, या किसी के प्रति अरुचि उत्पन्न करने का प्रयास करेगा। प्रभु से प्रार्थना करते समय अपने प्रति सचेत रहें, और आप इन ठोकरों से बचेंगे।

ग) चर्च में प्रवेश करते समय, ऐसा महसूस करें जैसे आप सिय्योन के ऊपरी कमरे में हैं, जहाँ प्रभु ने पवित्र प्रेरितों को पवित्र सहभाग दिया, और भजनों के गाये जाने और पठन के समय से भी अधिक ध्यान दें, अपने सभी विचार इस बोध की ओर निर्देशित करें कि यह स्वयं प्रभु ही हैं जो आपके लिए यह उद्धारक भोज तैयार कर रहे हैं।

(e) ऐसा करते हुए, पवित्र रहस्यों में स्वयं प्रभु और उद्धारकर्ता की वास्तविक उपस्थिति में **अपना विश्वास** मजबूत करें। इस विश्वास को आधार बनाकर और प्रभु स्वयं पर मनन करते हुए, मानो वह पहले से ही आपके पास आ रहे हों, **विनम्रता से** पुकारें: *'प्रभु, मैं यह योग्य नहीं हूँ कि आप मेरी छत के नीचे प्रवेश करें* (मत्ती 8:8)। इस विनम्रता से, **एक** पुत्रवत् **भय** की ओर बढ़ें—**ऐसा भय** जो रोकता नहीं, बल्कि एक श्रद्धालु संयम लाता है। चूँकि प्रभु स्वयं आपको आमंत्रित भी करते हैं और निकट आने की आज्ञा भी देते हैं, इसलिए **आत्मविश्वास के साथ,** इच्छा और **लालसा** के साथ, जैसे *कोई हिरण जल की धाराओं के लिए* **तरसता है**, वैसे ही निकट आने के लिए तैयार रहें, और निश्चय के साथ प्रभु स्वयं को, और उनके साथ उनमें छिपे जीवन के सभी खजानों को प्राप्त करने की **आशा करें**। इस आशा से, जो आपको लज्जित नहीं करेगी, एक बार फिर स्वयं की ओर मुड़ें, प्रभु से मिलने के लिए तैयार; अपने हृदय के **पश्चाताप को** और भी अधिक उत्साह से प्रज्वलित करें, और पाप से मुंह मोड़ने के **अपने वचन को** नवीनीकृत करें, भले ही इसके लिए आपको अपना जीवन ही क्यों न देना पड़े।

जी) पूरे अनुष्ठान के दौरान खड़े रहने का प्रयास करें, इन भावनाओं में से एक से दूसरी भावना की ओर बढ़ते हुए, और भक्ति की इस भावना में अंततः प्रभु के कलश के पास जाएँ; उसे देखकर, आपके पास आ रहे प्रभु को प्रणाम करें, और अपना मुँह और हृदय खोलकर, प्रेरित थॉमस के साथ नम्रता और श्रद्धा से पुकारते हुए उन्हें ग्रहण करें: *'हे मेरे प्रभु और मेरे परमेश्वर!'* (यूहन्ना 20:28)। महिमा तेरी हो, हे परमेश्वर! महिमा तेरी हो, हे परमेश्वर! महिमा तेरी हो, हे परमेश्वर!

ऐसे भाव के साथ प्रभु के कलश के पास जाकर, और उससे लौटकर, आप अपने हृदय में महसूस करेंगे: सचमुच वचन... दिव्य अनुग्रहों में सहभागी हो रहा है, क्योंकि मैं अकेला नहीं हूँ, बल्कि आपके साथ हूँ, हे मेरे मसीह, हे त्रि-सूर्य प्रकाश जो संसार को प्रकाशित करता है। इस क्षण से, आप अपने भीतर मसीह को धारण करना शुरू करते हैं। अतः, हर तरह से उनका मन प्रसन्न करने और उन्हें अपने भीतर बनाए रखने का बहुत ध्यान रखें। यदि मसीह आप में हैं, तो आपका विरोधी कौन हो सकता है? और बाकी सब कुछ आप प्रभु की सहायता से कर पाएँगे, जो आपको बल देते हैं।

यहीं से ईसाई में आध्यात्मिक जीवन के निर्माण की प्रक्रिया पूरी होती है, जो पतन के बाद, एक बार फिर से ईश्वर की सेवा की ओर मुड़ रहा है।

यही परिवर्तन की संपूर्ण प्रक्रिया है! इसे यहाँ एक विस्तृत वर्णन के रूप में प्रस्तुत किया गया है ताकि कोई भी स्वतंत्रता और अनुग्रह के अंतर्संबंध के माध्यम से उन सभी चरणों को और अधिक स्पष्ट रूप से देख सके, जिनकी एक परिवर्तित व्यक्ति को आकांक्षा करनी चाहिए। जो कुछ भी कहा गया है, वह हर परिवर्तित व्यक्ति में घटित होता है, लेकिन यह कैसे और किस हद तक होता है, यह व्यक्ति और उसकी परिस्थितियों पर निर्भर करता है। कुछ लोगों के लिए, संपूर्ण परिवर्तन कुछ ही मिनटों में हो जाता है; इस बीच, वे प्रेरित होते हैं, पश्चाताप करते हैं और संकल्प की स्थिति में उठ खड़े होते हैं। आध्यात्मिक घटनाएँ क्षणिक होती हैं। हालाँकि, इस प्रकार के परिवर्तन के उदाहरण बहुत दुर्लभ हैं; अधिकांश भाग के लिए, परिवर्तन एक साथ नहीं होता है, बल्कि धीरे-धीरे होता है। हालांकि आंतरिक परिवर्तन स्वयं क्षणिक होते हैं, लेकिन उन तक हमेशा तुरंत नहीं पहुँचा जाता, बल्कि कभी-कभी काफी लंबे समय की आत्म-अनुशासन के बाद ही पहुँचा जाता है। इसलिए, कुछ लोगों के लिए, पूर्ण परिवर्तन में वर्षों लग जाते हैं। जिन मुख्य बिंदुओं पर ठहराव आता है, वे वे हैं जहाँ स्व-प्रेम को कष्ट सहना पड़ता है, उदाहरण के लिए, बाधाओं या पाप के प्रलोभनों पर काबू पाने में, पाप-स्वीकृति के दौरान, और इसी तरह। प्राप्त की जाने वाली अंतिम अवस्था सभी चीज़ों से पूर्णतः विरक्ति और स्वयं को प्रभु के प्रति समर्पित करना है। उस क्षण से एक सच्चा ईसाई जीवन आरंभ होता है, क्योंकि तब व्यक्ति लक्ष्य—ईश्वर में छिपा हुआ होना—प्राप्त कर लेता है। सब कुछ उस उत्साह पर निर्भर करता है जिससे कोई व्यक्ति खुद पर काबू पाता है, और इस दृढ़ विश्वास पर कि जो कुछ भी आवश्यक है, वह किया जाना चाहिए—

चाहे अभी हो या बाद में, लेकिन यह किया जाना चाहिए: वास्तव में, अभी करना बेहतर है—और इस प्रकार कोई व्यक्ति काम करना शुरू कर देता है, और जल्द ही स्थिर हो जाता है। और स्थिर होना ही धर्म-परिवर्तन का मुख्य कार्य है।

ईसाई जीवन हमारे भीतर कैसे साकार होता है, परिपक्व होता है और मजबूत होता है

या, दूसरे शब्दों में, ईश्वर को प्रसन्न करने वाले जीवन के क्रम पर

ईसाई जीवन हमारे भीतर कैसे आकार लेता है, परिपक्व होता है और मजबूत होता है?

आइए हम इस तथ्य पर अपना ध्यान केंद्रित करें कि एक व्यक्ति अभी-अभी अंधकार से प्रकाश में, शैतान के राज्य से परमेश्वर की ओर मुड़ा है; उसने अभी-अभी एक नए रास्ते पर कदम रखा है जिस पर उसने अभी तक एक भी कदम नहीं रखा है, लेकिन वह अपने शुरू किए हुए काम में बने रहने के लिए आवश्यक सब कुछ करने के उत्साह से जल रहा है और अपने पूर्व स्वामियों के सामने फिर से नहीं झुकना चाहता, जिन्होंने उसे परमेश्वर और उद्धारकर्ता से दूर कर दिया था और विनाश की ओर ले गए थे।

अब प्रश्न उठता है: उसे कहाँ जाना चाहिए, और उसे क्या करना चाहिए, ताकि वह अपनी मंजिल तक पहुँच सके, और वहाँ सही, सीधे, शीघ्र और सफलतापूर्वक पहुँच सके? वह लक्ष्य, जिसकी ओर खोजी को अपना सारा ध्यान और सारे प्रयास केंद्रित करने चाहिए, मानवता का परम लक्ष्य और मोक्ष की स्थापना के सिवा और कुछ नहीं है, अर्थात् ईश्वर के साथ एकता, उनके साथ एक जीवंत मिलन, और उनके वास के योग्य ठहराया जाना। केवल तभी खोजने वाली और उत्साही आत्मा को विश्राम मिलेगा, जब वह ईश्वर को प्राप्त कर लेगी, उसका स्वाद चख लेगी और संतुष्ट हो जाएगी। इसलिए, उसके लिए पहला नियम है: *'प्रभु को खोजो और उसकी सामर्थ्य को; सदा उसका मुख खोजो* (भजन संहिता 104:4)। यह आशीर्वाद क्या है, यह मानव समझ से परे है। मनुष्य स्वयं ने कभी ऐसी ऊँचाई की कल्पना भी नहीं की होगी। लेकिन चूँकि परमेश्वर को यह उचित लगा कि वह उसे यह पद दें, इसलिए मनुष्य के लिए यह अविश्वास, लापरवाही, या इसे अपने विचारों से हटा देने के द्वारा, यहाँ तक कि परिश्रम करते हुए भी, इसे अस्वीकार करना अहंकारपूर्ण होगा। *'मैं उन में वास करूँगा,'* परमेश्वर कहते हैं, 'और यह—परम पवित्र त्रिमूर्ति के सभी व्यक्तियों के माध्यम से होगा' (2 कुरिन्थियों 6:16)। परमेश्वर पिता और स्वयं के बारे में बात करते हुए, प्रभु कहते हैं: *'हम* (विश्वासी और प्रेम करने वाले) *के पास आएँगे और उसके साथ अपना निवास स्थान बनाएँगे* (यूहन्ना 14:23)। केवल अपने आप के बारे में: *'मैं उसके पास आकर उसके साथ भोजन करूँगा* (प्रकाशितवाक्य 3:20); और भी अधिक स्पष्ट रूप से: *'मैं अपने पिता में हूँ, और तुम मुझ में हो, और मैं तुम में हूँ* (यूहन्ना 14:20)। जहाँ तक पवित्र आत्मा का प्रश्न है, प्रेरित कहते हैं: *'परमेश्वर का आत्मा तुम में वास करता है* (रोमियों 8:9)।

यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि ईश्वर का यह वास केवल मानसिक नहीं है, जैसा कि मनुष्य द्वारा ईश्वर के चिंतन और ईश्वर की कृपा में होता है, बल्कि यह एक जीवंत, महत्वपूर्ण संघ है, जिसके लिए पहले को केवल एक साधन माना जाना चाहिए। ईश्वर की कृपा में, ईश्वर की ओर बौद्धिक और हार्दिक प्रयास, मनुष्य को सत्य में ईश्वर को प्राप्त करने के लिए तैयार करता है; यह एक ऐसा मिलन है जिसमें, मानव शक्ति या व्यक्तित्व *को* अवशोषित किए बिना, *ईश्वर उसकी इच्छा और कर्म दोनों को अपनी इच्छा के अनुसार उत्पन्न करते हैं* (फिलि. 2:13); और, प्रेरित के अनुसार, *अब वह स्वयं नहीं रहता, बल्कि मसीह उसमें रहते हैं* (तुलना करें गला. 2:20)। यह न केवल मनुष्य का, बल्कि स्वयं ईश्वर का भी लक्ष्य है। जो कुछ भी सृजित है, वह ईश्वर में और ईश्वर के द्वारा ही स्थित है। स्वतंत्र प्राणियों को अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने के लिए छोड़ दिया गया है, लेकिन न तो निर्णायक रूप से और न ही सर्वकाल के लिए; बल्कि इसलिए कि वे भी स्वयं को सर्वशक्तिमान ईश्वर के हवाले कर दें, और ईश्वर के राज्य के भीतर ईश्वर से स्वतंत्र एक अलग राज्य का निर्माण न करें। यह अजीब लग सकता है कि परमेश्वर के साथ एकता अभी भी प्राप्त की जानी है, जबकि यह पहले से ही बपतिस्मा या प्रायश्चित के संस्कार में मौजूद है या प्रदान की गई है, क्योंकि कहा गया है: *'तुम सब जो मसीह में बपतिस्मा ले चुके हो, ने मसीह को पहिन लिया है* (गला. 3:27); या: *'तुम मरे हो, और तुम्हारा जीवन मसीह के साथ परमेश्वर में छिपा है* (कुलु. 3:3)। वास्तव में, केवल सामान्य ज्ञान से ही, ईश्वर सर्वत्र हैं, *हम*

में से किसी से भी दूर नहीं, ताकि हम उन्हें पा सकें (देखें प्रेरितों के काम 17:27), और जो कोई उन्हें ग्रहण करने के लिए तैयार है, वह उनके भीतर वास करने के लिए तैयार है। केवल अनिच्छा, उपेक्षा और पाप ही हमें उससे अलग करते हैं। अब, जब एक पश्चातापी व्यक्ति ने सब कुछ त्याग दिया है और स्वयं को ईश्वर के हवाले कर दिया है, तो क्या रोकता है ईश्वर को उसके भीतर वास करने से?

इस तरह के भ्रम को दूर करने के लिए, ईश्वर के साथ विभिन्न प्रकार के मिलन में अंतर करना आवश्यक है। यह जागरण के क्षण में शुरू होता है और व्यक्ति की ओर से ईश्वर की खोज और लालसा के रूप में प्रकट होता है; ईश्वर की ओर से अनुग्रह, सहायता और सुरक्षा के रूप में। लेकिन ईश्वर अभी भी व्यक्ति के बाहर हैं और व्यक्ति ईश्वर के बाहर है; वे अभी एक-दूसरे में समाहित नहीं हुए हैं या एक-दूसरे में प्रवेश नहीं कर रहे हैं। बपतिस्मा या प्रायश्चित्त के संस्कार में, प्रभु, अपनी कृपा से, व्यक्ति के भीतर प्रवेश करते हैं, उनके साथ जीवंत रूप से संवाद करते हैं और उन्हें ईश्वरत्व की पूर्ण मिठास का स्वाद चखने की अनुमति देते हैं, इतना प्रचुर और स्पष्ट रूप से जितना सिद्धों के लिए उचित है; परन्तु फिर वह अपनी सहभागिता के इस प्रकटिकरण को फिर से छिपा देता है, और इसे केवल समय-समय पर ही नवीनीकृत करता है—और तब भी केवल हल्के से, मूल के बजाय एक साधारण प्रतिबिंब की तरह—और मनुष्य को अपनी बुद्धिमानी भरी मार्गदर्शन के अनुसार, परिपक्वता या पालन-पोषण के एक निश्चित चरण तक स्वयं और अपने भीतर उसके वास के बारे में अनभिज्ञ छोड़ देता है। हालाँकि, इसके बाद प्रभु मनुष्य की आत्मा में अपने वास को मूर्त रूप में प्रकट करते हैं, जो तब त्रिमूर्ति ईश्वरत्व का एक मंदिर बन जाता है जो उसे भर देता है।

इस प्रकार, ईश्वर के साथ तीन प्रकार का संयोग होता है: एक मानसिक है, जो परिवर्तन की अवधि के दौरान होता है, जबकि अन्य दो वास्तविक हैं; फिर भी इनमें से एक छिपा हुआ है, दूसरों के लिए अदृश्य और व्यक्ति के लिए स्वयं अज्ञात है, जबकि दूसरा दूसरों के लिए भी प्रकट है। पहले प्रकार का संचार, जो सबसे अधिक समझने योग्य और सामान्य है, दूसरे चरण में या तीसरे में भी समाप्त नहीं होता है, क्योंकि आध्यात्मिक जीवन एक बौद्धिक जीवन है; फिर भी इन चरणों में यह अपनी मौलिक प्रकृति में पहले से भिन्न होता है, जिसे, हालांकि, शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। सम्पूर्ण आध्यात्मिक जीवन ईश्वर के साथ मानसिक संवाद से एक वास्तविक, जीवंत, बोधगम्य और प्रकट संवाद में संक्रमण करने में ही निहित है।

हम एक पश्चातापी व्यक्ति को मानते हैं—अर्थात्, वह जो वास्तव में ईश्वर के साथ संयोग में प्रवेश कर चुका है, भले ही यह संयोग अभी तक छिपा हुआ, गुप्त और प्रकट नहीं हुआ है, और जिसका उद्देश्य पूर्ण, बोधगम्य और मूर्त संयोग प्राप्त करना है। हमें इन सभी बातों को अपने लिए और अधिक सटीक रूप से परिभाषित करना होगा और इसके बारे में निश्चित होना होगा, क्योंकि उद्धार की ओर पश्चातापी की संपूर्ण गतिविधि इन्हीं अवधारणाओं पर आधारित होनी चाहिए; अर्थात्: कि पश्चाताप (या बपतिस्मा) के संस्कार में, अनुग्रह आत्मा के लिए बोधगम्य तरीके से अवतरित होता है, लेकिन फिर चेतना से छिप जाता है, हालांकि वास्तव में वह दूर नहीं जाता — और यह तब तक जारी रहता है जब तक हृदय का शुद्धिकरण नहीं हो जाता, जब इसे दृश्यमान और निर्णायक रूप से स्थापित किया जाता है। यह स्पष्ट है कि इस मामले में केवल पवित्र पिताओं ही हमारे मार्गदर्शक हो सकते हैं। इनमें से, किसी ने भी फोटिकी के बिशप संत डायडोचस और मिस्र के संत मकरियस जितना अच्छा वर्णन नहीं किया है। आइए हम अपने तर्कों के समर्थन में उनकी गवाहियों का हवाला दें।

किसी व्यक्ति में अनुग्रह स्थापित हो जाता है और वह संस्कार प्राप्त करने के क्षण से ही उनके साथ रहता है। संत डायडोचस कहते हैं, "पवित्र बपतिस्मा (या पश्चाताप) प्राप्त करने के क्षण से ही, अनुग्रह आत्मा की गहराइयों में निवास कर लेता है..." इसके अलावा: "पवित्र बपतिस्मा के माध्यम से, दैवीय अनुग्रह एक अकथनीय प्रेम के साथ, ईश्वर के सदृशता में प्रतिमा की विशेषताओं के साथ, सदृशता की प्रतिज्ञा के रूप में स्वयं को जोड़ता है।" संत मकारियस: "कृपा निरंतर एक व्यक्ति के साथ रहती है, जो प्रारंभिक आयु से ही उनके साथ एक हो गई है और उनमें जड़ें जमा चुकी है, जैसे कि यह उनके हृदय के भीतर कुछ स्वाभाविक और अविभाज्य हो, और, मानो, उनके साथ एक ही सत्ता बन गई हो।"

संस्कारों के माध्यम से अपने प्रथम वास के द्वारा, यह अनुग्रह व्यक्ति को ईश्वर के साथ एकता के आनंद में पूर्णतः सहभागी होने में सक्षम बनाता है। "सर्व-पवित्र आत्मा," संत डायडोचस कहते हैं, "हमारी आध्यात्मिक वृद्धि की शुरुआत में, यदि हम उत्साहपूर्वक ईश्वर की सद्गुणता से प्रेम करते हैं, तो वह आत्मा को सभी इंद्रियों से ईश्वर की मिठास का पूर्ण और संतोषजनक स्वाद प्रदान करता है, ताकि मन को ईश्वर को प्रसन्न करने वाले कर्मों के अंतिम पुरस्कार का सटीक ज्ञान हो सके। इसके अलावा: 'अनुग्रह आमतौर पर पहले आत्मा को अपनी रोशनी से इस तरह प्रकाशित करता है कि वह इसे प्रचुर मात्रा में महसूस कर सके।' कृपा का यह मूर्त अवतरण प्रारंभ में उस सफेद वस्त्र द्वारा प्रतीकित होता है जिसे बपतिस्मा लेने वाले **सात** दिनों तक पहनते हैं। यह कि यह केवल एक अनुष्ठान नहीं है, यह पवित्र नव-धर्मियों के उदाहरणों से स्पष्ट है, क्योंकि कुछ को स्पष्ट रूप से प्रकाश में लिपटा हुआ देखा गया, कुछ पर एक कबूतर अवतरित हुआ, और कुछ के चेहरे प्रकाशमान

हो गए। हालांकि, सामान्य रूप से, जो भी प्रभु के सच्चे अर्थ में निकट आए, उन्होंने इसे अपनी आत्मा के एक प्रकार के उछाल के रूप में अनुभव किया, जो उसी के समान था जिससे प्रभु के अग्रदूत ने एलिजाबेथ के गर्भ में परमेश्वर की माता और, उनके द्वारा, प्रभु के आगमन पर उछाल मारा था। सीमोन और जॉन (21 जुलाई) के जीवन में वर्णित है कि उन्होंने एक भाई के चारों ओर प्रकाश देखा, जिसे बपतिस्मा दिया गया था और जिसने मठवासी संन्यास की शपथ ली थी — और यह **सात** दिनों तक बना रहा। भिक्षुत्व के व्रत ग्रहण करते ही, अपने भीतर ईश्वर के एक विशेष कार्य को महसूस कर, उन्होंने इसे हमेशा के लिए संरक्षित रखने का प्रयास किया, जिसके लिए वे तुरंत एकांत में चले गए—जो इस उद्देश्य के लिए तपस्या का सबसे उपयुक्त रूप है।

तब अनुग्रह उस उद्धारित व्यक्ति से स्वयं को छिपा लेता है; और यद्यपि वह उसके भीतर वास करता है और कार्यरत रहता है, वह ऐसा इस तरह से करता है कि वह उसे महसूस नहीं कर पाता, और वास्तव में इतना अनजान रहता है कि वह अक्सर स्वयं को ईश्वर द्वारा परित्यक्त और बर्बाद समझने लगता है, जिसके कारण वह दुःख, विलाप और यहाँ तक कि थोड़ी निराशा में भी पड़ जाता है। इस प्रकार, संत डायडोचस, उपरोक्त उद्धृत अंशों का अनुसरण करते हुए, आगे कहते हैं: "इसके अलावा, इसके बाद भी लंबे समय तक, वह इस जीवन-दायक उपहार की कीमतीता को छिपाए रखते हैं, ताकि हम, भले ही हम सभी सद्गुणों को पूरा कर लें, खुद को पूरी तरह से शून्य मानें, क्योंकि हमने अभी तक पवित्र प्रेम को अपने भीतर एक आदत नहीं बनाया है", "लेकिन, जैसे-जैसे हम अपने आध्यात्मिक संघर्षों में दृढ़ रहते हैं, वह आत्मा के भीतर अपने रहस्यमय कार्य करता है जो ईश्वर को उसकी अज्ञात रीति से खोजती है, ताकि, पहली बात यह हो कि वह हमें—अज्ञान से ज्ञान की ओर बुलाए गए—को आनंदपूर्वक दिव्य चिंतन के पथ पर प्रवृत्त करे; और दूसरी बात यह कि हमारे संघर्षों के बीच, हमारे ज्ञान को घमंड से बचाए रखे।" अन्यत्र वे समझाते हैं कि अनुग्रह सामान्यतः कैसे कार्य करता है: "अनुग्रह पहले अपनी उपस्थिति को छिपाए रखता है, आत्मा की स्वतंत्र इच्छा की प्रतीक्षा में; और जैसे ही कोई व्यक्ति पूर्णतः प्रभु की ओर मुड़ता है, तो यह हृदय में किसी अभिव्यक्त न की जा सकने वाली अनुभूति के माध्यम से अपनी उपस्थिति प्रकट करता है और फिर से आत्मा की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करता है, इस बीच, शैतान के तीरों को अपनी गहराइयों तक पहुँचने देती है, ताकि वह परम उत्साह और परम विनम्रता के साथ ईश्वर की खोज कर सके... हालाँकि, यह समझना चाहिए कि, यद्यपि अनुग्रह अपनी उपस्थिति को आत्मा से छिपाता है, फिर भी वह एक छिपे हुए तरीके से उसकी मदद करता है, ताकि दुश्मनों को यह दिखाया जा सके कि विजय केवल आत्मा की ही है। यही कारण है कि तब आत्मा निराशा, दुःख, अपमान और यहाँ तक कि मध्यम निराशा की स्थिति में खुद को पाती है। और मिस्र के संत मकारियस कहते हैं कि "ईश्वर की अनुग्रह की शक्ति, जो मनुष्य में विद्यमान है (और जो पहले ही प्रदान की जा चुकी है), और पवित्र आत्मा का वरदान, जिसे एक विश्वासी आत्मा महान परिश्रम—बहुत प्रतीक्षा, दीर्घ सहनशीलता, प्रलोभनों और परीक्षाओं के माध्यम से—प्राप्त करने के योग्य माना जाता है," जिसका अर्थ है कि यह केवल उसकी प्राप्ति नहीं, बल्कि उसका पूर्ण रूप से वास और कार्य है, जैसा कि उनके शब्दों से स्पष्ट है जहाँ वे कहते हैं कि अनुग्रह, महान धैर्य, ज्ञान और मन की एक रहस्यमय परीक्षा के साथ, उस व्यक्ति में कार्य करना शुरू कर देता है जो लंबे समय से विभिन्न परिस्थितियों में संघर्ष कर रहा है। वह अब्राहम, याकूब, यूसुफ और दाऊद के उदाहरणों का उपयोग करके इसे समझाते हैं, जिन्हें महान वादे प्राप्त हुए थे, और फिर उन्हें उन वादों की पूर्ति देखने तक लंबे समय तक अज्ञातवास में कष्ट सहने के लिए विवश होना पड़ा। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि यह छिपाव और अप्रत्यक्षता स्थायी नहीं है, बल्कि कभी-कभी सांत्वनाओं से दूर हो जाती है, हालांकि ये सांत्वनाएं उन सांत्वनाओं से काफी अलग हैं जो पवित्र आत्मा के वास के बाद मिलती हैं।

अंत में, जब ईश्वर के साथ इस गुप्त संवाद और आत्मा के भीतर ईश्वर के कार्य करने का यह काल समाप्त हो जाता है—जिसका निरंतर चलना मानवीय हाथों में नहीं बल्कि उस अनुग्रह की मार्गदर्शक बुद्धिमत्ता में निहित है जो मनुष्य को बचाती है— **ईश्वर मनुष्य में एक विशेष तरीके से वास करता है**, उसे स्पष्ट रूप से भरता है, उसके साथ एक हो जाता है और उसके साथ संवाद करता है; यही सभी तपस्या और सभी मानवीय प्रयासों का लक्ष्य है, और ईश्वर की ओर से उद्धार के संपूर्ण कार्य का, और इस वर्तमान जीवन में जन्म से लेकर कब्र तक प्रत्येक व्यक्ति के साथ होने वाली हर घटना का भी। संत मकरियस कहते हैं कि, लंबे परीक्षणों के बाद, अनुग्रह का कार्य अंततः अपनी पूर्णता में प्रकट होता है, और आत्मा पवित्र आत्मा की संतान के रूप में पूर्ण रूप से दत्तक ग्रहण करती है। ईश्वर स्वयं को हृदय के हवाले कर देते हैं, और मनुष्य को प्रभु के साथ एक आत्मा का होने के लिए योग्य माना जाता है। डायडोचस के अनुसार, जो परखा गया है, वह हर तरह से पवित्र आत्मा का वासस्थान बन जाता है। अनुग्रह उसकी संपूर्ण सत्ता को गहराई की भावना से प्रकाशित करता है। यह क्रिया स्वयं को प्रकट करती है या व्यक्ति-दर-व्यक्ति विभिन्न तरीकों से इसके साथ होती है।

ईश्वर के साथ सच्चे मिलन के इन दो तरीकों को सबसे बुद्धिमान सिरोच ने, बुद्धि के बारे में बात करते हुए, खूबसूरती

से चित्रित और वर्णित किया है, जो कि ईश्वर की वह कृपा है जो हमें बचाती है: *क्योंकि पहले वह उसके साथ घुमावदार रास्तों पर चलेगी, उसमें भय और आतंक उत्पन्न करेगी, और अपनी मार्गदर्शन से उसे कष्ट देगी, जब तक कि वह उसके हृदय के प्रति आश्वस्त नहीं हो जाती और उसे अपनी आज्ञाओं से परखती है; परन्तु बाद में वह उससे सीधे रास्ते पर मिलेगी और उसे प्रसन्न करेगी, और अपने रहस्य उस पर प्रकट करेगी।* (सीर. 4:18–21)।

क्योंकि आरंभ में वह उसके साथ टेढ़ी-मेढ़ी राहों पर चलेगी — अर्थात् कठोरता से, सख्ती से, निर्दयता से, एक तरह से प्रेम की कमी के साथ।

वह उसमें भय और आतंक भर देगी—ईश्वर द्वारा परित्यक्त होने का भय और क्रूर शत्रुओं के हमेशा मंडराते हमले का भय; और, डायडोचस के अनुसार, अनुग्रह एक ऐसी माँ की तरह काम करता है जो अपने बच्चे से छिप जाती है, जो डर के मारे रोने और अपनी माँ को खोजने लगता है, खासकर जब वह अपने चारों ओर अजनबियों को देखता है।

और यह अपनी मार्गदर्शन के माध्यम से उसे पीड़ित करेगी—उसे लंबे समय तक अपनी ही गुप्त और कठोर प्रशिक्षण में रखकर। संत मकरियस के अनुसार, 'अनुग्रह, अपनी इच्छा के अनुसार और मनुष्य के लाभ के अनुरूप, कई और विविध तरीकों से सभी चीजों की व्यवस्था करता है, उसे कई प्रलोभनों और मन की रहस्यमय परीक्षाओं के अधीन करता है, और इसी तरह।

जब तक कि वह अपनी आत्मा में आश्वस्त नहीं हो जाता और उसे अपने ही नियमों से परखता है—अर्थात्, जब तक कि वह उसे उस बिंदु पर नहीं ले आता जहाँ उस पर पूरी तरह से भरोसा किया जा सकता है, एक ऐसे व्यक्ति के रूप में जो परखा और सच्चा है। संत मकरियस कहते हैं: 'जब इच्छा, कई परीक्षणों से गुजरने के बाद, स्वयं को पवित्र आत्मा को प्रसन्न करने वाला साबित करती है और, लंबे समय तक, इस बात में स्वयं को धैर्यवान और अडिग दिखाती है; जब आत्मा पवित्र आत्मा को किसी भी बात में ठेस नहीं पहुँचाती, बल्कि अनुग्रह के द्वारा सभी आज्ञाओं के साथ सामंजस्य में रहती है," तब *आत्मा सीधे उसके पास लौट* आएगी—अर्थात्, अलगाव और अनुपस्थिति के बाद एक बार फिर से उसके सामने, मानो आमने-सामने, खुले तौर पर प्रकट होगी। तब, संत मकरियुस के अनुसार, अनुग्रह का कार्य उसके भीतर पूरी तरह से प्रकट हो जाता है—वह पूर्ण दत्तक ग्रहण प्राप्त करता है; या, डायडोचस के अनुसार, अनुग्रह उसके पूरे अस्तित्व को किसी चीज़ की गहरी अनुभूति से प्रकाशित करता है, और वह पूरी तरह से पवित्र आत्मा का वासस्थान बन जाता है: परमेश्वर के मुख का प्रकाश उस पर चमकता है (भजन संहिता 4:7); प्रभु और परमेश्वर आते हैं और उसमें अपना वास करते हैं (देखें यूहन्ना 14:23)।

और यह उसे प्रसन्न करेगा। 'तुम्हारे हृदय आनन्दित होंगे,' प्रभु कहते हैं, *'और कोई भी तुम्हारा आनन्द तुमसे नहीं छीन सकेगा* (यूहन्ना 16:22)। परमेश्वर का राज्य *पवित्र आत्मा में आनन्द* है (रोमियों 14:17)। संत मकारियस कहते हैं, "एक व्यक्ति के भीतर चमकने वाली रोशनी उसकी आत्मा के सबसे गहरे हिस्से तक इस तरह व्याप्त हो जाती है कि, इस मिठास और सुखद अनुभूति में डूबा हुआ, वह उमड़ते प्रेम और अपने भीतर निहित रहस्यमय गूढ़ताओं के लिए पूरी तरह से मदहोश हो जाता है।" संत डायडोकोस कहते हैं, "तब आत्मा जल उठती है, और कुछ अकथनीय आनंद और प्रेम के साथ शरीर छोड़कर प्रभु के पास जाने का प्रयास करती है, मानो वह इस क्षणिक जीवन से अनभिज्ञ हो।"

और वह उसे अपने रहस्य प्रकट करेगा—दिव्य ज्ञान के रहस्य, परम पवित्र त्रिमूर्ति के रहस्य, मोक्ष की संरचना, उसकी प्राप्ति, पाप और पुण्य के रहस्य, तर्कशील और भौतिक प्राणियों पर परमेश्वर की व्यवस्था, और, सामान्य रूप से, सभी चीजों का संपूर्ण दैवीय क्रम, जैसा कि संत इसाक द सीरियन ने अपने सिमोन को लिखे पत्र में विस्तार से वर्णन किया है। "जब मन नवीनीकृत हो जाता है और हृदय पवित्र हो जाता है… तब कोई सृष्टि के आध्यात्मिक ज्ञान का अनुभव करता है; पवित्र त्रिमूर्ति के रहस्यों का चिंतन उसके भीतर प्रकाशित होता है, साथ ही हम पर दिव्य दृष्टि के रहस्य भी, जो पूजा के योग्य है; और तब वह भविष्य की आशा के सबसे पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करता है। ऐसा व्यक्ति अध्ययन या जाँच-पड़ताल नहीं करता, बल्कि मसीह की महिमा पर मनन करता है और नई दुनिया के रहस्यों पर मनन करने के आनंद में आनंदित होता है। इस प्रकार का ज्ञान पवित्र आत्मा को ग्रहण करने से प्राप्त होता है, जो हमारी आत्मा को उस दुनिया, उस चिंतन के क्रम या क्षेत्र में प्रवेश कराता है।" पवित्र आत्मा आत्मा से पर्दा हटा देता है, उसे उस युग में ले जाता है और उसके लिए जो कुछ भी अद्भुत है, उसे प्रकट कर देता है।

इस प्रकार, अब यह स्पष्ट है कि संस्कारों के माध्यम से धर्म-परिवर्तित व्यक्ति को प्राप्त होने वाली कृपा स्वयं को उसके साथ जोड़ लेती है और पहले उसे ईश्वर में जीवन की पूर्ण मधुरता का स्वाद चखने देती है, और फिर अपनी उपस्थिति को उससे छिपा लेती है, और उसे परिश्रम, पसीने, भ्रम और यहां तक कि असफलता के बीच, एक तरह से, अकेले कार्य करने के लिए छोड़ देती है; अंत में, जब यह परीक्षा की अवधि समाप्त हो जाती है, तो यह उसके भीतर खुले तौर पर, प्रभावी रूप से, शक्तिशाली रूप से और मूर्त रूप से निवास करने लगती है।

प्रश्न उठता है: इसका क्या कारण है कि ईश्वर की कृपा एक साथ अपनी पूर्णता में स्थापित नहीं की जाती, या दूसरे शब्दों में कहें तो, आत्मा का ईश्वर के साथ पूर्ण मिलन की विजय एक साथ प्रकट नहीं होती? इसका प्रतिकार करने के लिए, और ऐसा अधिक सफलतापूर्वक करने के लिए, इस कारण को जानना आवश्यक है, क्योंकि केवल इसे दूर करने से ही कृपा का पूर्ण वास प्राप्त किया जा सकता है।

ऐसा क्यों है, यह समझने के लिए, आइए हम नव-धर्म-परिवर्तित की आंतरिक संरचना की ओर मुड़ें। पाप एक व्यक्ति को अपने वश में कर लेता है और उसका ध्यान, उसकी सभी आकांक्षाएँ, और उसकी सभी शक्तियाँ अपनी ओर खींच लेता है। पाप के प्रभाव में कार्य करते हुए, एक व्यक्ति अपने पूरे अस्तित्व में इसे व्याप्त कर लेता है; उसके अस्तित्व का हर हिस्सा और उसकी सभी शक्तियाँ इसकी प्रेरणाओं के अनुसार कार्य करने की आदी हो जाती हैं। यह बाहरी रूप से थोपी गई विदेशी गतिविधि, लंबे समय तक संपर्क में रहने से हम में इतनी गहराई से रच-बस जाती है कि यह कुछ जन्मजात में बदल जाती है, जो स्वाभाविक, और इसलिए अपरिवर्तनीय और आवश्यक प्रतीत होती है। इस प्रकार, उदाहरण के लिए, अहंकार बुद्धि के साथ, स्वार्थ व्यक्ति की इच्छाओं के साथ, वासना हृदय के साथ, और आत्म-केंद्रितता—साथ ही दूसरों के प्रति एक निश्चित शत्रुता—व्यक्ति के सभी प्रयासों के साथ गुंथ जाती है। इस प्रकार, उसकी चेतना और मुक्त इच्छा में, आत्मा की शक्तियों में—बुद्धि, इच्छा और भावनाओं में—शरीर के सभी कार्यों में, उसके सभी बाहरी कार्यों में, उसके व्यवहार में, उसके संबंधों, नियमों और रीति-रिवाजों में—मनुष्य पूरी तरह से पाप से, यानी स्वार्थपरता, जुनून और आत्म-संतुष्टि से व्याप्त है। संत मकारियस इसे इस प्रकार चित्रित करते हैं: पाप, जो पतन के समय हममें प्रवेश कर गया, मानो एक मानव का संपूर्ण स्वरूप धारण कर लेता है, और इसीलिए उसे एक शारीरिक, आत्मिक और बाहरी मनुष्य कहा जाता है; और इसलिए इसने हमारे स्वभाव के संबंधित भागों को अपने ही भागों से परिधानित कर दिया है: मन को मन से, इच्छाशक्ति को इच्छाशक्ति से, और इसी तरह; और, हमारी शक्तियों की स्वाभाविक गतिविधि को दबाकर, यह अपनी ही अस्वाभाविक गतिविधि को उनकी गतिविधि के रूप में प्रस्तुत करता है, साथ ही मनुष्य को इस विश्वास में रखता है कि यह वास्तव में स्वाभाविक है। इस अंधकार में, पाप के बोझ तले, शैतान के राज्य में, हर वह व्यक्ति रहता है जो परिवर्तित नहीं हुआ है, जिसने पश्चाताप नहीं किया है, और जिसने आत्मा और सत्य में परमेश्वर की सेवा करने का संकल्प नहीं लिया है।

ईश्वर की कृपा जो आई है—पहले आत्मा के जागरण के माध्यम से, और फिर परिवर्तन की अवधि के माध्यम से—एक व्यक्ति को उनके सच्चे स्वरूप में विभाजित करती है, उन्हें इस द्वैत की जागरूकता तक, इस बात के दर्शन तक ले आती है कि क्या अस्वाभाविक है और क्या स्वाभाविक होना चाहिए, और उन्हें उस सब का परित्याग करने या शुद्ध करने के संकल्प तक ले जाती है जो अस्वाभाविक है, ताकि उनकी ईश्वर-सदृश प्रकृति पूर्ण प्रकाश में प्रकट हो सके। लेकिन यह स्पष्ट है कि ऐसा संकल्प केवल प्रक्रिया की शुरुआत है। इसके माध्यम से, एक व्यक्ति ने केवल चेतना और इच्छाशक्ति से, उन पर आई और उनके भीतर प्रकट हो रही अस्वाभाविकता के क्षेत्र से बाहर कदम रखा है, उसे त्याग दिया है, और अपेक्षित और वांछित स्वाभाविकता की ओर मुड़ गया है: फिर भी वास्तव में, अपने पूरे अस्तित्व में, वे वैसे ही बने रहते हैं जैसे वे थे, अर्थात्, पाप में डूबा हुआ, और आत्मा अपनी सभी शक्तियों के साथ, और शरीर अपने सभी कार्यों के माध्यम से, उसमें जुनून पहले की तरह ही हावी रहता है, केवल एकमात्र अंतर यह है कि पहले यह सब व्यक्ति द्वारा इच्छा और आनंद के साथ चाहा, चुना और किया जाता था, जबकि अब यह न तो चाहा जाता है, न चुना जाता है, बल्कि इससे घृणा की जाती है, इसे पैरों तले कुचला और बाहर निकाला जाता है। इस अवस्था में, एक व्यक्ति मानो खुद से बाहर निकल आता है, एक सड़े हुए शव से, और यह देखता है कि उनके शरीर का कौन सा हिस्सा वासना की बदबू बिखेर रहा है; और, अपनी इच्छा के विरुद्ध, वे कभी-कभी, अपने मन को मूर्छित करने की हद तक, खुद से निकलने वाली पूरी बदबू को सूंघते हैं।

इस प्रकार, एक व्यक्ति के भीतर सच्चा, अनुग्रह-पूर्ण जीवन पहले केवल एक बीज, एक चिंगारी है; लेकिन काँटों के बीच बोया गया एक बीज, चारों ओर राख से ढकी एक चिंगारी… यह अभी भी एक कमजोर मोमबत्ती है, जो सबसे घने कोहरे में चमक रही है। चेतना और मुक्त इच्छा के माध्यम से, एक व्यक्ति ईश्वर से जुड़ गया है, और ईश्वर ने उसे स्वीकार कर लिया है, और संत एंथनी और महान मकरियस के अनुसार, इस आत्म-जागरूक और स्वतंत्र इच्छा वाली शक्ति, या मन और आत्मा में उसके साथ एक हो गया है। और एक व्यक्ति के भीतर यही सब कुछ है जो अच्छा, उद्धार प्राप्त और ईश्वर को प्रसन्न करने वाला है। अन्य सभी भाग दासता में बने हुए हैं और अभी तक नए जीवन की मांगों के आगे समर्पण करने के लिए अनिच्छुक और असमर्थ हैं: मन नए तरीके से सोच नहीं सकता, बल्कि पहले की तरह सोचता है; इच्छाशक्ति नए तरीके से इच्छा नहीं कर सकती, बल्कि पहले की तरह इच्छा करती है; हृदय नए तरीके से महसूस नहीं कर सकता, बल्कि पहले की तरह महसूस करता है। शरीर के सभी कार्यों के संबंध में भी यही सत्य है। परिणामस्वरूप, संपूर्ण व्यक्ति अभी भी अशुद्ध है, सिवाय एक बिंदु के, जो सचेत और स्वतंत्र शक्ति—मन या आत्मा—द्वारा निर्मित होता है। ईश्वर सर्वशुद्ध है और स्वयं को इस एक भाग के

साथ एक करता है; फिर भी अन्य सभी भाग, अशुद्ध होने के कारण, उससे बाहर, उससे पराये रहते हैं, यद्यपि वह पूरे व्यक्ति को भरने के लिए तैयार है, परन्तु ऐसा नहीं करता क्योंकि वह व्यक्ति अशुद्ध है… फिर, जैसे ही वह व्यक्ति शुद्ध हो जाता है, ईश्वर तुरंत ही अपने पूर्ण निवास को प्रकट करता है। सिनाई के संत ग्रेगरी लिखते हैं: 'यदि हमारी प्रकृति आत्मा के द्वारा कलंक से संरक्षित नहीं होती और जैसा कि वह पहले थी, शुद्ध नहीं हो जाती, तो न तो इस जीवन में और न ही आने वाले जीवन में मसीह के साथ एक शरीर और आत्मा में एक होने का संभव होगा; क्योंकि पवित्र आत्मा की सर्व-व्यापी और एकता लाने वाली शक्ति सड़ते हुए भावों के फटे-पुराने कपड़ों को अनुग्रह के नए वस्त्र से जोड़कर उसे संपूर्ण बनाने की आदी नहीं है।" प्रभु हम में पूरी तरह से वास नहीं कर सकते—निवास अभी तैयार नहीं है; अनुग्रह उस पर पूरी तरह से नहीं उंडाल सकता—पात्र अभी भी दोषपूर्ण है। ऐसा करना व्यर्थ में आध्यात्मिक खजाने को बर्बाद करने और नष्ट करने के समान होगा। *प्रकाश का अंधकार के साथ क्या मेल है? मसीह और बलिआल के बीच क्या सामंजस्य है?* (2 कुरिन्थियों 6:14-15)। और प्रभु, पिता के साथ आने और एक निवास स्थान स्थापित करने का वादा करके, इसके लिए आज्ञाओं के पालन को एक अनिवार्य शर्त बनाते हैं — स्वाभाविक रूप से, सभी आज्ञाओं का; अन्यथा, इसका अर्थ है सभी बातों में धर्मी आचरण, जो किसी की शक्तियों की धार्मिकता के बिना असंभव है, और किसी की शक्तियों की धार्मिकता उनके भीतर घुस आई अधार्मिकता को अस्वीकार किए बिना, या पाप और जुनून को त्यागे बिना असंभव है। इस पर, एक अर्थ में, निम्नलिखित अंश लागू हो सकता है: *'यदि हम यह दावा करते हैं कि हम उसकी संगति में हैं और फिर भी अंधकार में चलते हैं, तो हम झूठ बोल रहे हैं और सत्य का अभ्यास नहीं कर रहे हैं; परन्तु यदि हम प्रकाश में चलते हैं, जैसे कि वह प्रकाश में है, तो हम एक दूसरे के साथ संगति रखते हैं'* (1 यूहन्ना 1:6-7)। यह अंधकार वासनाओं का अंधकार है, क्योंकि संत योहन बाद में, समान अंशों में, इसके स्थान पर 'प्रेम की कमी' और 'तीन-गुनी कामना' का उपयोग करते हैं (1 यूहन्ना 2:10-11, 16)। इसके विपरीत, प्रकाश सद्गुणों का प्रकाश है; और फिर, ऐसा इसलिए है क्योंकि बाद में, उनके लेखों में 'प्रकाश' की जगह 'सद्गुणों' का प्रयोग किया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि कोई व्यक्ति परमेश्वर के साथ सहभागिता की पूर्णता में तब ही सचमुच निवास कर सकता है, जब वासनाओं का अंधकार दूर हो गया हो और सद्गुणों का प्रकाश प्रकट हो गया हो, जब वे इस प्रकार हमारे अस्तित्व में रच-बस गए हों, हमारे गुणों को आच्छादित और व्याप्त कर दिया हो, और उनमें से वासनाओं को बाहर निकाल दिया हो और उनकी जगह ले ली हो, ताकि वे अब केवल प्रतिबिंबित ही न हों, लेकिन तब तक ईश्वर के साथ संयोग इतना छिपा हुआ, इतना अस्पष्ट होता है, कि यह अस्तित्वहीन प्रतीत हो सकता है और, कुछ हद तक, इसे अविश्वसनीय, अनिर्णायक, अधूरा, या स्वयं के साथ असंगत माना जाना चाहिए।

इस प्रकार, यह तथ्य कि प्रभु, मानव आत्मा के साथ एकता में प्रवेश करने के बाद, उसे तुरंत पूरी तरह से नहीं भरते या उसमें वास नहीं करते, यह उन पर निर्भर नहीं करता—जो सभी चीजों को भरने के लिए तैयार हैं—बल्कि हम पर निर्भर करता है, अर्थात् उन वासनाओं पर जो हमारी प्रकृति की शक्तियों के साथ गुंथी हुई हैं, जिन्हें अभी तक एक तरफ नहीं किया गया है और न ही उनके विपरीत सद्गुणों द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है। 'पापी वासनाएँ,' संत एंथनी द ग्रेट कहते हैं, 'ईश्वर को हमारे भीतर चमकने नहीं देतीं' (द लव ऑफ गुडनेस, खंड 1: गुड मॉरैलिटी एंड द होली लाइफ़ पर निर्देश, अध्याय 150)। तो, यदि तपस्वी का मुख्य लक्ष्य परमेश्वर के साथ पूर्ण सहभागिता है—एक ऐसी सहभागिता जो प्रकाशमय और आनंदमय है— और इस मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है उसके भीतर अभी भी मौजूद और सक्रिय वासनाओं की उपस्थिति, सद्गुणों को स्थापित करने में विफलता, और उसकी शक्तियों का गलत दिशा में प्रवाह—तो यह स्पष्ट है कि धर्म-परिवर्तन और पश्चाताप के तुरंत बाद, उसका सर्वोपरि कार्य वासनाओं का उन्मूलन और सद्गुणों का संचार होना चाहिए—एक शब्द में, स्वयं का सुधार… जो कुछ भी गलत है उसकी समाप्ति और जो सही है उसका अंगीकार या स्थापना; पापी वासनाओं, आदतों और दोषों का—यहाँ तक कि जो स्वाभाविक लगते हैं—और अन्य कुकर्मों का, चाहे वे कितने ही क्षम्य क्यों न लगें, त्याग; और सद्गुणों, अच्छे चरित्र, सिद्धांतों और, सामान्य रूप से, सर्वांगीण सत्यता का विकास, बिना किसी की उपेक्षा किए, हालाँकि, अपने अंतिम लक्ष्य को नज़र से ओझल कर देना, परन्तु आवेगों के विरुद्ध पूरी लगन से कार्य करना, और साथ ही मन की दृष्टि को ईश्वर की ओर केंद्रित रखना—यहीं वह मौलिक सिद्धांत है जिसका पालन करना अनिवार्य है ईश्वर-प्रसन्न जीवन की संपूर्ण व्यवस्था के निर्माण में, जिसके द्वारा रचित नियमों और किए गए प्रयासों की सीध और विकृति को मापा जाना चाहिए। इस बात का यथासंभव पूर्ण विश्वास होना चाहिए, क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि सभी सक्रिय त्रुटियाँ इसी सिद्धांत के अज्ञान से उत्पन्न होती हैं (यह इरादा संत इसाक द सिरियन द्वारा संत साइमियन द स्टाइलाइट को लिखे गए पत्र में अपनी संपूर्ण व्यापकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। संत मकारियस द ग्रेट के प्रथम और द्वितीय प्रवचन भी देखें)। इस शक्ति को समझने में विफल होकर, कुछ लोग केवल आध्यात्मिक अभ्यासों और तपस्या के बाहरी रूप पर ही अटक जाते हैं; अन्य केवल अच्छे कर्मों और उन्हें करने की आदत पर ध्यान केंद्रित करते हैं, बिना किसी उच्चतर स्तर पर पहुँचे; जबकि कुछ अन्य सीधे ध्यान की ओर बढ़ जाते हैं। यह सब आवश्यक है, लेकिन हर चीज़ की एक उचित अनुक्रमता होती है। शुरुआत में, सब कुछ बीज में ही होता है; फिर यह विशेष रूप से नहीं, बल्कि मुख्य रूप से किसी

एक या दूसरे पहलू में विकसित होता है; फिर भी, क्रमिक प्रगति अपरिहार्य है—बाहरी कर्मों से आंतरिक कर्मों तक, और दोनों से चिंतन तक, न कि इसके विपरीत।

इसे स्थापित करने के बाद, हम अब आसानी से ईश्वर को प्रसन्न करने वाले जीवन, या तपस्या के स्वरूप और संरचना के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत प्राप्त कर सकते हैं।

आइए हम थोड़ा पीछे लौटें और एक बार फिर उस व्यक्ति पर अपना ध्यान केंद्रित करें जिसने स्वयं को ईश्वर को समर्पित कर दिया है और हमेशा और हर चीज़ में उनकी इच्छा के अनुसार, उनकी महिमा के लिए कार्य करने तथा वास्तव में अच्छे कर्मों में समृद्ध होने का संकल्प लिया है। ऐसा करने का संकल्प लेने के बाद, वह इस प्रकार और कैसे कार्य कर सकता है, जबकि, जैसा कि हमने देखा है, हमारे अस्तित्व का कोई भी एक हिस्सा ऐसा करने में सक्षम नहीं है? आत्मा में पाप से घृणा की जाती है, लेकिन शरीर और आत्मा उससे सहानुभूति रखते हैं, उससे चिपके रहते हैं, क्योंकि वे वासनाओं से आवेशित हैं। अच्छाई या ईश्वर की इच्छा से आत्मा प्रेम करती है, लेकिन शरीर और आत्मा उससे सहानुभूति नहीं रखते, उससे मुंह मोड़ लेते हैं, या, यदि ऐसा नहीं है, तो उसे अभ्यास में लाने में असमर्थ हैं। इसलिए, जिसने उत्साह से, किए गए व्रत के प्रति वफादार रहने का और, पहचानी हुई आवश्यकता से, भलाई में बने रहने का संकल्प लिया है, उसे अनिवार्य रूप से, हर अच्छे काम में (और उसके कोई बुरे काम नहीं होने चाहिए), अपने शरीर और आत्मा की मांगों का विरोध करना चाहिए और, उन्हें मना करके, उन्हें विपरीत करने के लिए मजबूर करना चाहिए। और चूँकि शरीर और आत्मा उसके व्यक्तित्व से अलग नहीं होते, बल्कि उसे ही बनाते हैं, यह स्वयं में बुराई का विरोध करने और स्वयं को अच्छा करने के लिए बाध्य करने के समान ही है। **आत्म-प्रतिरोध और आत्म-बाध्यता** आत्मा में पुनर्जीवित उत्साह के दो रूप हैं, जो, यूं कहें तो, तपस्या की नींव का निर्माण करते हैं। दोनों ही मनुष्य के अपने साथ संघर्ष को दर्शाते हैं, या दूसरे शब्दों में कहें तो, यह सदाचार का एक कारनामा है।

इसलिए, अपने नए जीवन के बिल्कुल पहले क्षणों से ही, पश्चाताप करने वाला परिवर्तित व्यक्ति अनिवार्य रूप से एक पराक्रम, एक संघर्ष, एक परिश्रम पर निकल पड़ता है, और एक बोझ, एक जुआ उठाना शुरू कर देता है। और यह इतना आवश्यक है कि सभी संतों द्वारा मान्यता प्राप्त सद्गुण का एकमात्र सच्चा मार्ग इसका दर्द और कठिनाई है, जबकि इसके विपरीत आसानी एक झूठे मार्ग का संकेत है: *स्वर्ग का राज्य जोर-जबर्दस्ती से लिया जाता है, और जो लोग प्रयत्न करते हैं, वे इसे प्राप्त कर लेते हैं*(मत्ती 11:12)। जो कोई संघर्ष में संलग्न नहीं है, आत्म-अनुशासन के कार्य में नहीं है, वह भ्रम में है। प्रेरित कहते हैं: जो अनुशासित नहीं है, वह पुत्र नहीं है (इब्रानियों 12:78)।

इस प्रकार, उत्साही व्यक्ति आत्म-सुधार के उद्देश्य से, या स्वयं को अपनी मूल पवित्रता में पुनर्स्थापित करने के लिए, आत्म-अनुशासन और आत्म-संयम के कार्यों के माध्यम से प्रयास करता है, ताकि उसे परमेश्वर के साथ सहभागिता के लिए अधिक शीघ्रता से योग्य माना जा सके। यह स्पष्ट है कि वह इस कार्य में जितना अधिक उत्साही, परिश्रमी और गंभीर होता है, उतनी ही सफलतापूर्वक वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। इसका अर्थ यह है कि कोई व्यक्ति स्वयं से जितना अधिक घृणा और विरोध करता है, और उतनी ही कठोरता और दृढ़ संकल्प के साथ कार्य करता है, वह उतनी ही जल्दी पवित्रता प्राप्त करता है। इसलिए हम देखते हैं कि अपने धर्म-परिवर्तन के बाद, ईसाई पूर्णता की ऊँचाइयों पर पहुँचने वाले सभी संतों ने आत्म-संयम के सबसे कठोर कार्य किए—जैसे उपवास, जागरण, जमीन पर लोटना (*संपादक की टिप्पणी),* एकांतवास, और इसी तरह। यह एक जानबूझकर चुना गया उपाय था, जो अनुग्रह से प्रेरित था, और आध्यात्मिक परिपक्वता को शीघ्रता से प्राप्त करने के लिए अपनाया गया था, और वास्तव में, यह जल्द ही प्राप्त भी हो गया। इसके विपरीत, भोग-विलास, विराम, और आत्म-दया—भले ही वे लगातार न हों—ने हमेशा आध्यात्मिक विकास (परिपक्वता — संपादक) की प्रगति को धीमा किया है और इसे धीमा करना जारी रखा है।

तो, मामला तय हो गया है: उत्साही बनें; अधिक दृढ़ संकल्प के साथ महान कार्य करें—ऐसे कार्य जो स्वयं में सबसे दृढ़ और सबसे उपयुक्त हों—क्योंकि उनमें से भी, कुछ कामवासनाओं के दमन और सद्गुणों के संचार में अधिक योगदान करते हैं, जबकि अन्य कम। यदि यह पीड़ा की अवस्था, अस्थायी होते हुए भी, अपरिहार्य है, तो एक ही चूक से इसे लंबा खींचने का क्या फायदा? अनिश्चितता, लापरवाही और सुस्ती एक बड़ी बाधा हैं।

एक बार जब आप अपना मन बना लें, तो निष्क्रिय न रहें, बल्कि प्रयास करें; यह मानवीय दृष्टिकोण से है। फिर भी, मनुष्य को यह बात निरंतर ध्यान में रखनी चाहिए कि यद्यपि आत्म-बलिदान की उत्कटता नव-परिवर्तित के लिए उद्धारकारी है, परन्तु उसके श्रम और कर्मों की सफलता और फल—अर्थात्, वासनाओं के शुद्धिकरण और सच्चे सद्गुण के निर्माण पर उनका प्रभाव और असर—उससे नहीं आते। इन कर्मों का फल इनके अंतर्गत बोया और पकाया जाता है, परन्तु केवल इन्हीं से नहीं, न ही केवल इनके द्वारा, बल्कि अनुग्रह से। *'मैंने रोपा, अपोलो ने सिंचाई की, परन्तु परमेश्वर ने वृद्धि दी* (1 कुरिन्थियों 3:6)। जैसे आध्यात्मिक जीवन परमेश्वर के अनुग्रह से आरंभ हुआ, वैसे ही इसे उसी अनुग्रह से ही संरक्षित और परिपक्व किया

जा सकता है। प्रेरित कहते हैं, '' *जो तुम में एक अच्छा काम आरंभ कर चुका है,* वह उसे *पूरा भी कर देगा* (देखें फिलिप्पियों 1:6)। नए जीवन का पहला बीज स्वतंत्रता और अनुग्रह के संयोजन से बनता है, और इसका पकाना इन्हीं तत्वों का विकास है। जिस प्रकार, परमेश्वर की इच्छा के अनुसार, उनकी महिमा के लिए जीने का व्रत लेकर, पश्चातापी ने कहा: 'केवल आप ही मुझे बल दें और मुझे स्थिर करें'— उसी प्रकार, उसके बाद हर क्षण, उसे, मानो, प्रार्थना के साथ स्वयं को परमेश्वर के हाथों में रखना चाहिए: 'तुम ही वह करो जो तुम्हारी इच्छा को भाता है,' ताकि इस प्रकार—मन और इच्छा दोनों में, और वास्तविकता में—ईश्वर *हम में कार्य* करें, *उनकी इच्छा के अनुसार इच्छा करने और कार्य करने के लिए* (Phil. 2:13)। जिस क्षण कोई व्यक्ति स्वयं अपने भीतर और अपने आप में कुछ लाने का प्रयास करता है, वही क्षण है जब सच्चा, आध्यात्मिक, अनुग्रह-पूर्ण जीवन बुझ जाता है। इस अवस्था में, अत्यधिक परिश्रम के बावजूद, कोई सच्चा फल नहीं होता। ऐसे परिणाम हैं जिन्हें अलग से देखने पर बुरा नहीं कहा जा सकता; लेकिन घटनाओं के क्रम में वे एक बाधा और एक विचलन बन जाते हैं, और अक्सर एक बुराई भी, क्योंकि वे घमंड और आत्म-महत्व की भावना की ओर ले जाते हैं, जो शैतान के बीज हैं, जो उसने बोए हैं और जो उससे ही संबंधित हैं। साथ ही, जो परमेश्वर का नहीं है, वह हमारे भीतर परमेश्वर के काम में मिल जाता है और उसे बिगाड़ देता है, इसलिए जिस व्यक्ति को होश आ गया है, उसे ऊँचा उठाने के बजाय, अनुग्रह को पहले उस चीज़ को शुद्ध करना और छाँटना (अनावश्यक को अलग करना — संपादक) पड़ता है जो आत्म-निर्भरता से बिगड़ गई है। प्रेरित सिखाते हैं, *'या क्या तुम नहीं जानते कि मसीह तुम में है?'* *'सिवाय इसके कि तुम किसी भी तरह से अकुशल हो'* (देखें 2 कुरिन्थियों 13:5)। पश्चाताप या बपतिस्मा के संस्कार में प्रभु के साथ एक होकर, हमें स्वयं को उनके हवाले कर देना चाहिए, ताकि स्वयं सभी का प्रभु बनकर हमारे भीतर प्रवेश करने वाले, वह, *जो सर्वज्ञ हैं,* हमारे उद्धार को साकार कर सकें। प्रभु ने कहा: *'मेरे बिना तुम कुछ भी नहीं कर सकते* (यूहन्ना 15:5) — हमें विश्वास करना चाहिए और यह प्रार्थना करनी चाहिए कि वह हमारे भीतर कार्य करे, कि वह हमें हमारे जुनून से शुद्ध करे, हमारे भीतर सद्गुणों को अंकित करे, और वह सब कुछ करे जो चंगा करने वाला है। यह एक पश्चातापी का आवश्यक दृष्टिकोण है: 'हे प्रभु, *अपनी सर्वोच्च इच्छा से,* मेरा उद्धार करें, और मैं परिश्रम करूँगा और, कपट, विचलन या गलत व्याख्या के बिना, और एक स्पष्ट अंतःकरण के साथ, वह सब कुछ करूँगा जो मैं समझता हूँ और करने में सक्षम हूँ!' जो कोई भी इस प्रकार अपना हृदय स्थापित करता है, उसे प्रभु द्वारा सचमुच स्वीकार किया जाता है, और वह उनमें एक राजा के रूप में कार्य करता है। उसका शिक्षक ईश्वर है, उसका मध्यस्थ ईश्वर है, उसकी इच्छा और उसका कर्ता ईश्वर है, उसका फलदाता ईश्वर है, उसका शासक ईश्वर है। यह उसके भीतर जीवन के स्वर्गीय वृक्ष का बीज और हृदय है। लेकिन उसके लिए निश्चित रूप से एक भौतिक और आध्यात्मिक बाड़ होनी चाहिए। यह बाड़ एक मार्गदर्शक और नियमों से बनी है।

पश्चातापी व्यक्ति, ईश्वर के प्रति आत्मसमर्पण करने के बाद, तुरंत ही उनकी प्रत्यक्ष मार्गदर्शन में आ जाता है और उन्हें स्वीकार कर लिया जाता है। जो कोई भी आरंभ से ही यह सही ढंग से कर पाता है, उसे ईश्वर की कृपा द्वारा शीघ्रता से, दृढ़ता से और विश्वसनीय रूप से पूर्णता की ओर ले जाया जाता है। लेकिन वास्तव में, ऐसे बहुत कम लोग होते हैं। ये ईश्वर के चुने हुए लोग हैं, जिन्होंने अपने भीतर से आई एक अविश्वसनीय रूप से तीव्र प्रेरणा से, स्वयं को ईश्वर के हाथों में सौंप दिया, उन्हें ईश्वर ने स्वीकार किया और उनका मार्गदर्शन किया। उदाहरण के लिए, ऐसे थे मिस्र की मरियम, थीब्स के पॉल, फ्रेशिया के मार्क और अन्य। वे ईश्वर के प्रति आत्मसमर्पण के एक ही दृढ़ संकल्प वाले कार्य से उद्धार पाए। मिस्र की मरियम के मामले में, अपनी प्रवृत्तियों के साथ अपने सभी तीव्र संघर्षों के बीच, यह उनका नियम था कि वे स्वयं को ईश्वर के हाथों में सौंप दें, और उनकी प्रवृत्तियाँ, जैसा कि सर्वविदित है, इस भक्ति के कार्य से शांत हो जाती थीं। उन्होंने निस्संदेह अन्य अवसरों पर भी ऐसा ही किया: उदाहरण के लिए, वे मार्गदर्शन की तलाश में उनकी ओर मुड़ती थीं, और उसे प्राप्त करती थीं।

लेकिन ऐसा मार्ग सार्वभौमिक नहीं था, और न ही हो सकता था। यह ईश्वर के विशेष चुने हुए लोगों का था, और है। अन्य सभी अनुभवी पुरुषों के दृश्यमान मार्गदर्शन में परिपक्व होते हैं। इस विश्वास को दृढ़ता से थामे हुए कि केवल ईश्वर ही पश्चाताप की अनुग्रह प्रदान करते हैं, पश्चातापी को सफल होने के लिए, निस्संदेह खुद को एक आध्यात्मिक पिता के हवाले करना चाहिए। इसकी आवश्यकता इसलिए उत्पन्न होती है क्योंकि ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण नहीं होता—जो कि अधिकांश लोगों में एक आम कमी है। किसी को भी कई परीक्षणों के माध्यम से इसके प्रति परिपक्व होना चाहिए, और जब तक यह परिपक्वता प्राप्त नहीं हो जाती, तब तक प्रभु का मार्गदर्शन करने वाला हाथ स्पर्श नहीं कर सकता—कह सकते हैं कि संदेश को पकड़ने के लिए कोई हैंडल ही नहीं है। परिणामस्वरूप, इस पूर्वापेक्षा के बिना, जो नवसिखुआ अपनी मुक्ति के लिए काम करने निकलता है, वह अनिवार्य रूप से एक ऐसे मार्ग का अनुसरण करेगा जिसके बारे में निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि वह सही है, और यह आत्मा के लिए खतरनाक और थका देने वाला दोनों है। जब महान संत एंथनी यह सोचने लगे कि क्या उनके नियम सही थे, तो उन्होंने तुरंत पुकारा: 'हे प्रभु, मुझे मार्ग बताइए,' — और, आश्वासन मिलने पर, वह निश्चिंत हो गया। जो आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करता है, वह उस व्यक्ति की तरह है जो एक सामान्य मार्ग पर निकलता है। चूँकि यह

मार्ग हमसे अपरिचित है, इसलिए किसी का मार्गदर्शन करना आवश्यक है। यह मान लेना अहंकारपूर्ण होगा कि मैं अकेले ही इसका प्रबंधन कर सकता हूँ... न तो पद-प्रतिष्ठा और न ही शिक्षा—यहाँ कुछ भी मदद नहीं करता। यह भी उतनी ही अहंकारपूर्ण बात है कि कोई व्यक्ति, अत्यधिक आवश्यकता के बिना, एक आध्यात्मिक मार्गदर्शक खोजने का अवसर होने पर भी ऐसा न करे, यह सोचकर कि ईश्वर सीधे उनका मार्गदर्शन करेंगे। वास्तव में, पूर्णता की ओर मार्गदर्शन ईश्वर का है, जिन्होंने हमें स्वीकार किया है, लेकिन यह एक आध्यात्मिक पिता के मार्गदर्शन में होता है। पिता हमें उच्च स्तरों पर नहीं उठाते, बल्कि ईश्वर द्वारा उठाए जाने में हमारी मदद करते हैं। हालाँकि, एक नियम के रूप में, ईश्वर हमें दूसरों के माध्यम से मार्गदर्शन देते हैं, हमें निर्देश देते हैं, हमें शुद्ध करते हैं, और अपनी इच्छा प्रकट करते हैं। जो व्यक्ति अकेला रह जाता है, जिसका साथी केवल स्वयं होता है, वह अत्यंत खतरे में होता है, और यह तो अलग बात है कि वह लगभग बिना किसी फल के एक ही जगह संघर्ष और भटकन में फँस जाएगा। आध्यात्मिक संघर्षों और अभ्यासों, या उन्हें करने के उचित क्रम के बारे में न जानते हुए, वह केवल '' करता रहेगा और चीजों पर बार-बार काम करता रहेगा, ठीक वैसे ही जैसे कोई व्यक्ति बिना यह जाने कि काम कैसे करना है, किसी कार्य को शुरू कर देता है। इस कारण से कई लोगों का ठहराव में पड़ना, उदासीन हो जाना और अपने उत्साह को खो देना कोई असामान्य बात नहीं है। लेकिन उसके लिए मुख्य खतरा आंतरिक अव्यवस्था और शैतान की चापलूसी में निहित है। शुरुआती व्यक्ति के लिए, भीतर एक कोहरा होता है, मानो भीतर से उठने वाली दुर्गंध भरी वाष्पों से, जो उसके जुनून और गलत उग्रता से, और भ्रष्ट शक्तियों से उत्पन्न होती है। यह हर किसी में होता है, बस इसकी घनत्व उनके पिछले भ्रष्टाचार के आधार पर कम या ज़्यादा होती है। लेकिन ऐसी धुंध में कोई व्यक्ति वस्तुओं को स्पष्ट और सटीक रूप से कैसे पहचान सकता है? धुंध में भटक रहे व्यक्ति को तो घास का एक छोटा सा टुकड़ा भी अक्सर एक जंगल या एक गाँव जैसा दिखता है—और इसी तरह, जो व्यक्ति अपनी आध्यात्मिक यात्रा अभी शुरू कर रहा है, वह अनिवार्य रूप से वहाँ बहुत कुछ देखता है जहाँ, वास्तव में, कुछ भी नहीं है। केवल एक अनुभवी दृष्टि ही स्थिति को समझ सकती है और समझा सकती है कि वास्तव में क्या हो रहा है। इसके अलावा, वह स्वयं एक मरीज है: तो फिर, वह अपना डॉक्टर कैसे हो सकता है? वह केवल आत्म-प्रेम के कारण ही खुद को थका देगा और खुद ही घुटन से मर जाएगा: आखिरकार, डॉक्टर भी अपने ही शरीर का इलाज नहीं करते। लेकिन यहाँ सबसे बड़ा खतरा शैतान से आता है। चूँकि वह स्वयं मुख्य रूप से एक स्वच्छंद प्राणी है, वह लोगों में उन लोगों को तरजीह देता है जो अपने ही तर्क से निर्देशित होते हैं—इसी के माध्यम से वह मुख्य रूप से उन्हें भ्रमित और नष्ट करता है। और कहा जा सकता है कि यही उसे हम तक पहुँचने का, या हमें विनाश की ओर ले जाने का अवसर देता है। जो व्यक्ति अपनी ही बुद्धि और हृदय पर भरोसा नहीं करता, बल्कि अपनी भावनाओं और विचारों में जो कुछ भी है, उसे किसी और के निर्णय के अधीन कर देता है, उसे कोई हानि नहीं होगी, भले ही शैतान कुछ खतरनाक और विनाशकारी भर दे, क्योंकि दूसरे व्यक्ति का अनुभव और बुद्धि उस धोखे को समझ जाएगी और उसे चेतावनी देगी। इसीलिए कहा जाता है: जिसके पास कोई मार्गदर्शक है और जो उस पर अपना भरोसा रखता है, उसके पास शैतान नहीं आएगा, कहीं ऐसा न हो कि वह लगातार शर्मिंदा हो और उसकी सारी योजनाएँ बेनकाब हो जाएँ। इसके विपरीत, वह उन लोगों के साथ सदा उपस्थित रहता है जो केवल स्वयं पर भरोसा करते हैं या केवल अपनी ही बुद्धि पर निर्भर करते हैं। ऐसे लोगों को वह कल्पना या कल्पना-शक्ति द्वारा रचे गए विभिन्न छल-कपट का उपयोग करके, विभिन्न मार्गों पर भटका देता है, जब तक कि अंत में वह उन्हें पूरी तरह से नष्ट नहीं कर देता।

इन कारणों से, जो अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, एक नवसिखुआ को एक मार्गदर्शक रखने के लिए सहमत होना चाहिए, उसे चुनना चाहिए, और खुद को उस पर सौंप देना चाहिए। उसके मार्गदर्शन में, वह एक छत और बाड़ के नीचे की तरह सुरक्षित है—क्योंकि मार्गदर्शक ही होगा जो किसी भी चूक के लिए, ईश्वर और मनुष्यों दोनों के सामने जवाबदेह होगा। लेकिन यह आश्चर्यजनक है कि जो लोग उसे सच्चे मन से खोजते हैं, उन्हें एक सच्चा मार्गदर्शक हमेशा प्रदान किया जाता है। और मार्गदर्शक, चाहे वह कोई भी हो, जैसे ही मार्गदर्शन पाने वाला व्यक्ति अपनी पूरी आत्मा और विश्वास के साथ उसके प्रति समर्पित हो जाता है, वह हमेशा सटीक और विश्वसनीय मार्गदर्शन प्रदान करता है। प्रभु स्वयं ऐसे समर्पित अनुयायी की देखभाल करते हैं... प्रार्थना करें—और प्रभु एक मार्गदर्शक का संकेत देंगे; मार्गदर्शक के प्रति समर्पित हो जाएँ—और प्रभु उन्हें सिखाएंगे कि आपको कैसे मार्गदर्शन करना है।

एक और चीज़ जो किसी पश्चातापी आत्मा के लिए, जिसने अपना मन बना लिया है, बिल्कुल आवश्यक है, वह है नियम। नियम किसी भी गतिविधि, चाहे वह आंतरिक हो या बाहरी, के लिए एक परिभाषा या विधि, एक पैटर्न और ढांचा है। यह दिशा प्रदान करता है और संपूर्ण क्रिया-पथ को निर्धारित करता है — गतिविधि की शुरुआत, समय, स्थान, प्रक्रिया और निष्कर्ष। उदाहरण के लिए, पढ़ना अनिवार्य है—यह तपस्या के अभ्यासों में से एक है। नियमों में यह निर्दिष्ट होना चाहिए: कौन सी किताबें पढ़नी हैं, किस समय, कितनी देर तक, तैयारी कैसे करें, कैसे शुरू करें, जारी रखें और समाप्त करें, और जो पढ़ा गया

है उसके साथ क्या करना है। यही बात प्रार्थना, चिंतन और अन्य अभ्यासों पर भी लागू होती है। यह स्पष्ट है कि नियम हर गतिविधि को समाहित करते हैं, मानो उसकी बाहरी आवरण, उसका शरीर बनाते हैं। उन्हें हमारी सभी शक्तियों और हमारी गतिविधियों के सभी परिणामों पर लागू किया जाना चाहिए, ताकि कोई भी कार्य उसके लिए लागू होने वाले उचित नियम के बिना न किया जाए।

इसकी आवश्यकता स्वयंसिद्ध है। एक बिल्कुल नया और असामान्य जीवन आरंभ हो रहा है, जिसमें हमें अभी तक कोई अभ्यास नहीं हुआ है, और जिसके लिए हमारी क्षमताएँ अपरिचित हैं। किसी भी गतिविधि में स्वयं को प्रशिक्षित करने और उसमें निपुण बनने के लिए हमें यह निर्धारित करना आवश्यक है कि क्या और कैसे करना है, ठीक वैसे ही जैसे एक नए भर्ती को खड़ा होना, राइफल पकड़ना आदि सिखाया जाता है। इनके बिना न तो शक्ति विकसित होगी, न ही उचित क्रिया होगी। जिसके पास प्रार्थना के नियम नहीं हैं, वह प्रार्थना करना नहीं जान पाएगा, और जिसके पास उपवास के नियम नहीं हैं, वह उपवास करना नहीं जान पाएगा; सामान्य तौर पर, जो नियमों के बिना रहता है, वह कुछ भी ठीक से नहीं कर पाएगा, और परिणामस्वरूप, उनके श्रम और प्रयासों के बावजूद, उनका जीवन जीवन ही नहीं रहेगा, क्योंकि जीवन हमारे कार्यों से ही बनता है। इसके अलावा, नियमों के बिना जीवन स्थिर नहीं हो सकता, और न ही यह एक मापा हुआ और व्यवस्थित तरीके से विकसित हो सकता है। जिस प्रकार एक बच्चे को लपेटा जाता है ताकि वह विकृत या कुबड़ा न हो जाए, उसी प्रकार सभी आध्यात्मिक गतिविधियों को नियमों द्वारा बांधा जाना चाहिए, ताकि जीवन का संपूर्ण विकास उनके अंतर्गत एक स्थिर और सुव्यवस्थित तरीके से हो सके; किसी भी एक गतिविधि को, अज्ञानता के कारण, दूसरों से भटकने वाली दिशा में नहीं जाना चाहिए और समग्र संरचना को नुकसान नहीं पहुंचाना चाहिए, या अपनी मर्जी से गलत रास्ते पर नहीं चलना चाहिए, जैसा कि उदाहरण के लिए, उपवास कर सकता है। एक छोटे पौधे को सहारे के लिए किसी मजबूत सहारे से बांधा जाता है ताकि वह सीधा खड़ा होकर बढ़े। जो व्यक्ति नियमों के बिना, अपनी मर्जी से विकसित होता है, वह अनप्रशिक्षित और अकुशल होता है; वह कुछ चीजें करने में असमर्थ होता है, कुछ को गलत तरीके से करता है, और कुछ को सही तरीके से करता है, लेकिन गलत जगह पर या अनुचित तरीके से। अंत में, एक बड़ा खतरा है: नियमों के बिना, सहारे के बिना की तरह, कोई भी गिरने और गलतियाँ करने के लिए बाध्य है। ऐसे व्यक्ति के लिए, सभी गतिविधियाँ सूझबूझ, निर्णय और इच्छा पर निर्भर करेंगी। लेकिन क्या कोई ऐसे सिद्धांतों पर भरोसा कर सकता है? कोई भी हमेशा सूझबूझ बनाए नहीं रख सकता; निर्णय को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए और, इसके अलावा, यह हमेशा चुस्त या तेज नहीं होता है—यह सुस्त हो सकता है; और कौन लगातार अपनी इच्छाशक्ति पर काबू पा सकता है? इसलिए, जब कोई नियम नहीं होते हैं, तो चूक, गलतियाँ और असफलताएँ अपरिहार्य हैं। हालाँकि, नियमों के साथ मामला अलग है: चाहे आप चाहें या न चाहें, जो आपको करना चाहिए, करें, और यह हो जाएगा; कोई असफलता नहीं होगी, और आप आगे बढ़ेंगे। और इसके अलावा: कोई और कैसे अपनी मनमानी और हठ—जो सबसे खतरनाक प्रवृत्ति है—पर लगाम लगा सकता है?

इस प्रकार, नियमों के साथ, अपने पिता के मार्गदर्शन में, आत्म-अनुशासन और आत्म-संयम के माध्यम से प्रयास करने वाला या अथक संघर्ष में लगा उत्साही पुत्र, अपने जुनून को जड़ से उखाड़कर और सद्गुणों को अपनाकर, दिन-प्रतिदिन पूर्णता की ओर प्रगति करेगा, और पवित्रता के और करीब पहुँचेगा। लेकिन मनुष्य को यह एहसास होना चाहिए कि पूर्णता की ओर यह आरोहण उसके लिए अदृश्य है: वह माथे पर पसीना बहाकर मेहनत करता है, फिर भी प्रतीत होता है कि बिना फल के—क्योंकि अनुग्रह अपना काम गुप्त रूप से करता है। मानव दृष्टि, अर्थात् आँख, जो कुछ भी अच्छा है उसे निगल लेती है। व्यक्ति के पास केवल एक ही चीज़ बचती है: अपनी ही दुष्टता का दर्शन। परिपूर्णता का मार्ग इस बोध का मार्ग है कि मैं अंधा, दरिद्र और नग्न हूँ; और इसके साथ निरंतर जुड़ी हुई है आत्मा का टूटना, या अपनी ही अशुद्धता पर पीड़ा और दुःख, जो ईश्वर के समक्ष व्यक्त किया जाता है, या, जो कि एक ही बात है, अनवरत पश्चाताप। पश्चातापी भावनाएँ सच्ची तपस्या के विशिष्ट लक्षण हैं। जो भी उनसे मुंह मोड़ता है और उनसे बचता है, वह मार्ग से भटक गया है। पश्चाताप एक नए जीवन की शुरुआत का प्रतीक है; परिपक्व होने और बढ़ने के साथ-साथ इसका होना भी आवश्यक है। जैसे-जैसे कोई परिपक्व होता है, वह अपने भ्रष्टाचार और पापी स्वभाव को और अधिक पूरी तरह से पहचानने लगता है और पश्चाताप की व्यथित भावनाओं में और गहराई से डूब जाता है। आँसू प्रगति का एक मापदंड हैं, और अविराम आँसू शीघ्र शुद्धिकरण का संकेत हैं। यह कि वास्तव में ऐसा ही होना चाहिए, इस तथ्य से स्पष्ट है कि हम पतन की स्थिति में हैं, निर्वासन में हैं, अपने घर के आँगन से दूर हैं, और वह भी अपनी ही गलती से। जिस प्रकार एक निर्वासित अपने देश के लिए रोता है और उसकी लालसा करता है, उसी प्रकार आत्म-शुद्धि के मार्ग पर चलने वालों को भी शोक और विलाप करना चाहिए, और आँसुओं के माध्यम से शुद्धता के स्वर्ग में वापसी की तलाश करनी चाहिए। इसके अलावा, तपस्वी निरंतर एक संघर्ष में लगा रहता है—कभी अनिच्छा से, कभी प्रतिरोध से; कभी एक विचार, कभी एक इच्छा, कभी एक जुनून, कभी एक पाप—भले ही वह अनजाने में हो—जो पल-पल उसके मन की पवित्रता

को धूमिल कर देता है और उसे याद दिलाता है कि वह अपने भीतर केवल अपवित्रता, पाप और वह सब कुछ रखता है जो ईश्वर को घृणित है। वह स्वयं को एक बदबूदार लाश के रूप में देखता है, जो उसकी आँखों के सामने पड़ी है और उसकी घ्राण इंद्रिय को तब तक कष्ट देती है जब तक कि उसका मन म्लान न हो जाए। 'अपने पापों को अपने सामने रखो,' महान एंथनी कहते हैं, 'और उनके बीच से परमेश्वर को देखो' (द स्केटे पैटेरिकन)। अंततः, नवसिखुआ के बार-बार होने वाले गिरावट और चूक—अनुभवहीनता, अज्ञानता, कौशल की कमी, और कभी-कभी कमजोरी के कारण—उसके विवेक पर भारी बोझ डालती हैं, और शायद पहले से भी अधिक: लापरवाही में, पाप बड़े हो जाते हैं। वह चलना सीखने वाले और गिरने वाले बच्चे की तरह है। और इन गिरावटों को शुद्धिकरण की आवश्यकता होती है; परिणामस्वरूप, वे पश्चाताप, प्रायश्चित और आँसुओं की माँग करते हैं; इसीलिए सभी के लिए दैनिक—और वास्तव में, क्षण-प्रतिक्षण—पश्चाताप करना अनिवार्य है। *'हे ईश्वर, मुझ पापी पर दया करो!'* यह तपस्वी की अखंड प्रार्थना होनी चाहिए।

इस प्रकार, नवसिखुआ, तीव्र और उग्र उत्साह के साथ, सबसे दृढ़ प्रयासों में स्वयं को समर्पित करता है, तथापि सब कुछ ईश्वर की शक्ति और सहायता से अपेक्षित करता है, और सफलता की आशा में, परन्तु उसकी निश्चितता में नहीं, स्वयं को उस पर सौंप देता है; और इसलिए, अपने आध्यात्मिक पिता के मार्गदर्शन में, नियमों के बीच, निरंतर प्रयास में, हमेशा सबसे विनम्र दृष्टिकोण बनाए रखता है।

इस भावना और इस संरचना के साथ, तपस्वी आत्मविश्वास के साथ अपना कार्य शुरू कर सकता है—जो कि वासनाओं का उन्मूलन करने, या अस्वाभाविक वासना के मिश्रण से अपने स्वभाव को शुद्ध करने का कार्य है। उसकी आत्मा में मृत्यु जितनी दृढ़ **लगन** है**;** फिर भी, सबसे मजबूत लगन को भी इच्छित लक्ष्य की ओर निष्ठापूर्वक आगे बढ़ने के लिए एक योजना की आवश्यकता होती है। इसका स्पष्टीकरण तपस्या के प्रयास में उतरने वाले के लिए सभी नियमों को समाहित करेगा। यह उन नियमों के एक सेट के अलावा और कुछ नहीं होगा, जिनकी आवश्यकता का प्रदर्शन ऊपर किया गया है। सामान्य सिद्धांत के मार्गदर्शक को यह सबसे बढ़कर जानना चाहिए और, मार्गदर्शन प्राप्त करने वाले व्यक्ति पर उन्हें लागू करते हुए, उन्हें बदलती परिस्थितियों के अनुसार अनुकूलित भी कर सकता है।

ऐसे नियमों को निर्धारित करने के लिए, आइए हम एक बार फिर तपस्वी प्रायश्चितकर्ता की अवस्था पर ध्यान केंद्रित करें। उसके भीतर की आत्मा को संस्कारों में प्राप्त अनुग्रह की क्रिया द्वारा पुनर्जीवित और पुनरुज्जीवित किया गया है। फिर भी वह केवल एक ही चंगा हुआ हिस्सा है, जो हमारे अस्तित्व की गहराइयों में छिपा हुआ है। यह शरीर के उस हिस्से द्वारा ली गई एक उपचारात्मक दवा के समान है जो पूरी तरह से सड़ रहा हो। हालाँकि, बाहर से उसकी आत्मा अपनी सभी शक्तियों में, उसका शरीर अपने सभी कार्यों में, और स्वयं व्यक्ति अपने सभी बाहरी संबंधों में, जुनून से लबालब और उससे व्याप्त हैं—यह कोई मृत जुनून नहीं, बल्कि एक ऐसा जुनून है जो उनमें सक्रिय है, एक जीवित जुनून। इन कृत्यों का प्राथमिक उद्देश्य सभी रूपों में जुनून को समाप्त करना और प्रकृति को उसकी अंतर्निहित पवित्रता में पुनर्स्थापित करना है, ताकि जैसे-जैसे शुद्धिकरण आगे बढ़ता है, अनुग्रह, मानो, भीतर से प्रकट हो, और व्यक्ति को भाग-भाग करके, बुद्धिमानी से और उद्देश्यपूर्ण ढंग से व्याप्त करे। यहाँ से, स्थापित किए जाने वाले नियमों की संपूर्ण व्यवस्था तुरंत स्पष्ट हो जाती है, या उनके निर्माण और विवेचन के लिए मार्गदर्शन सूत्र स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार:

१) जीवन का बीज बोया गया है: इसकी पूरी लगन से रक्षा करो; अन्यथा, अपनी मेहनत लगाने का कोई उद्देश्य नहीं रहेगा, और न ही जिसके लिए उसे लगाया जाए, वह कुछ होगा। आत्मा प्राप्त करने के बाद—आत्मा को न बुझाओ; यदि तुम उत्साही हो—तो महानतम के लिए उत्साही बनो। जो दिया गया है और जो अर्जित किया गया है उसकी रक्षा करो—क्योंकि यह अर्जित खजाना ही वह मुद्रा है जिससे सच्चे खजाने खरीदे जाते हैं। यदि यह खो जाता है, तो पूरा प्रयास ही खो जाएगा। जैसे युद्ध के समय हर संभव तरीके से अपनी स्थिति बनाए रखने का पूरा ध्यान रखा जाता है, वैसे ही यहाँ भी करना है।

२) हमें अपनी प्रकृति की शक्तियों के साथ मिल-जुल गए और घुल-मिल गए जुनून को तोड़ना होगा। चूँकि यह संलयन रासायनिक यौगिकों के संयोजन के समान है, इसलिए इसे तोड़ने के तरीके रासायनिक अपघटन के तरीकों के समान ही होने चाहिए। ठीक यही है: किसी तत्व को दूसरे के संबंध में उसकी बंधी हुई अवस्था से मुक्त करने के लिए, उसे एक तीसरे, बाहरी तत्व के संपर्क में लाया जाता है, जिसके साथ उसकी पूर्व वाले की तुलना में बहुत अधिक प्रबल आत्मीयता होती है। जब यह वास्तव में होता है, तो जिस तत्व ने इसे बाँधा था, वह अलग हो जाता है, जबकि यह इस नए तत्व के साथ मिल जाता है और, उसके साथ मिलकर, एक नया रूप धारण कर लेता है। इस सिद्धांत को लागू करते हुए, हमें आत्मा और शरीर की सभी शक्तियों और हमारी सभी गतिविधियों—जो जुनून की दासता में हैं और एक बाधित, अस्वाभाविक स्थिति में रखी गई हैं—पर ऐसा कुछ लागू करना चाहिए जिसके साथ उनकी सबसे घनिष्ठ आत्मीयता और सामंजस्य हो, ताकि, उससे जुड़कर और, मानो, उसमें समाहित होकर, वे, इसी अनुपात में, जुनून के बंधनों से मुक्त हो सकें और अस्तित्व का एक नया, प्राकृतिक रूप धारण

कर सकें। यही इन शक्तियों पर थोपी गई क्रियाओं या प्रयासों को नियंत्रित करने वाला नियम होगा। इनमें संलग्न होकर, आत्मा की कृपा के उस आंतरिक खजाने को संरक्षित करते हुए, जो उनसे और हमारी प्रकृति की शक्तियों से संबंधित है, एक व्यक्ति इस आत्मा से अधिक से अधिक परिपूर्ण होगा, जिसकी अग्नि, इस प्रकार आंतरिक रूप से प्रवेश करने के लिए अधिक स्वतंत्रता प्राप्त करके, प्राकृतिकता के अधिक विस्तार का सामना करते ही अशुद्धि को और भी तीव्रता से भस्म कर देगी।

3) ये दो बिंदु तपस्वी के सकारात्मक कार्यों, या दूसरे शब्दों में, आत्म-अनुशासन के अभ्यासों की संरचना को पूरा करते हैं। यदि ऐसा होता कि अच्छाई के पक्ष में तिरस्कृत और अलग रखे गए जुनून, हमारी प्रकृति से शांत हो जाते या शांतिपूर्वक वाष्पित हो जाते; तो कोई व्यक्ति केवल इन्हीं तक सीमित रह सकता था, लेकिन चूंकि यह—आंशिक रूप से पाप की स्वाभाविक हठी प्रवृत्ति के कारण, आंशिक रूप से इसकी मजबूत पुष्टिकरण के कारण, चाहे वह इसके अपने भ्रष्ट स्रोत—शैतान—से हो या इसके समान दुनिया के तत्वों के क्षेत्र से हो—शांतिपूर्ण, समर्पणपूर्ण आज्ञाकारिता को सहन नहीं करता; भले ही यह दूर हो जाए और ظاہری तौर पर अलग हो जाए, यह फिर से उठ खड़ा होता है और अपनी पूर्व स्थिति को फिर से हासिल करने का प्रयास करता है, एक अधिकार और जबरदस्ती वाला—केवल उसी गतिविधि से संतुष्ट रहना किसी भी तरह से संभव नहीं है; बल्कि, इसके साथ-साथ, वासनाओं के खिलाफ सीधे तौर पर कार्य करना, उनका सीधा विरोध करना, उनके खिलाफ संघर्ष करना और उन पर काबू पाना आवश्यक है, न केवल अपने भीतर बल्कि उनके स्रोतों पर और उन लोगों पर भी जो उन्हें बनाए रखते हैं। इससे संबंधित नियमों का निर्माण, इसकी सामान्य रूपरेखा और इसके व्यक्तिगत भागों दोनों में, आंतरिक या आध्यात्मिक संघर्ष का एक चित्रण होगा। ये आत्म-प्रतिरोध के कार्य हैं।

इस प्रकार, सभी नियमों को निम्नलिखित एकल, मौलिक सिद्धांत में संक्षेपित किया जाना चाहिए: जीवन की आंतरिक आत्मा, उत्साह और जोश को बनाए रखें; ऐसी गतिविधियों या अभ्यासों में संलग्न हों जो एक ओर, क्षीण होती ऊर्जा को पुनर्जीवित करने में मदद करते हैं, और दूसरी ओर, वासनाओं को वश में करते हैं या दबाते हैं। परिणामस्वरूप, इस विषय से संबंधित सभी बातों को इन तीन बिंदुओं में संक्षेपित किया जाना चाहिए:

1. उत्साह की आंतरिक भावना को संरक्षित करने के नियम,
2. भलाई करने में अपनी शक्तियों का प्रयोग करने के नियम, या आत्म-अनुशासन, और
3. वासनाओं से लड़ने के नियम, या आत्म-संयम का अभ्यास।

ईश्वर के प्रति उत्साह की भावना को बनाए रखने पर

हमें आज्ञाओं का पालन करना चाहिए, और उन सभी का पालन करना चाहिए; फिर भी, इसके लिए हमारी कोई स्वाभाविक इच्छा, उत्साह या जोश नहीं है। पश्चाताप में, एक पछतावा भरे हृदय और ईश्वर की इच्छा करने के संकल्प के द्वारा, ईश्वर की कृपा से यह अग्नि हमारी आत्मा में प्रज्वलित होती है; यही अग्नि आज्ञाओं को पूरा करने की शक्ति है, और केवल यही इस पूरे भार को वहन करने में सक्षम है। यदि आज्ञाओं का पालन मोक्ष की नींव है, तो उत्साह की भावना ही हमारे लिए एकमात्र उद्धार करने वाली शक्ति है। जहाँ यह मौजूद है, वहाँ ईश्वर को प्रसन्न करने वाले कर्मों के लिए लगन, उत्साह, तत्परता और जोश होता है। जहाँ यह अनुपस्थित है, वहाँ सब कुछ रुक जाता है और समाप्त हो जाता है: आत्मा के जीवन के बिना, यह ठंडा पड़ जाता है और बुझ जाता है। वहाँ अच्छे कर्म भी किए जाएँगे—वे केवल रूप में अच्छे होंगे, परन्तु शक्ति या आत्मा में नहीं। यह वही आग है जिसे हमारे प्रभु यीशु मसीह पृथ्वी पर प्रज्वलित करने आए थे, और जिसे पवित्र आत्मा ने आग की जिह्वों के रूप में अवतरित होकर विश्वासियों के हृदयों में प्रज्वलित किया है।

इस उत्साह के आत्मा के विषय में प्रभु कहते हैं: *'मैं पृथ्वी पर आग लाने आया हूँ* (लूका 12:49)। प्रेरित हमें *आत्मा को बुझाने के लिए मना* करते हैं (1 थिस्स. 5:19) और स्वयं के विषय में गवाही देते हैं: *'मैं आगे बढ़ता हूँ* (फिलि. 3:14)। और पवित्र पिताओं में , इसे विभिन्न नामों से संदर्भित किया गया है: खोज, प्रयास, उत्साह, लगन, आत्मा की गर्माहट, जोश, और बस उत्साह।

उत्साह के महान महत्व और महत्व को देखते हुए, एक ईसाई तपस्वी का पहला कार्य इस उत्साह और लगन को बनाए रखना होना चाहिए, जो ईश्वर-प्रसन्न जीवन के लिए शक्ति का स्रोत है। इसलिए, इसे संरक्षित करने के लिए, व्यक्ति को ऐसे विशिष्ट तरीकों और प्रथाओं का उपयोग करना चाहिए जो इस उद्देश्य में योगदान करते हैं। तो, ये क्या हैं? उत्साह को उसी तरह संरक्षित किया जाना चाहिए जैसे यह उत्पन्न हुआ था, और यह ईश्वर की कृपा के अदृश्य कार्य के तहत, हृदय के एक आंतरिक परिवर्तन के माध्यम से उत्पन्न हुआ था।

उत्साह की ओर हमारी आत्मा की आंतरिक, अदृश्य उन्नति की शुरुआत अनुग्रह-पूर्ण **जागरण से** हुई और इसका समापन ईश्वर की इच्छा में दृढ़ता से चलने के दृढ़ संकल्प पर हुआ। इस आरोहण की विशेषता अत्यंत क्रमिकता थी। पापी मनुष्य, जो पूरी तरह से बाहरी जीवन जीता है और जिसे इसलिए **'बाहरी'** कहा जाता है, उस पर आए अनुग्रह से **भीतर** की ओर आकर्षित होता है; और वहाँ, मानो नींद से जाग उठा हो, वह **एक** बिल्कुल **नई दुनिया** देखता है, जो अब तक उसके लिए अज्ञात थी। यह पहली प्रेरणा है, जिसके बाद, ईश्वर की मदद से, विभिन्न **विचारों और भावनाओं** के माध्यम से, वह धीरे-धीरे पहली दुनिया से मुक्त हो जाता है, दूसरी दुनिया में प्रवेश करता है, और अपने राजा और स्वामी के सामने साष्टांग प्रणाम करता है, और उन्हें हमेशा के लिए अपना सेवक बनने की एक पवित्र प्रतिज्ञा अर्पित करता है। इस प्रकार, जो अपनी उत्कट इच्छा को अविमूढ़ रखना चाहता है, उसे चाहिए कि: (क) भीतर ही रहे, (ख) नई दुनिया को निहारें, और (ग) उन भावनाओं और विचारों में स्थिर रहे, जिनके माध्यम से उसने, मानो, सीढ़ियों के पायदान चढ़कर प्रभु के सिंहासन के चरणों तक पहुँच लिया है।

एक ईसाई तपस्वी का यही अनवरत अभ्यास, प्रयास और कार्य होना चाहिए!

भीतर बने रहना

जब कोई मुर्गी अनाज का दाना पाकर अपने चूजों को इशारा करती है, तो वे सभी, चाहे वे कहीं भी हों, उसकी ओर उड़ आते हैं और उसी जगह अपने चोंचों से इकट्ठा हो जाते हैं जहाँ उसकी चोंच होती है। ठीक उसी तरह, जब दिव्य अनुग्रह किसी व्यक्ति के हृदय की गहराई में कार्य करता है, तो उसकी आत्मा अपनी चेतना के साथ वहाँ प्रवेश करती है, और उसके साथ ही आत्मा और शरीर की सभी शक्तियाँ भी। अतः आंतरिक निवास का नियम है: अपनी चेतना को हृदय में रखें और एकाग्रता के माध्यम से आत्मा और शरीर की सभी शक्तियों को वहाँ एकत्रित करें। मूल रूप से, अंतर्निवास का अर्थ है चेतना को हृदय के भीतर सीमित रखना, जबकि आत्मा और शरीर की शक्तियों का वहाँ एकाग्रता से संग्रह करना ही आवश्यक साधन, या कृत्य, या पराक्रम है। हालाँकि, वे परस्पर एक-दूसरे को जन्म देते हैं और एक-दूसरे का पूर्वापेक्षा करते हैं, इसलिए एक के बिना दूसरा मौजूद नहीं हो सकता। जो कोई भी हृदय के भीतर सीमित है, वह संग्रहित है; और जो कोई भी संग्रहित है, वह हृदय के भीतर है।

एक को अपनी सभी शक्तियों—मन, इच्छाशक्ति और अनुभूति—को हृदय में अपनी चेतना के चारों ओर इकट्ठा करना चाहिए। हृदय में मन का संकलन **ध्यान** है; इच्छाशक्ति का संकलन **सतर्कता** है; अनुभूति का संकलन **संयम** है। ध्यान, सतर्कता और संयम तीन आंतरिक क्रियाएँ हैं जिनके द्वारा आत्म-संग्रह प्राप्त होता है और आंतरिक स्थिरता प्रभावी होती है। जिसमें ये, और वास्तव में ये सभी गुण होते हैं, वह भीतर है; जिसमें इनमें से एक भी गुण नहीं है, वह बाहरी है। इन मानसिक गतिविधियों के बाद, संबंधित शारीरिक अंगों को भी उसी स्थान की ओर निर्देशित किया जाना चाहिए: इस प्रकार, ध्यान के लिए—**आँखों को भीतर की ओर** मोड़ना; सतर्कता के लिए—पूरे शरीर की मांसपेशियों को कसना, जो **छाती** की ओर निर्देशित हों; संयम के लिए—निकिफोरस के शब्दों में, शरीर के निचले हिस्सों से उत्पन्न होकर हृदय की ओर बढ़ने वाली कुछ 'श्लेष्मा' या 'आरामदायक' गतिविधियों का दमन, और शरीर की भोग-विलास तथा विश्राम का दमन। ऐसे शारीरिक अभ्यास, जो आध्यात्मिक अभ्यासों के साथ अविभाज्य रूप से कार्य करते हैं, उन आध्यात्मिक साधनों के लिए सबसे शक्तिशाली सहायक हैं, जिनके बिना वे अस्तित्व में नहीं रह सकते।

इस प्रकार, आत्म-संग्रह के माध्यम से 'आंतरिक निवास' का संपूर्ण अभ्यास निम्नलिखित से मिलकर बनता है। नींद से जागने के ठीक पहले क्षण में, जैसे ही आपको अपने बारे में पता चलता है, हृदय की ओर, इन शारीरिक कक्षों में भीतर **उतरें**: इसके बाद, मन के ध्यान द्वारा, अपनी दृष्टि वहाँ मोड़कर, अपनी सभी मानसिक और शारीरिक शक्तियों को वहाँ बुलाएँ, खींचें और निर्देशित करें, इच्छाशक्ति के जोश, मांसपेशियों के तनाव और इंद्रियों के संयम के साथ, तथा शरीर के सुखों और विश्राम को दबाते हुए; और ऐसा तब तक **करें** जब तक आपकी चेतना वहाँ स्थापित न हो जाए, जैसे कि अपनी उचित जगह—अपनी सीट—पर हो, और उससे चिपक जाए, जैसे कोई चिपचिपी चीज़ किसी ठोस दीवार से चिपकती हो; और फिर जब तक आप अपने चेतना-स्वामी हैं, तब तक वहीं अनवरत रूप से बने रहें, बार-बार आत्म-संग्रह के उसी कार्य को दोहराते रहें, ताकि उसे नया भी किया जा सके और मजबूत भी बनाया जा सके, क्योंकि यह क्षण-क्षण पर ढीला पड़ता है और बाधित होता रहता है।

यह समझना महत्वपूर्ण है कि यह आंतरिक स्थिरता और एकाग्रता, अपने विचार को गहरा करने, या 'विचार करने' (शब्द 'मनन' से) से एक ही नहीं है, यद्यपि इसमें उससे गहरी समानता है। यह केवल मन के स्रोत में निवास करता है, अन्य शक्तियों को निष्क्रिय छोड़ देता है, और सिर में ही रहता है; जबकि पहला हृदय में, सभी हलचलों के स्रोत पर, हमारे भीतर मौजूद या घटित होने वाली किसी भी अन्य चीज़ से नीचे और गहराई में निवास करता है; या यह ऐसा है कि यह सब कुछ इसके

ऊपर, इसकी आँखों के सामने होता है, और या तो इसकी अनुमति दी जाती है या इसे मना किया जाता है। इससे यह स्वतः स्पष्ट है कि '' आंतरिक निवास, अपने सच्चे रूप में, किसी व्यक्ति की स्वयं पर सच्ची महारत की, और परिणामस्वरूप, सच्ची स्वतंत्रता और तर्कशीलता की, और इसलिए एक सच्चे आध्यात्मिक जीवन की स्थिति है। यह वैसा ही है जैसे, बाहरी दुनिया में, जो किले पर कब्ज़ा करता है उसे शहर का शासक माना जाता है। इसलिए, हर आध्यात्मिक प्रयास और सामान्य रूप से हर उपलब्धि इसी स्थान से की जानी चाहिए; अन्यथा, यह आध्यात्मिक नहीं है, तपस्या से वंचित रह जाती है, और इसे अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए। प्रभु कहते हैं, *'परमेश्वर का राज्य तुम्हारे भीतर है'* (लूका 17:21), और फिर, एक ही आध्यात्मिक अभ्यास के संबंध में, उन्होंने आज्ञा दी: *'अपने कमरे में जाओ और, अपना दरवाज़ा बंद करके...'* (मत्ती 6:6)। सभी पवित्र पिताओं की समझ के अनुसार, यह हृदय का सबसे भीतरी कक्ष है। इसी कारण से एक आध्यात्मिक व्यक्ति—जो उद्धार पा रहा है और तपस्या में प्रयासरत है—को **'भीतरी'** कहा जाता है**।**

अब यह स्पष्ट है कि उत्साह बनाए रखने का सबसे प्रभावी साधन अपने विचारों को आंतरिक रूप से केंद्रित करना है। स्पष्ट:

1) एकत्रित आत्मा को जलना चाहिए, क्योंकि यह अपनी सभी शक्तियों को एक साथ लाती है, ठीक वैसे ही जैसे बिखरी हुई किरणें जब एक बिंदु पर एकत्रित होती हैं, तो तीव्र गर्मी उत्पन्न करती हैं और चीजों को प्रज्वलित कर देती हैं। वास्तव में, गर्माहट हमेशा एकत्रीकरण से जुड़ी होती है: यहाँ आत्मा स्वयं के साथ संवाद में देखी जाती है, जैसा कि निकिफोरस कहते हैं, और आनंदित होती है।

2) एकत्रित मन एक सुव्यवस्थित सेना या एक साथ बँधे कमजोर बेंतों के बंडल की तरह मजबूत होता है। यह कमर के चारों ओर बँधी कमरपट्टा की तरह, तत्परता और कार्य करने की शक्ति का प्रतीक है। एकत्रित न हुआ मन हमेशा कमजोर होता है और या तो असफल होता है या कुछ भी हासिल नहीं करता।

3) जो केंद्रित है, वह सब कुछ अपने भीतर ही अनुभव करता है। जो केंद्र में होता है, वह सभी त्रिज्याओं के साथ बाहर की ओर देखता है, वृत्त के भीतर सब कुछ समान रूप से और, मानो, एक साथ देखता है; जबकि जो केंद्र से दूर चला गया है, वह केवल एक ही त्रिज्या की दिशा में देखता है; ठीक उसी तरह, जो भीतर केंद्रित है, वह अपनी **शक्तियों की** सभी गतिविधियों को देखता है—वह उन्हें देखता है और उन्हें नियंत्रित करने में सक्षम होता है। हालांकि, आत्मा की प्रज्वलनशीलता ही शक्ति और विवेक दोनों है, और ये दोनों मिलकर उत्साह की सच्ची आत्मा का निर्माण करते हैं। अतः, यह कहा जाना चाहिए: बस अंतर्मुखी बनें, और आप कभी भी उत्साही होना बंद नहीं करेंगे।

अंतर्निवास का यही महत्व है! अतः, यह निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य को इसे प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए, क्योंकि यह अचानक नहीं आता, बल्कि उचित समय पर और बहुत खोजबीन के बाद आता है। इसे पहले स्थान पर रखा गया है क्योंकि यह आध्यात्मिक जीवन के लिए एक पूर्वापेक्षा है। इसकी पूर्णता उन तीन मानसिक और तीन शारीरिक क्रियाओं की पूर्णता पर निर्भर करती है जो इसे उत्पन्न करती हैं, अर्थात्: आँखों को भीतर की ओर मोड़कर मन का ध्यान, शरीर के तनाव के साथ इच्छाशक्ति का उत्साह, और शरीर के सुखों और विश्राम को अस्वीकार करके हृदय की संयमशीलता। तब यह अपने पूर्ण प्रकाश में प्रकट होगा जब मन विचारों से, इच्छाओं की इच्छा से, और हृदय आसक्तियों और जुनून से शुद्ध हो जाएगा। लेकिन उस समय से पहले भी, यह भीतर का वास बना रहता है, भले ही वह अपूर्ण, अपरिपक्व और निरंतर न हो।

इससे यह स्वतः स्पष्ट है कि अविराम आंतरिक निवास के साधन क्या हैं—या, यूँ कहें कि, केवल एक ही साधन है: वह सब कुछ हटा दें जो उपरोक्त तीन गतिविधियों को उनके द्वैत संयोजन में बाधित कर सकता है, या वह सब कुछ जो आत्मा की शक्तियों को बाहरी दिशा में मोड़ सकता है, साथ ही संबंधित शारीरिक कार्यों को भी: मन और इंद्रियाँ, इच्छाशक्ति और मांसपेशियाँ, हृदय और शरीर। इंद्रियाँ बाहरी छापों से, मन विचारों से, मांसपेशियाँ अंगों के शिथिल होने से, इच्छाशक्ति इच्छाओं से, शरीर विश्राम से, और हृदय किसी चीज़ की बंधनशीलता या आसक्ति से विचलित होता है। परिणामस्वरूप, मन को विचारों से, इंद्रियों को विचलन से, इच्छाशक्ति को इच्छाओं से, मांसपेशियों को सुस्ती से, हृदय को बंधन से, और शरीर को भोग-विलास और विश्राम से मुक्त रखें। इस प्रकार, आंतरिक स्थिरता की अवस्था और, साथ ही, वह साधन: आत्मा में—विचारों, इच्छाओं और हृदय की बंधनशीलता के विरुद्ध संघर्ष; शरीर में—उसका संयम; और इनके पश्चात्—बाह्य व्यवस्था में परिवर्तन। इसी से यह स्पष्ट होता है कि सभी बाद के तपस्वी प्रयास, जो आत्म-संयम की ओर निर्देशित हैं, एक ही समय पर आंतरिक निवास का साधन भी हैं।

यही कारण है कि, पवित्र पिताओं की शिक्षाओं में (संयम का सिद्धांत, मन की रक्षा), आंतरिक जीवन को हमेशा तपस्या के संघर्ष के साथ अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ प्रस्तुत किया जाता है। हालाँकि, स्मरण और संघर्ष एक समान नहीं हैं। यह एक विशिष्ट आध्यात्मिक गतिविधि है, जो सभी में सबसे मौलिक है। यह वह स्थान है जहाँ सभी आध्यात्मिक गतिविधियाँ होती हैं—

संघर्ष, पठन, ईश्वर का चिंतन, और प्रार्थना। तपस्वी कुछ भी करे, उसे हमेशा पहले अपने भीतर प्रवेश करना चाहिए और वहीं से कार्य करना चाहिए।

दूसरी दुनिया का एक दृष्टिकोण

संत इसाक द सीरियन कहते हैं, "अपने भीतर के मंदिर में प्रवेश करने का प्रयास करो, और तुम दिव्य मंदिर को देखोगे।" और वास्तव में, जो व्यक्ति अपने भीतर प्रवेश करता है, वह एक निश्चित दूसरी दुनिया को देखता है, जो एक विशाल मंदिर की तरह है, अदृश्य और अकल्पनीय, फिर भी चेतना पर अंकित, जिसमें, हालांकि, कोई व्यक्ति स्वयं को या अपने भीतर होने वाली घटनाओं को नहीं देखता, क्योंकि यह सब मौन हो जाना चाहिए — और हो भी जाता है। कृपा के आह्वान की पहली हलचल पर, इस अंतर्मुखता के साथ ही, यह संसार व्यक्ति से स्वतंत्र रूप से प्रकट होता है, चाहे वह चाहे या न चाहे। तथापि, उसके बाद, उसकी दृष्टि, ठीक वैसे ही जैसे उसका भीतर वास, मानव की स्वतंत्रता को सौंप दी जाती है और **इसे सक्रिय रूप से साधना** चाहिए। दूसरे परिवर्तन के पुनः-नाट्य के रूप में, जैसे-जैसे मानव संकल्प और उत्साह की ओर बढ़ता है, ऐसी साधना उत्साह को संरक्षित करने और पुनः प्रज्वलित करने का दूसरा साधन है।

इसमें आध्यात्मिक जगत की संपूर्ण संरचना को अपनी चेतना और अनुभूति में धारण करना शामिल है। जैसे एक कमरे में प्रवेश करने वाला व्यक्ति तब उसे समझा हुआ कहा जाता है जब वह अपनी चेतना में उसके पूरे स्वरूप को समाहित कर लेता है, वैसे ही जो व्यक्ति अपने भीतर प्रवेश करता है, मानो किसी दहलीज को पार कर रहा हो, वह भी एक अन्य जगत को तब महसूस करेगा जब वह अपनी चेतना में उसकी संपूर्ण संरचना को अंकित कर लेगा। इसलिए, इससे संबंधित सब कुछ तब पूरा हो जाएगा जब मन आध्यात्मिक दुनिया की संरचना को समझ लेगा, जब वह इसे अपनी चेतना पर अंकित कर लेगा, या चेतना के माध्यम से स्वयं को इसके भीतर समाहित कर लेगा, और वहाँ अडिग बना रहेगा।

आध्यात्मिक, अदृश्य, मानसिक, फिर भी वास्तविक दुनिया की पूरी संरचना को संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है: ईश्वर, त्रिमूर्ति में जिसकी आराधना की जाती है, जिसने सभी चीज़ों को बनाया और सभी चीज़ों को धारण करता है, हमारे प्रभु यीशु मसीह में, पवित्र आत्मा के द्वारा, सभी चीज़ों को पुनर्स्थापित करता है, या, प्रेरित के शब्दों में, उनका अध्यक्षता करता है (देखें इफिसियों 1:10), जो पवित्र चर्च में कार्यरत है, और जो विश्वासियों को सिद्ध करने के बाद, उन्हें अगले जगत में ले जाता है; और यह सभी चीजों की पूर्ति, या युग के अंत तक जारी रहेगा, जब, पुनरुत्थान और न्याय के बाद, प्रत्येक को उनके कर्मों के अनुसार पुरस्कृत किया जाएगा: कुछ नरक में पड़ेंगे, अन्य स्वर्ग में प्रवेश करेंगे, और *परमेश्वर सर्वस्व होगा* (1 कुरिन्थियों 15:28).

यह उन सभी चीज़ों का सर्व-समावेशी ढांचा है जो वास्तव में मौजूद हैं, मौजूद रही हैं और अस्तित्व में आने वाली हैं। यहाँ, संक्षिप्त रूप में, दैवीय प्रकटीकरण की संपूर्ण सामग्री निहित है। जो कुछ भी संभव और वास्तविक है, वह सब इसमें शामिल है और यहीं मौजूद है। यह धर्म-विश्वास (Creed) की विषय-वस्तु भी है। यहाँ के मुख्य विषय हैं: ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता, उद्धार की व्यवस्था, और **अंतिम** चार बातें—मृत्यु, न्याय, स्वर्ग और नरक। यह विशेष रूप से ये विषय ही हैं जिन्हें मसीह के संत टिकॉन सभी ईसाइयों को शिशु-अवस्था से लेकर कब्र तक अविराम रूप से याद रखने की आज्ञा देते हैं।

जो ईसाई विश्वास में प्रयासरत है, उसे इस संरचना को अपने मन पर अंकित करना चाहिए, अर्थात् इसे चेतना की स्पष्ट प्रखरता में लाना चाहिए, या इसमें इतनी गहराई तक प्रवेश करना चाहिए, या इसे अपने भीतर इस प्रकार समाहित कर लेना चाहिए, कि यह, मानो, उस पर आरोपित हो जाए, — उससे इतना घुल-मिल जाना कि चेतना इसके बिना स्वयं को महसूस किए या इसके प्रभाव को अनुभव किए बिना हिल भी न सके, ठीक वैसे ही जैसे कोई व्यक्ति हवा को बिना हिलाए अपना हाथ नहीं हिला सकता, या प्रकाश के प्रभाव के बिना अपनी आँखें नहीं खोल सकता। इस उद्देश्य का सबसे अच्छा साधन इस संरचना के भीतर स्वयं को स्थापित करना है, ठीक उसी तरह जैसे कोई व्यक्ति स्वयं पर एक नज़र डालते ही अपने चारों ओर की सभी चीजों के साथ एक निश्चित मापे हुए संबंध में स्वयं को स्थापित देखता है — अर्थात्, परिणामस्वरूप स्वयं को ईश्वर की सर्वशक्तिमानता में, उनके दाहिने हाथ में स्थापित करना, यह महसूस करते हुए कि वह उन्हें थामे हुए है, उसकी दृष्टि से पारदर्शी और देखा हुआ; या, जैसा कि बेसिल द ग्रेट कहते हैं, यह स्मरण कि आप पर निगरानी रखी जा रही है; स्वयं को चर्च के सदस्य के रूप में मोक्ष की संरचना में सहभागी बनाकर स्थापित करना—क्रिसोस्टोम के अनुसार यह अनुभूति कि आप मसीह के सैनिक हैं और उस नगर में नामांकित हैं; मृत्यु के न्याय में प्रतिष्ठापन, जिसकी दृष्टि कभी स्वर्ग की ओर तो कभी नरक की ओर मुड़ती है।

यह स्थापना एक साथ नहीं दी जाती है... यह एक लक्ष्य है। इसकी खोज, इसे प्राप्त करने का प्रयास, एक मानसिक प्रयास है, जो कठिन और दीर्घकालिक है, हालांकि इसे अत्यधिक जटिल नहीं कहा जा सकता। यह पूरी तरह से इन विषयों पर

मन का एक सरल, गहरा ध्यान केंद्रित करने से बनता है। अपने आपको ईश्वर के दाहिने हाथ में थामा हुआ और ईश्वर की दृष्टि से देखा हुआ समझो, प्रभु में उद्धार पाया हुआ, मृत्यु में, न्याय के अधीन खड़ा हुआ, ताकि परिणामस्वरूप तुम या तो स्वर्ग में प्रवेश कर सको या नरक में निगल लिए जा सको। शुरुआत में, यह पूरा प्रयास केवल इस सब को जानने के लिए होता है। एक बार जब कोई इस दृष्टि को प्राप्त कर लेता है, तो वह इसके बाद अधिक आसानी से और अधिक बार इसे अनुभव करना शुरू कर देगा; और कोई जितना अधिक लगातार, गहनता से और गंभीरता से इसका अभ्यास करेगा, उतनी ही जल्दी वह अविराम दृष्टि प्राप्त कर लेगा—या, जो कि एक ही बात है, मृत्यु और न्याय के समय, नरक या स्वर्ग की दहलीज पर, आध्यात्मिक दुनिया में, परमेश्वर के सामने, चर्च में खड़ा होना।

इस प्रयास का परम लक्ष्य आध्यात्मिक क्षेत्र में वास करना है, या यूँ कहें कि स्वयं को उसमें महसूस करना है। विशेष रूप से: ईश्वर की **सर्वशक्तिमत्ता** के संबंध में, एक ऐसी जागरूकता की अवस्था में रहना, जैसे कोई बच्चा अपनी माँ की बाहों में हो; ईश्वर के **सर्वज्ञत्व** के संबंध में, जैसे कोई व्यक्ति राजा के सामने खड़ा होता है; मोक्ष की **संरचना के** संबंध में, जैसे एक सैनिक प्रशिक्षण में, या एक पुत्र अपने पिता के घर में, या एक कारीगर अपने काम में, या मित्रों के एक समूह में एक साथी के रूप में, या अपने ही परिवार के सदस्य के रूप में; **मृत्यु** और **न्याय के** संबंध में, जैसे कोई अपराधी जो किसी भी क्षण फैसले की प्रतीक्षा कर रहा हो; **स्वर्ग** और **नरक** की ओर, जैसे कोई सबसे संकरी तख्ती पर खड़ा हो, जिसके एक ओर आग से उबलता हुआ गर्त हो, और दूसरी ओर, सबसे खूबसूरत बगीचा। जिन लोगों को प्रभु अपनी इंद्रियों से यह सब जानने के योग्य समझते हैं, उनके बारे में यह कहा जाना चाहिए कि वे इस दुनिया से चले गए हैं और अपनी चेतना और हृदय से किसी अन्य में वास करते हैं, कि वे परमेश्वर के राज्य में प्रवेश कर गए हैं या उसे अपने भीतर प्राप्त कर लिया है। *परमेश्वर का राज्य आपके भीतर है।* वर्तमान संसार से यह प्रस्थान और किसी अन्य में प्रवेश को एक लक्ष्य के रूप में निर्धारित किया जाना चाहिए और यह गहन खोज का विषय है।

इसका शर्त, बेशक, आंतरिक निवास है; इसी से अविभाज्य रूप से जुड़ा है कि '' शुरू होता है, परिपक्व होता है और पूरा होता है, ताकि जब एक अविराम आंतरिक निवास स्थापित हो जाता है, तो परमेश्वर की दुनिया में खड़ा होना भी स्थापित हो जाता है; और इसके विपरीत: आंतरिक स्थिरता तभी सुरक्षित होती है जब परलोक में स्थिति मजबूत हो जाती है।

जैसा कि कहा गया है, **अभ्यास** स्वयं इस बात में निहित है कि स्वयं को इन वस्तुओं को यथासंभव अधिक बार निहारने के लिए प्रेरित किया जाए, इस इच्छा के साथ कि उन्हें अखंड रूप से देखा जाए। चेतना में जागने के बिल्कुल पहले क्षण से ही, भीतर की ओर मुड़ें और, हर संभव प्रयास के साथ, स्वयं को इस संरचना और व्यवस्था के भीतर स्थापित करें। शुरुआत में, अपनी दृष्टि को एक ही वस्तु पर केंद्रित करना और उस पर तब तक मनन करना सबसे अच्छा है जब तक कि वह आपके मन में अंकित न हो जाए, और फिर अन्य वस्तुओं पर जाएँ। एक बार जब आप उन सभी से गुजर जाते हैं, तो संपूर्ण क्रम को एक ही क्षण में समझा जा सकता है। कुछ लोग इस अभ्यास को दिनों में विभाजित करते हैं, तो कुछ दिन के हिस्सों में: उदाहरण के लिए, दोपहर के भोजन के बाद मृत्यु पर चिंतन करना, जैसा कि प्रत्येक व्यक्ति को सुविधाजनक लगे या जिसके द्वारा वे अपनी आत्मा को सबसे अधिक प्रेरित महसूस करें। केवल एक नियम का पालन करना चाहिए—इसे बार-बार न बदलें, क्योंकि यह अभ्यास को उसके सभी लाभों से वंचित कर देता है। न ही इस तथ्य को भुलाना चाहिए कि यह बदलता ध्यान केवल एक साधन है; लक्ष्य, हालांकि, उस पूरे ढांचे के भीतर एक अपरिवर्तनीय निवास है। जो कोई भी एक चीज़ पर मनन करने का आदी हो जाने के बाद, दूसरे पर नहीं जाता है, वह रास्ते पर ठहर गया है और खुद को धोखा दे रहा है, यह कल्पना करते हुए कि उसके पास वह पहले से ही है जिसके लिए उसने अभी-अभी आगे बढ़ना या प्रयास करना शुरू किया है। एक चीज़ के आदी हो जाने पर, हमेशा उससे आगे बढ़कर दूसरी चीज़ की ओर बढ़ें, ताकि न तो मेहनत से जो प्राप्त किया है वह खो जाए, और न ही दूसरी चीज़ के सबसे तेज़ी से साकार होने के लिए स्वयं को तैयार किया जा सके। यह ध्यान में रखना चाहिए कि यह केवल चिंतन नहीं है, बल्कि मन का अचल दर्शन, या उस विषय में आस्था है; यद्यपि मन का अनैच्छिक रूप से केवल चिंतन की ओर झुकाव हो सकता है, इसे प्रोत्साहित या सहन नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि जैसे ही इसे पहचाना जाए, इसे तुरंत ही दबा देना चाहिए।

इस कार्य को सबसे सफलतापूर्वक पूरा करने और उसमें पूर्णता प्राप्त करने में सहायता के लिए, कोई एक विषय या दूसरे से संबंधित पवित्र धर्मग्रंथ का कोई अंश ले सकता है, और उसे दिन भर या उससे अधिक समय तक निरंतर दोहरा सकता है; उदाहरण के लिए: *'मैं कहाँ जाऊँ?* (भजन संहिता 138:7); *'मनुष्यों के लिए एक बार मरना और उसके बाद न्याय होना निश्चित है...'* (इब्रानियों 9:27); *'तुम क्रोध के दिन के लिए क्रोध जमा कर रहे हो...'* (रोमियों 2:5); *'स्वर्ग के नीचे मनुष्यों के उद्धार के लिए और कोई नाम नहीं है* (प्रेरितों के काम 4:12), और इसी तरह; मृत्यु, क्रूस या अंतिम न्याय की एक तस्वीर रखें और उसे ऐसी जगह पर रखें कि वह जितनी बार संभव हो और अनैच्छिक रूप से आँखों के सामने आए; इन विषयों को जीवंत

रूप से दर्शाने वाली पुस्तकों और लेखों का चयन करना, और, यदि अवसर मिले, तो समान विचारधारा वाले लोगों के साथ उन्हीं विषयों पर बातचीत करना; परमेश्वर के अदृश्य और अप्रत्याशित न्याय, जीवन-घातक परिस्थितियों, दिवंगत रिश्तेदारों और उनकी स्थिति पर अधिक बार चिंतन करना, खुद को अपनी मृत्युशय्या पर कल्पना करना, और अंतिम संस्कार देखना। इन सभी का एक व्यक्ति की आत्मा पर अधिक गहरा प्रभाव पड़ता है यदि वे प्रार्थना करते समय इन विषयों पर मनन करें। ईश्वर की मदद से, इस तरह से यह छाप बहुत जल्दी बन जाती है। बस यह सुनिश्चित करना चाहिए कि प्रार्थना के दौरान मन पर अंकित विषय को बाद में त्याग न दिया जाए, बल्कि उसे यथासंभव लंबे समय तक अपने साथ रखा जाए—भले ही कुछ ही दिनों के लिए—और साथ ही लेखन, पठन, बातचीत या अन्य साधनों के माध्यम से इस छाप को बनाए रखने का प्रयास किया जाए। इन सभी सत्यों को एक साथ मन में अंकित करने के लिए, एक ही क्षण में उन सभी पर ध्यान लगाना, या कम से कम, एक के बाद एक क्रम से विचार करना लाभदायक है। हालाँकि, सबसे अच्छा यह है कि जितनी बार संभव हो, धर्म-सूत्र का पाठ किया जाए, और साथ ही इसके सभी सत्यों को एक ही क्षण में आत्मसात करने का प्रयास किया जाए। परिश्रम, एकाग्रता और प्रयास जल्द ही वांछित लक्ष्य तक पहुँचा देंगे; बस ढीला न पड़ें, रुकें नहीं, बल्कि चलते रहें और चलते रहें, भले ही फल और परिणाम अभी दिखाई न दें। बिना फल के साल बीत सकते हैं, लेकिन मसीह के राज्य के बगीचे में एक अथक परिश्रमी के लिए एक मिनट भी उसकी लगन और धैर्यपूर्ण परिश्रम के बल पर सब कुछ दे देगा।

दूसरी दुनिया का ऐसा दृष्टिकोण उत्साह की भावना को बनाए रखने और प्रज्वलित करने में सक्षम है, क्योंकि यह उत्साही आत्मा के लिए कार्य का एक सच्चा क्षेत्र प्रदान करता है। क्रिसोस्टोम कहते हैं, 'तुम इस दुनिया के नहीं हो, बल्कि दूसरी दुनिया के हो; अतः, तुम्हें, मानो, उसी दुनिया में कार्य करना चाहिए, और उस उद्देश्य के लिए तुम्हें उसे देखना चाहिए।' दूसरी ओर, जो कोई भी इसे देखता है, उसके सामने निरंतर, मानो, एक आदर्श और एक नमूना रहेगा, जो उसे भटकने या कुछ भी गलत करने की याद दिलाता रहेगा। यह तब भी फायदेमंद है जब कोई केवल मन में ही इन बातों पर विचार करता है। लेकिन यदि कोई सौभाग्यशाली है कि वह इंद्रियों से, थोड़े से भी अंश में, इन्हें अनुभव कर ले, तो वे तुरंत ही उसके भीतर एक ऐसे उत्साह को जगाती हैं जो महान तीव्रता तक पहुँचता है। सभी पवित्र फादर इन्हें 'भविष्य की काँटें (डंक, सुइयाँ — *संपादक*)' कहते हैं। और इसका जो भी अंश इंद्रियों द्वारा ग्रहण किया जाता है, वह इसे ग्रहण करने वाले को पाप में गिरने से रोकेगा। सीराख सिखाते हैं, *'इसे याद रखो, और तुम कभी पाप नहीं करोगे* (सीराख 7:39)। *'मैंने हमेशा प्रभु को अपने सामने रखा है,'* नबी दाऊद गवाही देते हैं, *'ताकि मैं डगमगाऊँ नहीं* (भजन संहिता 15:8)। महान मकारियस, जैसा कि वे स्वयं कहते हैं, गेहेन्ना की आग की याद से व्याकुल हो गए थे, जबकि अन्य मृत्यु के विचार से अविराम रोते थे। और इन मामलों के संबंध में तथा इस बात के संबंध में कि वे मानव आत्मा पर कितना बड़ा तनाव डालते हैं और उत्साह जगाते हैं, परमेश्वर के पवित्र पुरुषों की बहुत सी उक्तियाँ हैं। जो इस बात को समझने लगता है, वह स्वयं को बड़े कष्ट में पाता है, और यह सर्वविदित है कि इतने चरम हालात में तनाव कितना अधिक होता है।

उन भावनाओं में दृढ़ रहना जिन्होंने संकल्प तक पहुँचाया है

लेकिन यह सब केवल तैयारी, एक अवस्था और उत्साह को पुनः जगाने का साधन है। सबसे दृढ़ उत्साह और सबसे प्रबल भक्ति की पुनर्स्थापना उन्हीं भावनाओं और विचारों को पुनः जगाकर होती है, जिनके माध्यम से प्रारंभ में पापपूर्ण निद्रा से जागने के बाद व्यक्ति उस तक पहुँचा था।

जागने पर, आपने स्वयं को अत्यंत खतरे में, विनष्ट होते हुए देखा; आप महान संकट और पीड़ा में थे; और अब उसी खतरे और संकट की भावना को पुनः जगाएँ, क्योंकि वे वास्तव में वास्तविक हैं। भय में बने रहें और स्वयं को इस विचार से धोखा खाने या सुरक्षा की झूठी भावना में बहने न दें कि सब कुछ किसी तरह बीत गया है।

तब, सब कुछ त्यागकर, आपने सभी चीजों को ठुकराया और तुच्छ समझा, और अन्य आशीर्वादों को चुना—वे जो अप्रत्यक्ष, अदृश्य और आध्यात्मिक हैं: अब उन्हें भी त्याग दें, सब कुछ अलग कर दें और अदृश्य तथा आध्यात्मिक की ओर मुड़ें; उसे निहारें और उसे प्रेम करने का प्रयास करें।

उस समय आपने मनुष्यों को प्रसन्न करने की इच्छा का त्याग कर दिया था: अब भी, स्वयं को सभी से नीच समझें; हर तरह की अवमानना और अपमान के लिए तैयार रहें।

तब आपने हर चीज़ को बेकार समझा था: अब किसी चीज़ का मूल्य भी न लगाएँ; सभी चीज़ों को त्यागकर, निर्धन रहने के लिए तैयार रहें।

उस समय, आपने आत्म-दया को पैरों तले कुचल दिया था: अब भी, खुद को सबसे कठिन परीक्षा के लिए तैयार करें और खुद पर सख्त बने रहें।

उस समय, आपने अपने जीवन की जाँच की: अब आत्म-ज्ञान में बढ़ते रहें; सुसमाचार की आज्ञाओं में गहराई से उतरें और देखें कि आप में क्या कमी है; वहाँ बीज बोया गया है—अब इसे बढ़ने दें।

उस समय, अपने पापी जीवन को पहचानकर, आपने खुद को बचाने लायक नहीं समझा और पश्चाताप से दब गए: अब परमेश्वर की सच्चाई के सामने निहत्थे खड़े होने से न रुकें; बिना किसी बहाने या चापलूसी भरी टालमटोल के, हमेशा और हर बात में खुद को दोषी ठहराएँ; अपनी इच्छा, अपनी इच्छाओं और अपनी समझ से नफरत करें; खुद को शर्म और निराशा के डर से आहत करें; अपने आपको गर्त के ऊपर लटकता हुआ और दया के अयोग्य देखो। तब तुम आध्यात्मिक रूप से उठे और, प्रभु में विश्वास और उनकी सहायता की आशा के द्वारा, तुमने अपने जीवन के सभी दिनों में उनके लिए लगन से परिश्रम करने का संकल्प लिया, यहाँ तक कि निर्दयी आत्म-यातना की हद तक, और अब पुकारो: मैं हर तरह की निंदा और यातना का पात्र हूँ, लेकिन, हमारे उद्धार के लिए ईश्वर की असीम इच्छा के कारण—जिसके लिए उनके एकमात्र पुत्र को भी नहीं बख्शा गया—मैं अपने उद्धार से निराश नहीं हूँ। मैं नहीं जानता कि कब या कैसे, लेकिन मुझे विश्वास है कि मैं बच जाऊँगा। हे प्रभु, केवल यह अनुग्रह करें कि मैं अपने जीवन भर, आपसे मुक्ति की खोज में प्रयत्नशील रहूँ — इस आशा में कि आप अपनी दया और अपने संतों के मध्यस्थता के लिए, मुझे न छोड़ेंगे।

. जिनके हाथ में न्याय की तुला है, वे मुझे बचाएँ!"

क्या भावनाएँ हैं! इन्हें **आत्मा का जीवन** कहना पूरी तरह से उपयुक्त है। और वास्तव में, जब ये मौजूद होती हैं, तो इसका मतलब है कि आध्यात्मिक जीवन सक्रिय है; और जब एक सुस्त पड़ते आध्यात्मिक जीवन को फिर से जगाना आवश्यक हो, तो मनुष्य को इन भावनाओं में से किसी एक में प्रवेश करना चाहिए। सभी पवित्र पिताओं ने इनके बारे में बात की है—कभी इन सभी के बारे में एक साथ, तो कभी अलग-अलग। और यही सामान्य परामर्श और आज्ञा है—कि किसी ऐसे ही भाव में दृढ़ बने रहें। जो भी उनसे भटक गया है, उन्हें खोजता नहीं है, और उनकी अनुपस्थिति पर शोक नहीं करता, वह ठंडा पड़ गया है और इसलिए खतरे में है—वह ठहराव का शिकार हो गया है और हो सकता है कि हमेशा के लिए उसी में बना रहे, यानी मृत्यु में।

इसलिए, भीतर प्रवेश करने के बाद, आध्यात्मिक जगत की दृष्टि में स्वयं को स्थापित करें और आध्यात्मिक जीवन की गतिविधि को पुनः प्रज्वलित करना शुरू करें, या पहले मनन की ओर बढ़ें, ताकि आप बाद में अनुभूति में वर्णित अवस्थाओं को प्राप्त कर सकें—यह सब मन और हृदय की उद्धारकारी व्यवस्था है। इसका आवश्यक और अनिवार्य तैयारी आंतरिक रूप से मुड़ना और आध्यात्मिक जगत को अवलोकन करना है। पहला व्यक्ति को इससे परिचित कराता है, जबकि दूसरा व्यक्ति को जीवन की अग्नि प्रज्वलित करने के लिए अनुकूल एक निश्चित आध्यात्मिक वातावरण में स्थापित करता है। अतः, कहा जा सकता है, बस इन दो पूर्व-तैयारी कार्यों को करें — और बाकी सब अपने आप हो जाएगा। लोग अक्सर शिकायत करते हैं: 'मेरा दिल कठोर हो गया है…' यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यदि कोई अपने भीतर नहीं झांकता और ऐसा करने का आदी नहीं है, यदि कोई वहाँ नहीं ठहरता जहाँ उसे ठहरना चाहिए, और दिल की जगह नहीं जानता—तो उसका जीवन ठीक से कैसे चल सकता है? यह दिल को उसकी जगह से हटाने और जीवन की माँग करने जैसा है। जो कोई भी ऐसा विश्वास विकसित करता है जो आध्यात्मिक जगत और उसमें अपने स्थान को देखता है, वह बेचैनी की अवस्था में प्रवेश किए बिना नहीं रह सकता, वह करुणा से प्रेरित हुए बिना नहीं रह सकता; और एक बार यह हासिल हो जाए, तो इसके बाद अन्य भावनाओं को भी जगाना इतना कठिन नहीं है।

इसमें सहायता के लिए, जैसे आध्यात्मिक दुनिया को समझने में, धर्मग्रंथों के ऐसे अंशों का उपयोग किया जाता है जो संक्षिप्त और शक्तिशाली रूप से किसी न किसी अवस्था को व्यक्त करते हैं; उदाहरण के लिए: *'हे प्रभु, अपनी सृष्टि पर दया करें; 'मेरे घाव सड़ गए हैं...'* (भजन संहिता 37:6); *'यदि उसने अपने ही पुत्र को नहीं बख्शा...'* (रोमियों 8:32); *'जिसके द्वारा मैं परखा जाता हूँ, मुझे बचा...'* और इसी तरह — और वह इनके साथ काम करता है, अक्सर उन्हीं अंशों को तब तक दोहराता है जब तक कि वे याद न हो जाएँ।

हर भावना हर समय आसानी से नहीं आती, बल्कि कभी एक आती है और कभी दूसरी; और इन भावनाओं को जल्द से जल्द प्राप्त करने के लिए ऐसे मनोभावों का उपयोग करना चाहिए। यह सुबह में आसानी से जागृत होती है, या किसी को इस तरह से काम करना चाहिए कि वह उस समय जागृत हो जाए, ताकि कोई फिर दिन भर उसके साथ रह सके। अपना हृदय खोलें और प्रार्थना करें, और जो कुछ भी आपके हृदय में उमड़े, उस पर दृढ़ और सचेत रहें। इस भावना को शास्त्रों से पोषित करें और उसका पुनरावृत्ति करें। इस प्रकार कार्य करके, आप निरंतर इसी अवस्था में रहेंगे और जल्द ही आध्यात्मिक अभ्यास के आदी हो जाएँगे। हालाँकि, यह ध्यान में रखना चाहिए कि सही मनोदशा की प्रतीक्षा करना हमेशा फायदेमंद नहीं होता: कभी-कभी आत्मा के खाली होने पर भी कार्य करना पड़ता है, और कभी-कभी, जब एक भावना मौजूद होती है, तो उसे

दूसरों से बदलना आवश्यक होता है; क्योंकि, आत्मा की अवस्था के आधार पर, कभी-कभी एक भावना की ओर और कभी-कभी मुख्य रूप से दूसरी भावना की ओर झुकना चाहिए। यह तो स्वतः ही स्पष्ट है कि मन की सबसे सुखद अवस्था वह है जिसमें कोई व्यक्ति इन सभी भावनाओं को एक साथ अनुभव कर सकता है। आध्यात्मिक जीवन में ऐसी पूर्णता को लक्ष्य के रूप में निर्धारित किया जाना चाहिए और उसकी प्राप्ति के लिए प्रयास किया जाना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए, जब भी कोई प्रार्थना करने के लिए निकलता है, अपने विचारों को आंतरिक रूप से इकट्ठा करने और आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश करने के बाद, उसे उन्हें क्रम से, एक के बाद एक, पहले कम से कम अपने विचारों में, और, जैसा कि प्रभु अनुग्रह करते हैं, अपनी भावनाओं में भी, अनुभव करना शुरू करना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए यह अच्छा है कि एक विशेष प्रार्थना चुनी जाए जिसमें वे सभी निहित हों, उसे स्मृति में रख लिया जाए और उसे अक्सर ध्यान से फिर से पढ़ा जाए। भजन संहिता में कई प्रार्थनाएँ हैं, और हर कोई अपनी पसंद की प्रार्थना ढूंढ सकता है, क्योंकि हर किसी के लिए सिर्फ एक ही प्रार्थना नहीं है। इनका सारांश संत क्रिसोस्टोम की बारह दिन की और बारह रात की प्रार्थनाओं में दिया गया है। लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं है कि चर्च में दैवीय धर्मविधि में भाग लेने से अधिक विश्वसनीय कोई साधन नहीं है इन्हें याद करने के लिए।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ये भावनाएँ उत्साह की आग को कैसे भड़काती हैं: इनमें से एक भी उसे सुलगते रहने के लिए पर्याप्त है, क्योंकि प्रत्येक इसका एक हिस्सा है और इसमें अपनी भूमिका निभाती है। उत्साह की आत्मा सरल और एकल है, फिर भी सर्व-व्यापी है। प्रारंभिक भावना हमेशा ईश्वर का भय होनी चाहिए, और अंतिम भावना—ईश्वर की इच्छा के प्रति आत्म-नम्रता, जो अच्छी है और हमें बचाती है। पहला आध्यात्मिक जगत से प्राप्त होता है, जबकि दूसरा विश्वास में आने वाली सभी चीज़ों से उत्पन्न होता है। हालाँकि, यह ठीक-ठीक निर्धारित करना असंभव है कि कौन सी भावनाएँ कहाँ से उत्पन्न होती हैं और कैसे—क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह अपने तरीके से होता है। इसीलिए पवित्र पिता इस विषय पर विभिन्न निर्देश या स्पष्टीकरण देते हैं। अधिकतर, इन्हें बिखरी हुई शिक्षाओं के रूप में प्रस्तुत किया गया है: ईश्वर का भय मानो; सभी चीजों को कूड़ा समझो (सब कुछ कूड़ा समझो — संपादक); संसार से प्रेम मत करो; स्वयं को सभी से नीचा समझो और हर बात में स्वयं को कोसो; अपने पापों को पहचानो; और केवल ईश्वर की शरण लो। कुल मिलाकर, ये सभी शब्दों के साथ ईश्वर से भयभीत होकर ईश्वर से चिपकने के एक दर्दनाक भाव के बराबर हैं: 'हे प्रभु, जिनकी इच्छा से सभी चीजें निर्धारित होती हैं, मेरी रक्षा करो, और मैं अपनी पूरी क्षमता से प्रयास करूँगा।' बस इतना ही। जो कोई भी स्वयं को ऐसे मानसिक अवस्था में रखने का आदी हो जाता है, उसके पास एक तत्पर और सुरक्षित शरण होती है।

आध्यात्मिक जीवन में एक विशेष मानसिक अवस्था में होना बहुत महत्व रखता है। जिसके पास यह है, वह पहले से ही अपने भीतर, अपने हृदय में है, क्योंकि हमारा ध्यान हमेशा सक्रिय भाग पर होता है, और यदि वह हृदय है, तो वह हृदय के भीतर ही है। जो लोग अपने भीतर होते हैं, उनके लिए आध्यात्मिक जगत प्रकट होता है। इससे यह स्पष्ट है कि जिस प्रकार परलोक की दृष्टि के साथ अपने भीतर निवास करना आध्यात्मिक भावनाओं के जागृति के लिए एक पूर्वापेक्षा है, उसी प्रकार, इसके विपरीत, बाद वाली (भावनाएँ) पहली (स्थिति) की पूर्वापेक्षा करती हैं और अपने ही उत्पन्न होने से, उन्हें साकार करती हैं। दोनों की संयुक्त अंतःक्रिया के माध्यम से ही आध्यात्मिक जीवन को साकार किया जाता है। जो कोई भी भावना की अवस्था में है, उसकी आत्मा बँधी और स्थिर होती है, जबकि जिसके पास यह नहीं है, वह उड़ान भरता है। इसलिए, अधिक सफलतापूर्वक भीतर निवास करने के लिए, तीव्र आत्म-लीनता के माध्यम से ही सही, इंद्रियों की ओर बढ़ें। अतः, जो केवल मानसिक एकाग्रता के साथ रहना चाहता है, वह व्यर्थ में परिश्रम करता है: एक क्षण भर में—और सब कुछ बिखर जाता है। तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि विद्वान, अपनी सारी शिक्षा के बावजूद, लगातार दिवास्वप्न देख रहे होते हैं: ऐसा इसलिए है क्योंकि वे केवल अपने मन से ही काम करते हैं।

प्रत्येक इंद्रिय के नियमों और विशेषताओं को विस्तार से बताने की कोई आवश्यकता नहीं है—यह निजी शिक्षण, चिंतन और पठन का विषय होना चाहिए। पवित्र पिताओं की रचनाओं में, वे अधिकांशतः अंशों के रूप में, सूत्रों के रूप में दिए गए हैं। उन्होंने जो मुख्य बात चाही और सलाह दी, वह थी आध्यात्मिक संरचना को समझना और उसे बनाए रखने में सक्षम होना। जो लोग इसे प्राप्त करते हैं, उनके लिए केवल एक नियम शेष रहता है: अंतर्मुखी रहो, और अपने हृदय में एक गुप्त शिक्षा रखो। 'गुप्त शिक्षा' से उनका तात्पर्य आध्यात्मिक जगत की किसी वस्तु का दर्शन, या पवित्र धर्मग्रंथ के किसी शब्द, या धर्मपितामहों के किसी वचन, या प्रार्थना के माध्यम से आध्यात्मिक इंद्रिय का प्रबोधन था। इस प्रकार उन्होंने सिखाया: स्वयं को ईश्वर की स्मृति, नश्वरता की स्मृति, पापों की स्मृति और आत्म-अनुशासन में शिक्षित करो; अर्थात्, इस विषय का ध्यान रखो और इसके बारे में अंतर्ज्ञान से बिना रुके बोलो, उदाहरण के लिए: *'मैं कहाँ जाऊँ?* (भजन संहिता 138:7) या: *'एक कीड़ा, न कि मनुष्य* (भजन संहिता 21:7)। ध्यान और भावना के साथ की जाने वाली यह और इसी तरह की प्रथाएँ, गुप्त शिक्षा का गठन करती हैं।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि, संक्षेप में, उत्साह की भावना को जगाने और बनाए रखने की सभी विधियों या तकनीकों को इस प्रकार सारांशित किया जा सकता है: जागने के बाद, अपने भीतर की ओर मुड़ें, अपने हृदय में अपना स्थान लें, अपने पूरे आध्यात्मिक जीवन की समीक्षा करें, और, एक ही बात पर स्थिर होकर, उसमें अनवरत रूप से बने रहें। या, इसे और भी संक्षेप में कहें तो : अपने विचारों को एकत्रित करें और इस गुप्त शिक्षा को अपने हृदय में विकसित करें।

इस प्रकार, प्रभु की कृपा की सहायता से, उत्साह की भावना, अपने सच्चे स्वरूप में, बनी रहेगी, कभी सुलगती, कभी प्रज्वलित होती। और यही आंतरिक मार्ग है। यह जानना चाहिए कि यह मोक्ष का सबसे सीधा मार्ग है। कोई भी व्यक्ति सब कुछ त्यागकर केवल इसी अभ्यास को अपना सकता है—और सब कुछ ठीक हो जाएगा। इसके विपरीत, भले ही हम कुछ और सब कुछ कर लें, यदि इस पर ध्यान नहीं देंगे तो हमें कोई फल नहीं मिलेगा।

जो कोई भी अपने भीतर की ओर और इस आध्यात्मिक अभ्यास की ओर नहीं मुड़ता, वह केवल समय बर्बाद कर रहा है। यह सच है कि यह अभ्यास, विशेषकर शुरुआत में, अत्यंत कठिन है, लेकिन यह सरल और फलदायी है। इसलिए, एक मार्गदर्शक पुरोहित को अपने शिष्यों को यथाशीघ्र इस अभ्यास से परिचित कराना चाहिए और उसमें उन्हें मजबूत बनाना चाहिए। यह भी संभव है कि उन्हें पहले बाहरी पहलुओं से परिचित कराया जाए, लेकिन हर तरह से इस आध्यात्मिक कार्य के साथ — और यह न केवल संभव है, बल्कि आवश्यक भी है। ऐसा इसलिए है क्योंकि इस कार्य का बीज परिवर्तन की प्रक्रिया में निहित है, जिसके माध्यम से यह पूरा कार्य प्रकट होता है। बस इसे समझाने, इसके महत्व पर जोर देने और मार्गदर्शन प्रदान करने की आवश्यकता है। फिर सभी बाहरी पहलू स्वेच्छा से, तेजी से और परिपक्वता के साथ आगे बढ़ेंगे। इसके विपरीत, इसके बिना, सब कुछ सड़े हुए धागों की तरह बिखर जाएगा। इस नियम पर ध्यान दें कि किसी को अचानक नहीं, बल्कि धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाहिए; इसकी सख्त सीमाएँ होनी चाहिए, क्योंकि यह इस आंतरिक कार्य की ओर नहीं ले जाएगा, जिसमें विषय का सार निहित है, बल्कि बाहरी नियमों की ओर ले जाएगा। इसलिए, भले ही कुछ लोग बाहर से अंदर की ओर बढ़ते हैं, पर अटल नियम यही रहना चाहिए: पहले अंदर प्रवेश करना और वहाँ उत्साह की भावना को प्रज्वलित करना।

यह एक सरल मामला लगता है; लेकिन, इसे समझे बिना, कोई लंबे समय तक व्यर्थ परिश्रम कर सकता है — और उसका बहुत कम लाभ होगा। और ऐसा शारीरिक गतिविधि की स्वभाविक प्रकृति के कारण होता है। यह आसान है, और इसीलिए यह आकर्षित करती है; जबकि आंतरिक गतिविधि कठिन है, और इसीलिए यह विकर्षित करती है। लेकिन जो व्यक्ति पहले से (बाहरी गतिविधि से) जुड़ जाता है, उसे एक भौतिक वस्तु की तरह मानकर, वह धीरे-धीरे आत्मा में भी भौतिक हो जाता है; परिणामस्वरूप, वह ठंडा पड़ जाता है, अधिक कठोर हो जाता है और, परिणामस्वरूप, आंतरिक जीवन से और भी दूर चला जाता है। और इस प्रकार यह सामने आता है कि शुरुआत में कोई व्यक्ति आंतरिक जीवन को अलग रख सकता है, जैसे कि परिपक्वता के समय तक—यह सोचकर कि समय आएगा—लेकिन बाद में, पीछे मुड़कर देखने पर, पता चलता है कि समय चूक गया है और, तैयार होने के बजाय, कोई व्यक्ति इसके लिए पूरी तरह से अक्षम हो गया है। न ही किसी को बाहरी जीवन को अलग रखना चाहिए: यह आंतरिक जीवन का सहारा है, और दोनों को साथ-साथ चलना चाहिए। यह स्पष्ट है कि प्राथमिकता पहले वाले को ही दी जानी चाहिए, क्योंकि मनुष्य को आत्मा में ईश्वर की सेवा करनी चाहिए, और यह उचित है कि उसकी आत्मा और सत्य में पूजा की जाए (यह उचित है — संपादक)। दोनों को, अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार, एक-दूसरे के प्रति बिना किसी जबरदस्ती या जबरन अलगाव के, पारस्परिक समर्पण में रहना चाहिए।

व्यक्ति की आध्यात्मिक और शारीरिक शक्तियों को मजबूत करने में योगदान देने वाले अभ्यासों के लिए एक मार्गदर्शिका

इस प्रकार, आत्मा के भीतर, आत्मा में, अनुग्रह से परिपूर्ण जीवन और भी अधिक उज्ज्वल रूप से जलता और प्रज्वलित होगा। ईश्वर के प्रति समर्पित व्यक्ति के उत्साह और परिश्रम के कारण, अनुग्रह उसके भीतर निवास करेगा और उसे अपनी पवित्र करने वाली शक्ति से व्याप्त कर देगा, और ऐसा भी कि वह उसे स्वयं में समाहित कर लेगा। हालाँकि, कोई वहीं रुक नहीं सकता और न ही रुका रहना चाहिए। यह अभी भी एक बीज है, एक सहारा है। यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि जीवन का यह प्रकाश और आगे बढ़े और आत्मा तथा शरीर के स्वभाव में व्याप्त होकर, इस प्रकार उन्हें पवित्र करके और स्वयं में समाहित करके, उत्पन्न हुई अस्वाभाविक वासना को दूर करे और उन्हें उनकी शुद्ध और प्राकृतिक अवस्था में पुनर्स्थापित करे—अपने आप में सीमित न रहे, बल्कि हमारे पूरे अस्तित्व में, हमारी सभी शक्तियों में फैल जाए। लेकिन चूँकि ये शक्तियाँ, जैसा कि ऊपर कहा गया है, सभी अस्वाभाविकता से व्याप्त हैं, इसलिए अनुग्रह का आत्मा—जो सभी में सबसे शुद्ध है—जो

हृदय में आया है, उनकी अशुद्धि के कारण सीधे और तुरंत उनमें प्रवेश नहीं कर सकता। इसलिए, हमारे भीतर निवास करने वाली अनुग्रह की आत्मा और हमारी शक्तियों के बीच कुछ मध्यस्थ स्थापित किए जाने चाहिए, जिनके माध्यम से वह उनमें प्रवाहित हो सके और उन्हें ठीक कर सके, जैसे घावों पर लगाए गए मलहमों के माध्यम से। यह स्पष्ट है कि इन सभी मध्यस्थ साधनों में, एक ओर, दिव्य या स्वर्गीय उत्पत्ति का स्वरूप और गुण होने चाहिए, और दूसरी ओर, उन्हें हमारे प्राकृतिक संविधान और उद्देश्य के अनुसार हमारी शक्तियों के साथ पूर्ण सामंजस्य में होना चाहिए; अन्यथा, अनुग्रह उन से होकर नहीं गुजरेगा, और शक्तियाँ उनसे चंगाई प्राप्त नहीं करेंगी। ऐसे साधन अपनी उत्पत्ति और आंतरिक प्रकृति के मामले में इस स्वभाव के होने चाहिए। हालाँकि, अपने आप में, वे कर्म, अभ्यास या परिश्रम के अलावा और कुछ नहीं हो सकते, क्योंकि वे उन शक्तियों पर लागू होते हैं, जिनकी विशिष्ट विशेषता कार्य करना है। इसलिए अब हमें यह पता लगाने का प्रयास करना चाहिए कि ईश्वर ने स्वयं, अपने धर्मग्रंथ में या उनका अनुसरण करने वाले संतों की शिक्षाओं के माध्यम से, हमारी शक्तियों के उपचार और उनकी खोई हुई पवित्रता और पूर्णता की बहाली के लिए किन साधनों को चुना और निर्धारित किया है। ऐसी अभ्यास और क्रियाओं को खोजना कठिन नहीं है; इसके लिए बस कुछ संतों के जीवन ( ) को पढ़ना ही पर्याप्त है, और वे अपने आप प्रकट हो जाएँगी। उपवास, परिश्रम, जागरण, एकांत, संसार से विरक्ति, आत्म-नियंत्रण, पवित्र शास्त्र और पवित्र पिताओं का अध्ययन, चर्च में जाना, बार-बार पाप-स्वीकृति और संप्रभु-भोजन, व्रत और अन्य धार्मिक कार्य तथा पुण्य कर्म — ये सभी, एक साथ, और कभी-कभी कुछ विशिष्ट पहलुओं में प्रमुख रूप से, पवित्र पिताओं के लगभग हर जीवन में पाए जा सकते हैं। इन सभी के लिए सामान्य शब्द—'संन्यासी प्रयास'—कुछ हद तक डरावना लग सकता है, लेकिन व्यक्ति को इसके द्वारा व्यक्त किए गए महत्व, अर्थात् उनके उपचारात्मक स्वभाव की ओर आकर्षित होना चाहिए। आइए हम इन प्रयासों और अभ्यासों में से प्रत्येक को उसका उचित स्थान दें, यह निर्दिष्ट करते हुए कि प्रत्येक प्रयास को किस हद तक और किस उद्देश्य के लिए लागू किया जाना चाहिए। इसे अधिक सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए, हम अपने प्रत्येक कार्य और परिणामस्वरूप, अपनी संपूर्ण गतिविधि के क्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करेंगे। प्रत्येक स्वतंत्र कर्म, जो चेतना और स्वतंत्रता से उत्पन्न होता है—और इसलिए आत्मा से—आत्मा में उतरता है और, अपनी शक्तियों—तर्क, इच्छा और भावना—के माध्यम से, क्रियान्वयन के लिए तैयार किया जाता है, और फिर शरीर की शक्तियों द्वारा एक विशिष्ट समय, स्थान और अन्य बाहरी परिस्थितियों में किया जाता है। कोई बाहरी कर्म आम तौर पर बिना किसी निशान के चला जाता है जब उसे दोहराया नहीं जाता, दूसरों द्वारा देखा नहीं जाता या अपनाया नहीं जाता। हालाँकि, जब ऐसा होता है, तो यह एक स्थिर नियम, एक चरित्र लक्षण, एक रीति-रिवाज बन जाता है, मानो यह एक कानून हो। इन रीति-रिवाजों का कुल योग उस समाज या लोगों के समूह की भावना (spirit) का निर्माण करता है जिसमें ऐसे रीति-रिवाज स्थापित होते हैं। यदि उनकी उत्पत्ति अच्छी है, तो रीति-रिवाज अच्छे हैं, और समाज अच्छा है। यदि उनकी उत्पत्ति बुरी है, तो रीति-रिवाज बुरे हैं, और समाज बुरा है। लेकिन दूसरे मामले में, जो कोई भी इन रीति-रिवाजों और शिष्टाचारों के चक्र में प्रवेश कर लेता है, वह अनिवार्य रूप से उनका दास हो जाता है और, दासता की मेहनत के बावजूद, बिना सवाल के उनकी सेवा करता है। जो भी संसार के तरीकों के अनुसार जीता है, वह संसार की प्रथाओं और भावना के अधीन हो जाता है। लेकिन जो लोग एक नए दृष्टिकोण के साथ इस दुनिया में प्रवेश करते हैं, वे भी अनिवार्य रूप से इसकी भावना से ओत-प्रोत हो जाते हैं और जल्द ही बाकी लोगों की तरह हो जाते हैं, क्योंकि ये रीति-रिवाज ही वे तत्व हैं जो हमारे भीतर एक ऐसी भावना को बढ़ावा देते हैं जो पापी, भावुक और अधर्मी है, क्योंकि वे स्वयं क्रियाशील भावों के अलावा और कुछ नहीं हैं।

किसी व्यक्ति को शुद्ध और पुनर्स्थापित करने के उद्देश्य से, दिव्य अनुग्रह सर्वप्रथम उस स्रोत को प्रदान करता है जिससे उनकी सभी गतिविधियाँ प्रवाहित होती हैं; अर्थात्, यह उनके चेतना और स्वतंत्रता को ईश्वर की ओर मोड़ देता है, ताकि उपचार उसी स्रोत से आरंभ हो सके, और अपनी संपूर्ण शक्ति से, उनकी अपनी गतिविधियों के माध्यम से—चाहे वे उन्हें सौंपी गई हों या उनमें उत्पन्न हुई हों—उस स्रोत से जो पहले से ही चंगा और पवित्र हो चुका है। हमने पहले ही देखा है कि यह स्रोत कैसे चंगा और संरक्षित होता है। अब यह निर्धारित करना शेष है कि उससे कौन से कार्य, जो उपरोक्त अर्थ में उपचार की शक्ति से युक्त हैं, प्रवाहित होने चाहिए। हालाँकि, यह इन कार्यों के मनमाने निर्धारण की अनुमति नहीं देता, बल्कि केवल यह कि उन्हें एक स्वतंत्र और बिना जबरदस्ती के मन और इच्छा से किया जाना चाहिए; क्योंकि अन्यथा, वे अपेक्षित फल नहीं देंगे।

इस प्रकार, अपने संपूर्ण आंतरिक संविधान में उत्साह की खेती और संरक्षण के बाद, मनुष्य को परमेश्वर के वचन और पवित्र पिताओं की रचनाओं में निर्धारित प्रथाओं को निर्धारित करना चाहिए: पहला, आत्मा की शक्तियों के लिए, जो आत्मा के मंदिर में आरंभ होने वाली सभी चीजों की तत्काल प्राप्तकर्ता हैं; दूसरा, शरीर की शक्तियों और कार्यों के लिए, जो आत्मा के भीतर परिपक्व होने वाली चीजों की प्राप्तकर्ता हैं; और अंत में, बाहरी आचरण के लिए, जो सभी आंतरिक गतिविधियों का सामान्य निकास, या उनका क्षेत्र और साथ ही, उनका निर्माण है। इन सभी अभ्यासों को इस तरह निर्देशित किया जाना चाहिए कि वे उत्साह की भावना को बुझाएं नहीं, बल्कि उसकी संपूर्ण आंतरिक संरचना के साथ और भी अधिक प्रज्वलित करें।

आत्मा में हमें तीन शक्तियाँ मिलती हैं: मन, इच्छाशक्ति और हृदय; या, जैसा कि पवित्र पिताओं ने कहा है, तर्कशील, कामना करने वाली और क्रोध करने वाली शक्तियाँ। इनमें से प्रत्येक के लिए, पवित्र तपस्वियों ने उनके अनुरूप विशिष्ट उपचारात्मक अभ्यास लागू किए, जो अनुग्रह के लिए ग्रहणशील और अनुकूल दोनों थे। इनका सिद्धांत के आधार पर आविष्कार करने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि इन्हें आजमाए और परखे गए अभ्यासों में से बस इसलिए चुनना है कि यह निर्धारित किया जा सके कि कौन से अभ्यास किस क्षमता से मेल खाते हैं। इस प्रकार:

बुद्धि के लिए:
क) ईश्वर के वचन, पवित्र पिताओं की रचनाओं और ईश्वर के संतों के जीवन को पढ़ना और सुनना।
ख) संक्षिप्त सारांश (धर्मशास्त्र) में सभी ईश्वर-प्रदत्त सत्यों का अध्ययन और उन्हें याद करना।
ग) सबसे अनुभवी और वरिष्ठ व्यक्तियों से परामर्श लेना।
d) पारस्परिक संवाद और मैत्रीपूर्ण परामर्श।

इच्छा के लिए:
a) वर्तमान में निर्धारित सभी तपस्या संबंधी नियमों का सख्त पालन।
b) संपूर्ण चर्च संविधान के प्रति समर्पण।
c) नागरिक, पेशेवर और पारिवारिक व्यवस्था के प्रति समर्पण, क्योंकि इसी के माध्यम से
ईश्वर की इच्छा मध्यस्थता द्वारा प्रकट होती है।
d) अपने जीवन के मार्ग के संबंध में ईश्वर की इच्छा के प्रति समर्पण।
e) अच्छे कर्म करते समय अपनी अंतरात्मा की सुनना।
f) उन प्रतिज्ञाओं की पूर्ति के लिए उत्साही आत्मा के प्रति आज्ञाकारिता।

दिल के संबंध में:
a) पवित्र चर्च सेवाओं में भाग लेना।
(b) चर्च द्वारा निर्धारित प्रार्थना — घर पर दैनिक अभ्यास।
c) पवित्र क्रॉस, आइकन और अन्य पवित्र वस्तुओं तथा लेखों का उपयोग।
d) चर्च द्वारा स्थापित और हमेशा निर्धारित पवित्र रीति-रिवाजों का पालन।

शरीर स्वभावतः शुद्ध है। अतः, हमें इसकी आवश्यकताओं से केवल वह हटाना है जो अस्वाभाविक है और उसे उस चीज़ से मजबूत करना है जो इसके लिए स्वाभाविक है; या, दूसरे शब्दों में, इसे इसकी प्राकृतिक अवस्था में वापस लाना है। इसके अलावा, यह आत्मा का सहायक, उसका स्थायी मित्र होना चाहिए; और इसलिए, प्रकृति की सीमाओं में लौटने के अतिरिक्त, इसकी आवश्यकताओं की पूर्ति को भी आत्मा और भावना के लाभ की ओर निर्देशित किया जाना चाहिए। इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, प्रत्येक शारीरिक क्रिया के लिए एक विशिष्ट अभ्यास निर्धारित किया गया है, जो हमारे शारीरिक स्वभाव के उपचार और आध्यात्मिक लाभ, दोनों का साधन है।

इसमें निम्नलिखित नियम निर्धारित किए गए हैं:
(क) इंद्रियों के संबंध में: सामान्य रूप से इंद्रियों का संरक्षण, और विशेष रूप से सुनने और देखने की शक्ति का (तंत्रिका कार्य);
ख) मुख और जीभ का संरक्षण (मांसपेशीय);
ग) श्रम और शारीरिक श्रम के माध्यम से शारीरिक ताकत (मांसपेशीय);
d) संयम और उपवास (उदर);
e) नींद और जागृति के बीच संतुलन (आंतरिक);
f) शारीरिक स्वच्छता (आंतिक)।

सामान्य तौर पर, शरीर के संबंध में: **परिश्रम** (मांसपेशीय), **चिड़चिड़ापन** (तंत्रिका संबंधी) और **थकान** (उदर)।

यह तो स्वतः ही स्पष्ट है कि, ऐसे प्रयासों के माध्यम से, शरीर धीरे-धीरे अपनी प्राकृतिक अवस्था में लौट आएगा, जीवंत और मजबूत (मांसपेशीय), स्पष्ट और शुद्ध (तंत्रिका संबंधी), हल्का और मुक्त हो जाएगा, और हमारी आत्मा के लिए सबसे

उपयुक्त साधन तथा पवित्र आत्मा का एक योग्य मंदिर साबित होगा।

हमारा बाहरी स्वरूप हमारे कर्मों का माध्यम, उनका क्षेत्र, और साथ ही कारण और आधार—उनकी शुरुआत और उनका अंत है। यदि यह हम पर पारस्परिक प्रभाव न डालता, तो इसे अकेला छोड़ दिया जा सकता था। लेकिन वास्तव में, यह एक शक्तिशाली प्रभाव डालता है और यहाँ तक कि हम पर शासन भी करता है। इसलिए, हमारी आंतरिक शक्तियों या चरित्र की प्रकृति के एक अभिव्यक्ति के रूप में, जब ये बदलते हैं, तो इसे भी अनिवार्य रूप से बदलना ही होगा। इसकी गतिविधि के क्षेत्र में परिवार, व्यवसाय और सामाजिक संबंध शामिल हैं। इस प्रकार, यहीं पर सभी बाध्यकारी नियमों को लागू किया जाना चाहिए:

क) बुरे आदी छोड़ना, बिना किसी अपवाद के;

ख) इसके बाद, अपने संबंधों और रिश्तों को शुद्ध करना, जो लाभकारी है उसे बनाए रखना और जो हानिकारक है उसे समाप्त करना, और लोगों के साथ अपने व्यवहार या लेन-देन के तरीके को निर्धारित करना;

ग) यदि कोई हों, तो नए क्रम के अनुसार कर्तव्यों का पुनर्वितरण या पुनर्स्थापना करना;

(d) पारिवारिक मामलों के लिए एक व्यवस्था स्थापित करना, या, अधिक सामान्य रूप से, घर को आध्यात्मिक जीवन के अनुकूल बनाना।

यह इस तरह से करना आवश्यक है कि बाहरी हर चीज़—जिसमें वस्तुएँ, लोग और मामले शामिल हैं—एक तरह का आध्यात्मिक वातावरण बनाए, जो नष्ट करने के बजाय पोषण करे और विकसित करे।

ये ही अभ्यास और आध्यात्मिक प्रयास हैं! इनका अभ्यास अनवरत होना चाहिए; ये हमारे साथ ऐसे होने चाहिए, जैसे हमारे शरीर के विभिन्न हिस्सों पर पट्टी पर चस्पां किए गए प्लास्टर। लेकिन उनके लिए सबसे उपयुक्त स्थान, जहाँ उन्हें अपने सबसे शुद्ध, सबसे परिपूर्ण और सबसे कठोर रूप में प्रकट होना चाहिए, वह **उपवास** है — पवित्र चर्च की सबसे उद्धारकारी संस्था, जिसका उद्देश्य संस्कारों के माध्यम से हमारे शुद्धिकरण और पवित्रता है। यह शब्द इंगित करता है:

1) संस्कार प्राप्त करने की तैयारी के रूप में, सभी आध्यात्मिक अभ्यासों का उनके सबसे पूर्ण रूप में प्रदर्शन;

2) पाप-स्वीकृति और मसीह के शरीर और रक्त की पवित्र कमेडियन का वास्तविक ग्रहण।

ये ऐसे अभ्यास हैं जो संपूर्ण व्यक्ति को समाहित करते हैं, जो आत्मा, प्राण और शरीर को पोषण देते हैं। हम इन्हें **आध्यात्मिक जीवन को पोषित करने और मजबूत करने के अनुग्रह-पूर्ण साधन** कहेंगे**।**

इन सभी आध्यात्मिक प्रयासों और प्रथाओं के संबंध में कुछ **सामान्य टिप्पणियाँ** यहाँ दी गई हैं। प्रत्येक तपस्वी को ऐसे सभी प्रयासों और प्रथाओं को एक ऐसे रूप में अपनाना चाहिए जो विशेष रूप से उनके अनुकूल हो, क्योंकि अपने आप में , वे नियमों के लिए, एक तरह से, केवल कच्चा माल और ढाँचा मात्र हैं। नियम उनसे बनाए जाते हैं — समय, स्थान, व्यक्ति, परिस्थितियों आदि पर उन्हें लागू करके। यह वही है जो हर तपस्वी को करना चाहिए, या तो अपने दम पर या अपने गुरु और आध्यात्मिक पिता के मार्गदर्शन में—प्रत्येक अभ्यास पर इसे लागू करते हुए, और फिर, उन सभी के समग्र से, **आध्यात्मिक अभ्यासों**, या **तपस्वी कर्मों का** एक एकल सर्व-समावेशी **क्रम** बनाते हुए, जिसमें हर चीज़ के लिए, चाहे वह बड़ी हो या छोटी, एक स्थान और समय होता है। यह क्रम, नियमों की ही तरह, एक लिखित मार्गदर्शिका में पर्याप्त रूप से निर्धारित नहीं किया जा सकता, सिवाय शायद सामान्य शब्दों में। यहाँ, कोई केवल प्रत्येक अभ्यास का वर्णन कर सकता है और उसके उद्देश्य तथा उसके अनुप्रयोग के सामान्य सिद्धांतों को प्रदर्शित कर सकता है।

यह देखना कठिन नहीं है कि ऐसे सभी करतब और अभ्यास आंतरिक गतिविधि से कैसे मेल खाते हैं। बाहरी आचरण के नियम और शरीर की संरचना ही आंतरिक स्थिरता और आध्यात्मिक चेतना के संरक्षण के लिए आवश्यक हैं, जबकि धार्मिक अभ्यास आध्यात्मिक जीवंतता के लिए अनिवार्य हैं। इसलिए, आध्यात्मिक जीवन में, वे आंतरिक जीवन की ही तरह आवश्यक हैं। पवित्र पिता इन्हें शारीरिक या भौतिक गतिविधि, या 'सक्रिय जीवन' कहते हैं, जबकि आंतरिक जीवन को 'विचारशील जीवन', साथ ही आध्यात्मिक और बौद्धिक गतिविधि कहा जाता है। यह मान लेना एक भ्रांति है कि आंतरिक जीवन अपने आप खड़ा रह सकता है, भले ही बाहरी जीवन उससे मेल न खाता हो; ठीक उसी तरह जैसे किसी के लिए केवल बाहरी जीवन पर ध्यान केंद्रित करना, जैसा हमने वर्णन किया है, आंतरिक जीवन को भूलना या उसकी उपेक्षा करना गलत है। दोनों को साथ-साथ चलना चाहिए, ताकि पूरे मामले को संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सके: आंतरिक की ओर मुड़कर और आध्यात्मिक चेतना में प्रवेश करके, जीवन-शक्ति या आध्यात्मिक व्यवस्था को जगाएँ, और फिर आपने जो तपस्वी अनुशासन स्थापित किया है, उसमें आगे बढ़ें।

साथ ही, यह दृढ़ता से ध्यान में रखना चाहिए कि अभ्यास, तपस्या और आचरण, यद्यपि आध्यात्मिक जीवन को संरक्षित करने और विकसित करने तथा अपनी प्रकृति को पुनर्स्थापित करने के लिए आवश्यक और पूरी तरह से उपयुक्त हैं, फिर भी

उनमें अपने आप ऐसा करने की शक्ति नहीं है—आत्मा का सृजन और स्वभाव का शुद्धिकरण वे नहीं करते हैं, बल्कि ईश्वर की कृपा करती है, जो उनके माध्यम से होकर, मानो, प्रवेश पाती है, हमारी शक्तियों का एक माध्यम मात्र। अतः, उनमें पूरी लगन, उत्साह और दृढ़ता के साथ संलग्न रहो; परन्तु अपनी प्रगति का भार प्रभु पर छोड़ दो, ताकि उनके आवरण में वह स्वयं हमें अपनी इच्छा और ज्ञान के अनुसार गढ़ सके। जब आप कोई आध्यात्मिक प्रयास करते हैं, तो अपना ध्यान और हृदय उस पर केंद्रित न करें, बल्कि उसे एक बाहरी चीज़ की तरह पार कर जाएँ—एक तैयार पात्र की तरह स्वयं को अनुग्रह के लिए खोलें, और स्वयं को पूरी तरह से ईश्वर को समर्पित कर दें। सिनाई के संत ग्रेगरी कहते हैं, 'जो कोई अनुग्रह पाता है, वह उसे विश्वास और लगन से पाता है, न कि केवल लगन से। हमारा काम चाहे कितना भी लगन से किया गया हो, यदि हम उसे करते हुए स्वयं को ईश्वर को समर्पित नहीं करते हैं, तो हम अनुग्रह को आकर्षित नहीं करते हैं; यह हमारे भीतर सच्ची आत्मा का निर्माण नहीं करता है, बल्कि चापलूसी की भावना पैदा करता है, जो एक फरीसी को जन्म देती है।' कृपा ही उनकी आत्मा है। वे तब तक सच्चे हैं जब तक कि वे आत्म-अपमान, पश्चाताप, ईश्वर का भय, ईश्वर की मदद की आवश्यकता, और ईश्वर के प्रति भक्ति को पोषित और संरक्षित करते हैं। इन चीजों से तृप्ति और संतोष उनके गलत उपयोग, या मूर्खता का संकेत है।

यह उन सकारात्मक कार्यों का पूरा क्रम है जिनका हमने उल्लेख किया है, या आत्म-अनुशासन के सिद्धांत हैं। अब हमें उनमें से प्रत्येक की, यद्यपि सामान्य शब्दों में, अलग से जांच करनी चाहिए।

ईसाई जीवन की भावना के अनुसार आत्मा की शक्तियों के निर्माण में योगदान देने वाले अभ्यास

तीन शक्तियाँ हैं: बुद्धि, इच्छाशक्ति और भावनाएँ। अभ्यास उसी के अनुसार विभाजित हैं। उनका सीधा उद्देश्य इन शक्तियों का विकास करना है, लेकिन इस तरह से कि आत्मा उनमें बुझ न जाए; बल्कि, वह और भी अधिक प्रज्वलित हो। बाद वाला (आत्मा) पहले वाले (शक्तियों) के लिए एक मापदंड और एक संयम के रूप में कार्य करता है, जिसे मौन समर्पण या पूर्ण विराम की हद तक उसके अधीन कर दिया जाता है।

क) बौद्धिक क्षमता को विकसित करने वाले अभ्यास, जिनमें आध्यात्मिक जीवन को प्रज्वलित और पोषित किया जाता है

मन का ईसाई निर्माण इस बात में निहित है कि उस पर विश्वास के सभी सत्यों को इतनी गहराई से अंकित किया जाए कि वे ही उसका सार बन जाएँ, या कि वह केवल उन्हीं से मिलकर बना हो, ताकि जब भी किसी भी बात पर तर्क करने की बात आती है, तो वह ज्ञात होने वाली सभी बातों पर उन्हीं के संदर्भ में तर्क करता या निर्णय लेता है, और वास्तव में, उनके बिना एक भी कदम नहीं उठा सकता। प्रेरित इस बात को 'उत्तम शिक्षा के ढाँचे को दृढ़ता से थामे रहना' (2 तीमुथियुस 1:13) कहते हैं।

इससे संबंधित आचरण या गतिविधियाँ हैं: परमेश्वर का वचन पढ़ना और सुनना, धर्मपितामहों के लेख, पवित्र धर्मपितामहों के जीवन, पारस्परिक चर्चा, और सबसे अनुभवी लोगों से परामर्श लेना।

पढ़ना या सुनना अच्छा है; उससे भी बेहतर पारस्परिक चर्चा है; और सबसे उत्तम सबसे अनुभवी लोगों की सलाह है।

परमेश्वर का वचन सबसे अधिक फलदायी है, उसके बाद पवित्र पुरुषों की रचनाएँ और संतों का जीवन आता है। हालाँकि, यह समझना चाहिए कि संतों का जीवन शुरुआती लोगों के लिए सबसे अच्छा है, पवित्र पुरुषों की रचनाएँ मध्यवर्ती स्तर के लोगों के लिए, और परमेश्वर का वचन सिद्ध लोगों ( ) के लिए है।

ये सभी—सत्य के स्रोत और उनसे लाभ उठाने के साधन—स्पष्ट रूप से इन्हें मन पर अंकित करने और, साथ ही, उत्साह की भावना को बनाए रखने में मदद करते हैं। अक्सर एक ही पाठ एक दिन से अधिक समय तक आत्मा को उत्तेजित कर सकता है; संतों के जीवन हैं जहाँ केवल स्मरण ही उत्साह की भावना को पुनः प्रज्वलित कर देता है; पवित्र पिताओं की रचनाओं में ऐसे अंश हैं जो गहराई से प्रेरणादायक हैं। इसलिए, यह एक अच्छा नियम है:

ऐसे अंशों को लिखना और ज़रूरत पड़ने पर, उत्साह जगाने के लिए उन्हें रखना।

अक्सर न तो आंतरिक प्रयास काम आते हैं और न ही बाहरी — आत्मा सुस्त बनी रहती है। कहीं से भी कुछ पढ़ने के लिए जल्दी करें। अगर उससे भी मदद न मिले — तो बातचीत के लिए किसी के पास दौड़ें। बाद वाला, जब विश्वास के साथ किया जाता है, तो शायद ही कभी बिना फल दिए रहता है।

पढ़ने के दो प्रकार हैं: एक नियमित, लगभग यांत्रिक, जबकि दूसरा चयनात्मक, जो आध्यात्मिक जरूरतों और सलाह पर आधारित होता है। फिर भी, पहला भी बेकार नहीं है। हालाँकि, यह उन लोगों के लिए अधिक उपयुक्त है जो पहले से ही स्थापित हैं, जो, मानो, अध्ययन करने के बजाय केवल दोहरा रहे हों।

हर व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि आध्यात्मिक मामलों पर बातचीत के लिए उसके पास कोई ऐसा व्यक्ति हो जो

पहले से ही वह सब कुछ जानता हो जो हम जानते हैं और जिससे वह निडर होकर मन की सारी बातें कह सके। यह बेहतर है कि ऐसा एक ही व्यक्ति हो, या अधिकतम दो। केवल समय बिताने के लिए की जाने वाली बेमतलब की बातचीतों से हर हाल में बचना चाहिए। पढ़ने के नियम इस प्रकार हैं: पढ़ने से पहले, मन को बाकी सभी बातों से खाली करना चाहिए;

— जो पढ़ा जा रहा है उसे जानने की इच्छा जगाएँ; प्रार्थना में ईश्वर की ओर मुड़ें; जो पढ़ा जा रहा है उसे ध्यान से पढ़ें और सब कुछ एक खुले दिल में ग्रहण करें;

— यदि कुछ अभी तक हृदय तक नहीं पहुँचा है, तो तब तक रुकें जब तक कि वह पहुँच न जाए;

— यह स्पष्ट है कि बहुत धीरे-धीरे पढ़ना चाहिए;

— जब आत्मा अब पठन से पोषण प्राप्त नहीं करना चाहती तो पठन बंद कर दें — तब वह तृप्त हो चुकी होती है। यदि, हालांकि, कोई विशेष अंश आत्मा को छू जाए, तो उसी पर मनन करें और आगे न पढ़ें।

ईश्वर के वचन को पढ़ने का सबसे अच्छा समय सुबह का है; संतों के जीवन को दोपहर के भोजन के बाद; और पवित्र पिताओं को सोने से ठीक पहले। अतः, कोई भी प्रत्येक दिन थोड़ा-बहुत सब कुछ पढ़ सकता है।

ऐसे कार्यों में लगे रहने के दौरान, मुख्य उद्देश्य को लगातार ध्यान में रखना चाहिए: सत्य को मन में अंकित करना और आत्मा को जगाना। यदि यह पढ़ने या बातचीत से हासिल नहीं होता है, तो वे केवल इंद्रियों और सुनने की तुष्टि के लिए व्यर्थ संतुष्टि और खोखली बातें हैं। यदि यह बुद्धिमानी से किया जाए, तो सत्य अंकित भी होते हैं और प्रेरित भी करते हैं, और एक दूसरे की मदद करते हैं; लेकिन यदि कोई सही दृष्टिकोण से भटक जाता है, तो कुछ भी हासिल नहीं होता: सत्य रेत की तरह सिर में भर दिए जाते हैं, और आत्मा ठंडी और कठोर हो जाती है, घमंडी और अहंकारी हो उठती है।

सत्य को अंकित करना और उनका परीक्षण करना एक समान नहीं है। यहाँ केवल इतना ही आवश्यक है: सत्य को समझें और उसे अपने मन में तब तक रखें जब तक कि वह उससे एक न हो जाए—बिना किसी तर्क या प्रतिबंध के—सत्य का एकल स्वरूप।

इसलिए, इसे प्राप्त करने का सबसे आसान तरीका सही मायने में निम्नलिखित माना जा सकता है: सभी सत्य धर्मशिक्षा-पुस्तिका में पाए जाते हैं। हर सुबह, उसमें से एक सत्य लें और उसे स्पष्ट रूप से समझें; उसे अपने मन में रखें और जब तक आपकी आत्मा को पोषण की आवश्यकता हो—एक दिन, दो, या अधिक—तब तक उससे स्वयं को पोषित करें; दूसरे के साथ भी ऐसा ही करें, और इसी तरह अंत तक करते रहें। यह तरीका सरल और व्यापक रूप से स्वीकृत है। यदि आप पढ़ नहीं सकते, तो एक सत्य माँगें और उसी पर जिएँ।

यह स्पष्ट है कि यह नियम सभी पर लागू होता है: सच्चाइयों को इस तरह से याद करें कि वे आपको प्रेरित करें। हालाँकि, इसे व्यवहार में लाने के तरीके विविध हैं, और सभी के लिए एक ही तरीका निर्धारित करना असंभव है।

परिणामस्वरूप, पढ़ना, सुनना और बातचीत जो सच्चाइयों को अंकित नहीं करतीं या आत्मा को उत्तेजित नहीं करतीं, उन्हें त्रुटिपूर्ण माना जाना चाहिए, जो सत्य से भटक गई हैं। यह केवल जिज्ञासा के लिए बहुत अधिक पढ़ने का कष्ट है, जब कोई केवल मन से ही पढ़ी जा रही बात का अनुसरण करता है, बिना उसे हृदय तक पहुँचने या उसके स्वाद का आनंद लेने दिए।

यह दिवास्वप्न देखने की कला है, जो न तो कुछ बनाती है और न ही सिखाती है, बल्कि नष्ट करती है, और हमेशा अहंकार की ओर ले जाती है। जैसा कि कहा गया है, पूरे मामले को निम्नलिखित तक सीमित रखना चाहिए: सत्य को पकड़ो और उसे अपने मन में तब तक रखो जब तक कि आपका हृदय उसका स्वाद न चख ले। पवित्र पिताओं ने इसे सरल शब्दों में कहा है: याद करो, इसे अपने मन में रखो, इसे अपनी आँखों के सामने रखो।

ख) इच्छा के निर्माण और आत्मा को जगाने के लिए अभ्यास

इच्छाशक्ति का निर्माण करने का अर्थ है उसमें अच्छे गुणों को अंकित करना: विनम्रता, विनम्रता, धैर्य, आत्म-संयम, सहनशीलता, परोपकार और इसी तरह — ताकि, उनके साथ एक हो जाने या उनमें विकसित हो जाने पर, वे, मानो, उसकी वास्तविक प्रकृति का निर्माण करें; और ताकि, जब इच्छाशक्ति द्वारा कुछ भी किया जाए, तो वह उनकी प्रेरणा से और उनकी भावना में किया जाए; अर्थात्, वे शासक बन जाएँ और हमारे कर्मों पर शासन करें।

इच्छा की ऐसी प्रवृत्ति सुरक्षित और दृढ़ होती है; परन्तु चूंकि यह पापी प्रवृत्ति के विपरीत है, इसे प्राप्त करने के लिए परिश्रम और प्रयास की आवश्यकता होती है। इसी कारण, इससे संबंधित अभ्यास— —मुख्य रूप से इच्छा की प्रमुख कमजोरी, अर्थात् आत्म-इच्छा, अवज्ञा और जुए के प्रति अधीरता के विरुद्ध निर्देशित हैं।

इस दुर्बलता का उपचार ईश्वर की इच्छा के प्रति समर्पण से होता है, जिसमें अपनी इच्छा और किसी अन्य की इच्छा को अस्वीकार करना शामिल है। ईश्वर की इच्छा प्रत्येक व्यक्ति पर लागू होने वाली आज्ञाकारिता के विभिन्न रूपों में प्रकट होती है। सबसे पहली और महत्वपूर्ण आवश्यकता अपने पद या स्थिति के अनुसार नियमों या आज्ञाओं का पालन करना है; इसके

बाद कलीसिया के विधानों का पालन, नागरिक और पारिवारिक व्यवस्था की आवश्यकताएँ, दैवी इच्छा से उत्पन्न परिस्थितियों की माँगें, और एक उत्साही आत्मा की माँगें आती हैं—ये सभी विवेक और परामर्श के साथ होती हैं।

ये सभी धर्मपरायण कर्मों के क्षेत्र हैं, जो सभी के लिए, और वास्तव में, सभी के लिए खुले हैं। अतः, केवल उनका सर्वोत्तम उपयोग करना सीखें, और आपको इच्छा-शक्ति के निर्माण के साधनों की कमी महसूस नहीं होगी।

इस उद्देश्य के लिए, अपने लिए उन सभी धर्मपरायण कार्यों की पूरी श्रृंखला को स्पष्ट करें जो आपके पद, रैंक और परिस्थितियों में आपके लिए संभव हैं, साथ ही यह भी विचार करें कि कब, कैसे, किस हद तक, और क्या किया जा सकता है और किया जाना चाहिए।

इन सबको स्पष्ट करने के बाद, कर्मों और उनके क्रम की एक सामान्य रूपरेखा तैयार करें, ताकि आप जो कुछ भी करें वह संयोग से न हो, साथ ही यह ध्यान रखें कि यह क्रम केवल सामान्य रूप से उपयुक्त है; विशेष रूप से, इसे घटनाओं के क्रम के अनुसार आवश्यकतानुसार बदला जा सकता है। सब कुछ विवेक से करें।

इसलिए दैनिक आधार पर संभावित स्थितियों और संभावित कार्यों की सूची बनाना बेहतर है।

धर्म के अभ्यास में निपुण व्यक्ति कभी भी कुछ पूर्वनिर्धारित नहीं करते, बल्कि हमेशा वही करते हैं जो ईश्वर उनकी राह में भेजते हैं, क्योंकि सभी चीजें ईश्वर से आती हैं; परिस्थितियों के माध्यम से वह हमें अपनी इच्छा बताते हैं।

हालाँकि, यह सब केवल कर्मों की बात है। इन कर्मों में संलग्न होने से कोई व्यक्ति केवल सक्षम बनता है। इन कर्मों के माध्यम से सद्गुण तक पहुँचने के लिए, व्यक्ति को सच्चे सद्गुण की भावना को दृढ़ता से बनाए रखना चाहिए, अर्थात्: विनम्रता और ईश्वर के भय के साथ, सभी कार्य ईश्वर की इच्छा के अनुसार और ईश्वर की महिमा के लिए करें। जो कोई भी आत्मविश्वास से, लगभग साहसिकता की हद तक निडर होकर, आत्म-संतुष्टि या दूसरों को खुश करने के लिए, यहां तक कि धार्मिक कार्य करते हुए भी, कार्य करता है, वह अपने भीतर आत्म-धार्मिकता, अहंकार और फरीसीपन की एक दुष्ट भावना को बढ़ावा देता है।

सही भावना को बनाए रखते हुए, व्यक्ति को नियमों को भी ध्यान में रखना चाहिए, मुख्य रूप से क्रमिकता और निरंतरता का नियम: अर्थात्, हमेशा छोटे से शुरू करें और उच्चतर की ओर बढ़ें, और फिर, एक बार शुरू करने के बाद, रुकें नहीं। इस प्रकार, कोई इनसे बच सकता है: अपूर्ण होने की भावना से उत्पन्न **पीड़ा**, क्योंकि पूर्णता एक साथ नहीं मिलती; इसके लिए अभी समय है; **यह विचार** कि उसने सब कुछ पहले ही कर लिया है, क्योंकि इसके चरणों का कोई अंत नहीं है; और **अतिमहत्त्वाकांक्षी** उद्यम, यानी अपनी शक्ति से परे की उपलब्धियाँ करने का प्रयास।

अंतिम लक्ष्य सद्गुण की स्वाभाविकता है, जब **नियम** अब बोझ **नहीं लगता**।

जो इसे सबसे सफलतापूर्वक प्राप्त करता है, वह है जिसे सदाचारी और कर्मठ लोगों के साथ रहने की कृपा प्राप्त होती है; और भी अधिक सफलतापूर्वक यदि वह उनके संरक्षण में हो। अज्ञानता या अभ्यास की कमी से हुई गलतियों को दोहराने या सुधारने की कोई आवश्यकता नहीं होगी। जैसा कि कहा जाता है, पढ़ना या विचार करना न करें, बल्कि एक ईश्वर-भक्त व्यक्ति को खोजें, और आप तुरंत ईश्वर का भय सीख जाएंगे। यही हर अन्य सद्गुण पर भी लागू होता है। हालाँकि, अपनी प्रकृति, चरित्र और परिस्थितियों को देखते हुए, सभी अन्य सद्गुणों में से एक विशेष सद्गुण को चुनना और उस पर दृढ़ता से कायम रहना एक अच्छा विचार है—यह एक कैनवास की तरह एक नींव के रूप में काम करेगा—और वहाँ से अन्य सद्गुणों की ओर बढ़ना चाहिए। यह सुस्ती के समय में एक जीवन रेखा है—यह एक शक्तिशाली अनुस्मारक के रूप में काम करता है और व्यक्ति के संकल्प को जल्दी से पुनर्जीवित करता है। सबसे बढ़कर, दान सबसे निश्चित मार्ग है, क्योंकि यह राजा तक ले जाता है।

हालाँकि, यह केवल कर्मों पर लागू होता है, स्वभाव पर नहीं, जिनका अपना आंतरिक क्रम होना चाहिए, जो आत्मा में स्थापित हो, एक तरह से चेतना और स्वतंत्र इच्छा से स्वतंत्र हो, जैसा प्रभु चाहता है। सभी संत ईश्वर के भय को इसका आरंभ और प्रेम को इसका अंत मानते हैं; इनके बीच, सभी सद्गुण एक-दूसरे पर निर्मित होते हैं, यद्यपि सभी के लिए एक ही तरीके से नहीं, बल्कि हमेशा पापों के लिए विनम्र और पश्चात्तापी प्रायश्चित और दुःख पर। ये सद्गुणों की जीवन-धारा हैं। प्रत्येक सद्गुण का वर्णन—उसके गुण, कर्म, पूर्णता की अवस्थाएँ, और विचलन—विशिष्ट पुस्तकों और धर्मपिता की शिक्षाओं का विषय है। पढ़ने से यह सब सीखें।

इस प्रकार का सदाचारी अभ्यास सीधे इच्छाशक्ति को आकार देता है और उस पर सद्गुणों की छाप छोड़ता है, फिर भी यह एक ही समय में आत्मा को निरंतर तनाव में रखता है। जैसे घर्षण से गर्मी उत्पन्न होती है, वैसे ही अच्छे कर्म भी वह ईंधन हैं जो उत्साह को प्रज्वलित करते हैं। उनके बिना, एक अच्छी आत्मा भी ठंडी पड़ जाती है और फीकी पड़ जाती है। यह आमतौर पर उन लोगों के साथ होता है जो कुछ नहीं करते, या जो केवल बुराई और अन्याय से बचने तक ही खुद को सीमित

रखते हैं। नहीं, किसी को भी अच्छे कर्म करने और चुनने के लिए भी निकलना चाहिए। हालाँकि, कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो अत्यधिक व्यस्त रहते हैं, जिसके परिणामस्वरूप वे बहुत जल्दी थक जाते हैं और अपनी आत्मा को बिखेर देते हैं। हर चीज़ में संयम।

ग) हृदय का संवर्धन

हृदय का संवर्धन करने का अर्थ है उसमें पवित्र, दिव्य और आध्यात्मिक चीजों के प्रति रुचि को पोषित करना, ताकि जब वह उनमें डूबा हो, तो उसे ऐसा लगे जैसे वह अपने स्वाभाविक तत्त्व में है, और वह उनमें मिठास, आनंद पाता हो, जबकि बाकी सब चीजों के प्रति उदासीन रहे, उनमें कोई रुचि न रखे और, वास्तव में, उनके प्रति घृणा भी महसूस करे। किसी व्यक्ति की सभी आध्यात्मिक गतिविधियाँ हृदय पर ही केंद्रित होती हैं: सत्य उस पर अंकित होते हैं, और सद्गुण उसमें जड़ें जमाते हैं, लेकिन इसका प्राथमिक कार्य वह स्वाद है जिसका हमने वर्णन किया है। जब मन आध्यात्मिक जगत की संपूर्ण संरचना और उसकी विभिन्न वस्तुओं को निहारता है, या जब इच्छा में विभिन्न अच्छे कार्यों की कल्पना की जाती है, तो इन सब में हृदय को मिठास का अनुभव करना चाहिए और उसमें उष्णता का संचार होना चाहिए। यह आध्यात्मिक आनंद पाप से सुन्न हो चुकी आत्मा के पुनरुत्थान का पहला संकेत है। अतः, इसकी संवर्धन एक बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है, यहाँ तक कि शुरुआती चरणों में भी।

वास्तव में, इस ओर निर्देशित अभ्यास हमारी संपूर्ण पवित्र सेवा है, अपने सभी रूपों में—चाहे वह सार्वजनिक, निजी, घरेलू या चर्च-संबंधी हो—और सबसे बढ़कर, प्रार्थना की वह भावना जो इसे जीवंत करती है।

ईश्वरीय सेवा—अर्थात्, सभी दैनिक सेवाएँ, चर्च की पूरी व्यवस्था, आइकॉन, मोमबत्तियाँ, धूप, गायन, पाठ, और संस्कार संबंधी क्रियाएँ, साथ ही विभिन्न आवश्यकताओं के लिए सेवाएँ—और फिर घरेलू पूजा, जिसमें धार्मिक वस्तुएँ भी शामिल हैं—पवित्र आइकॉन, पवित्र तेल, मोमबत्तियाँ, पवित्र जल, क्रॉस, धूप—पवित्र वस्तुओं का यह संपूर्ण संग्रह, जो सभी इंद्रियों—दृष्टि, श्रवण, गंध, स्पर्श, स्वाद—को आकर्षित करता है—एक सुन्न आत्मा में इंद्रियों का सबसे शक्तिशाली और एकमात्र सच्चा **शुद्धिकरण करने वाला** है। आत्मा को संसार की आत्मा ने सुन्न कर दिया है, जो उसमें निवास करने वाले पाप के माध्यम से इसे घेरे हुए है। हमारी दैवीय सेवा की संपूर्ण संरचना—अपने स्वरूप, अपने अर्थ, आस्था की शक्ति, और विशेष रूप से उसमें छिपी हुई अनुग्रह में—दुनिया की आत्मा को दूर रखने की एक अपार शक्ति रखती है, और आत्मा को उसके दमनकारी प्रभाव से मुक्त करके, उसे एक तरह से स्वतंत्र रूप से सांस लेने और इस आध्यात्मिक स्वतंत्रता की मिठास का स्वाद चखने में सक्षम बनाती है। जो कोई भी चर्च में प्रवेश करता है, वह एक बिल्कुल अलग दुनिया में प्रवेश करता है; वह इससे प्रभावित होता है और तदनुसार रूपांतरित हो जाता है। ऐसा ही उन लोगों के साथ होता है जो अपने आप को पवित्र वस्तुओं से घेरते हैं। आध्यात्मिक छापों की आवृत्ति आंतरिक स्व में अधिक तेजी से प्रवेश करती है और हृदय के रूपांतरण को अधिक तीव्रता से लाती है। इसलिए:

1) मनुष्य को यथासंभव चर्च की प्रार्थना सभाओं में भाग लेने का प्रयास करना चाहिए, आमतौर पर मैटिन्स, लिटर्जी और वेस्पर्स में। मनुष्य को पहली ही अवसर पर प्रतिदिन वहाँ उपस्थित होने की आकांक्षा करनी चाहिए, भले ही दिन में केवल एक बार ही क्यों न हो, और यदि संभव हो तो बिना चूके। हमारा चर्च पृथ्वी पर स्वर्ग है, या स्वयं स्वर्ग है। इस विश्वास के साथ चर्च जाने में शीघ्रता करें कि यह ईश्वर का निवास स्थान है, जहाँ उन्होंने स्वयं हमसे अधिक आसानी से सुनने का वादा किया है; चर्च में रहते हुए, ईश्वर की उपस्थिति में होने के समान भय और श्रद्धा के साथ रहें, जिसे आपको धैर्यपूर्वक खड़े होकर, झुककर, और संपूर्ण सेवा में ध्यानपूर्वक भाग लेकर व्यक्त करना चाहिए, बिना अपने विचारों को भटकने दिए, या सुस्ती या लापरवाही के आगे झुके बिना।

२) अन्य प्रकार की उपासना को नहीं भूलना चाहिए, चाहे वह निजी हो, चर्च में या घर पर की जाने वाली हो, और न ही चर्च के संपूर्ण विधान के अनुसार अपनी घरेलू प्रार्थना को। यह याद रखना चाहिए कि यह चर्च की सेवा का केवल एक पूरक है, न कि उसका विकल्प। प्रेरित ने, हमें अपनी सभाओं को न छोड़ने की आज्ञा देते हुए, यह स्पष्ट कर दिया कि सेवा की पूरी शक्ति सामूहिक सेवा में निहित है (देखें इब्रानियों 10:25)।

3) मनुष्य को सभी चर्च के पर्वों, संस्कारों और रीति-रिवाजों का पालन करना चाहिए—वास्तव में, संपूर्ण पूजा-विधि का—और जीवन के हर पहलू में स्वयं को इनसे बांधना चाहिए, ताकि वह निरंतर, मानो, एक विशेष वातावरण में बना रहे। ऐसा करना आसान है। हमारी कलीसिया की संरचना ऐसी ही है। बस इसे विश्वास के साथ स्वीकार करें।

लेकिन सबसे बढ़कर, जो चर्च की सेवकाई को शक्ति देता है, वह प्रार्थना का आत्मा है। प्रार्थना एक सर्व-व्यापी कर्तव्य और एक सर्व-शक्तिमान साधन दोनों है। इसके माध्यम से, विश्वास के सत्य मन में अंकित होते हैं, और अच्छे आचार-विचार इच्छा-शक्ति में; लेकिन सबसे बढ़कर, हृदय अपने स्नेहों में जीवित हो उठता है। केवल तभी पहले दो शीघ्रता से अनुसरण

करते हैं, जब यह मौजूद हो। इसलिए, प्रार्थना का संवर्धन सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण रूप से शुरू किया जाना चाहिए, और लगातार और अथक रूप से जारी रखा जाना चाहिए, जब तक कि प्रभु प्रार्थना करने वाले को प्रार्थना का उत्तर न दें।

प्रार्थना की नींव स्वयं ईश्वर की ओर मुड़ने के कार्य में निहित है, क्योंकि प्रार्थना ईश्वर की ओर मन और हृदय का मुड़ना है, और यही इस कार्य का सार है। फिर भी, लापरवाही या कौशल की कमी के कारण, कोई व्यक्ति अपने भीतर इस चिंगारी को बुझा सकता है। तब प्रार्थना की भावना को प्रज्वलित करने के उद्देश्य से कुछ निश्चित प्रथाओं को तुरंत शुरू करना चाहिए। जैसा कि उल्लेख किया गया है, दैवीय सेवाओं को करने और उनमें भाग लेने के अलावा, व्यक्तिगत प्रार्थना यहाँ सबसे अधिक प्रासंगिक है, चाहे वह कहीं भी और किसी भी तरह से की जाए। यहाँ एक नियम है: खुद को प्रार्थना करने का आदी बना लें। इस उद्देश्य के लिए:

1) प्रार्थना का एक समय-सारणी चुनें—शाम, सुबह और दिन के लिए।

2) शुरुआत में दिनचर्या को संक्षिप्त रखें, ताकि इस अभ्यास और परिश्रम से अपरिचित आत्मा को हतोत्साहित न किया जाए।

3) लेकिन इसे हमेशा श्रद्धा, लगन और पूरी एकाग्रता के साथ किया जाना चाहिए।

४) इसके लिए आवश्यक है: खड़ा होना, झुकना, घुटने टेकना, क्रॉस का चिह्न बनाना, पढ़ना, और कभी-कभी गाना।

5) आप इस प्रकार की प्रार्थना में जितनी अधिक बार संलग्न होंगे, उतना ही बेहतर होगा। कुछ लोग इसे हर घंटे करते हैं: एक बार में थोड़ा-थोड़ा, लेकिन अधिक बार।

6) प्रार्थना पुस्तकों में बताई गई प्रार्थनाएँ पढ़ी जाती हैं। लेकिन किसी एक विशेष प्रार्थना की आदत डालना अच्छा होता है, ताकि उसे शुरू करते ही आत्मा तुरंत प्रज्वलित हो जाए।

7) प्रार्थना का नियम सरल है: जब आप प्रार्थना करना शुरू करें, तो इसे भय और कांपते हुए कहें, जैसे कि आप सीधे ईश्वर के कानों में बोल रहे हों, और इसे आत्मा की गति के अनुसार, क्रॉस के चिह्न, झुकने और प्रणाम करने के साथ करें।

8) स्थापित नियम का हमेशा बिना चूके पालन किया जाना चाहिए; लेकिन यह हृदय के कहने पर इसमें कुछ जोड़ने से नहीं रोकता है।

९) चाहे पढ़ना हो या ज़ोर से गाना, फुसफुसाकर कहना हो, या मौन में—कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि प्रभु निकट हैं। लेकिन कभी-कभी पूरी प्रार्थना एक ही तरीके से करना बेहतर होता है, और कभी-कभी दूसरे तरीके से।

10) प्रार्थना की सीमा को दृढ़ता से मन में रखना चाहिए। एक अच्छी प्रार्थना वह है जो ईश्वर के सामने प्रणाम के साथ समाप्त होती है, इस भावना के साथ: *'हे प्रभु जो सब कुछ तौलते हो, मुझे बचाओ'*

11) प्रार्थना के स्तर होते हैं। पहला स्तर शारीरिक प्रार्थना है, जिसमें मुख्य रूप से पढ़ना, खड़ा होना और झुकना शामिल है। मन भटकता है, हृदय कुछ महसूस नहीं करता, और कोई इच्छा नहीं होती: यहाँ धैर्य, परिश्रम और पसीना होता है। फिर भी, सीमाएँ निर्धारित करें और प्रार्थना करें। यह सक्रिय प्रार्थना है। दूसरा चरण ध्यान के साथ प्रार्थना है: मन प्रार्थना के समय खुद को इकट्ठा करने और बिना किसी विचलन के, पूरी जागरूकता के साथ पूरी प्रार्थना का पाठ करने का आदी हो जाता है। ध्यान लिखित शब्द के साथ मिल जाता है और ऐसा बोलता है मानो वह उसका अपना हो। तीसरा चरण हृदय की प्रार्थना है: हृदय ध्यान से गर्म हो जाता है, और जो विचार में था वह यहाँ एक भावना बन जाता है। पश्चाताप का एक शब्द है, और यहाँ पश्चाताप है; एक प्रार्थना है, और यहाँ आवश्यकता और लालसा की भावना है। जो कोई भी भावना के चरण तक पहुँच गया है, वह बिना शब्दों के प्रार्थना करता है, क्योंकि ईश्वर हृदय के ईश्वर हैं। इसीलिए यह प्रार्थनापूर्ण प्रशिक्षण का शिखर है—प्रार्थना में खड़े रहना, एक भावना से दूसरी भावना में आगे बढ़ना। इस बिंदु पर, पढ़ना बंद हो सकता है, और सोच-विचार भी, और केवल प्रार्थना के परिचित संकेतों के साथ उस भावना में डूबे रहना हो। ऐसी प्रार्थना शुरू में धीरे-धीरे आती है। चर्च में या घर पर, प्रार्थना का एक भाव किसी पर छा जाता है… और यहाँ संतों की सामान्य सलाह है—इसे अनदेखा न जाने दें: अर्थात्, जब वह अनुभूति मौजूद हो, तो सभी अन्य गतिविधियाँ बंद कर दें और उसी में स्थित रहें। 'पवित्र सीढ़ी' कहती है: 'एक स्वर्गदूत आपके साथ प्रार्थना कर रहा है।' प्रार्थना के इन प्रकटनों पर ध्यान देना प्रार्थना के संवर्धन को बढ़ावा देता है, जबकि लापरवाही इसे नष्ट कर देती है: और संवर्धन का मूल बिंदु यही है।

हालाँकि, कोई भी स्वयं को प्रार्थना में कितना भी निपुण क्यों न माने, उसे प्रार्थना के नियमों को कभी नहीं छोड़ना चाहिए, बल्कि निर्देशानुसार इसका अभ्यास करना चाहिए, और हमेशा सक्रिय प्रार्थना से शुरुआत करनी चाहिए। इसके साथ बौद्धिक प्रार्थना होनी चाहिए, और हार्दिक प्रार्थना बाद में होगी। इसके बिना, बाद वाली खो जाएगी, और कोई व्यक्ति सोचेगा कि वह प्रार्थना कर रहा है, जबकि वास्तव में वह नहीं कर रहा होगा।

जब प्रार्थना की भावना अविराम होने की स्थिति तक पहुँच जाती है, तो आध्यात्मिक प्रार्थना शुरू होती है, जो पवित्र आत्मा का एक वरदान है, जो हमारे लिए प्रार्थना करता है—यह बोधगम्य प्रार्थना का उच्चतम चरण है। लेकिन, वे कहते हैं, कि एक ऐसी प्रार्थना भी है जो मन की समझ से परे है, या जो चेतना की सीमाओं से परे जाती है (जैसा कि सेंट आइज़ैक द सीरियन सिखाते हैं)।

अनवरत प्रार्थना तक पहुँचने का 'सबसे आसान' साधन यीशु की प्रार्थना का अभ्यास करना और उसे अपने भीतर गहराई से स्थापित करना है। आध्यात्मिक जीवन में सबसे अनुभवी पुरुषों ने, जो ईश्वर द्वारा प्रबुद्ध हैं, सभी आध्यात्मिक प्रयासों के साथ-साथ संपूर्ण तपस्या जीवन में भी आत्मा को मजबूत करने के लिए इस एक सरल फिर भी सर्वशक्तिमान साधन को पाया है, और अपनी शिक्षाओं में इसके बारे में विस्तृत नियम छोड़े हैं।

हमारे श्रम और तपस्या के प्रयासों के माध्यम से, हम हृदय की शुद्धि और आत्मा के पुनरुद्धार की खोज करते हैं। इसके दो मार्ग हैं: सक्रिय मार्ग—अर्थात्, ऊपर वर्णित तपस्या के अभ्यास में संलग्न होना—और चिंतनशील मार्ग—मन को ईश्वर की ओर मोड़ना। पहले में, आत्मा शुद्ध होती है और ईश्वर को प्राप्त करती है; दूसरे में, ईश्वर, जो दृश्यमान है, सभी अशुद्धियों को जलाकर शुद्ध आत्मा में वास करने आता है। बाद वाले को यीशु की प्रार्थना में संक्षेप करते हुए, सीनाई के ग्रेगरी कहते हैं: 'हम ईश्वर को या तो कर्म और परिश्रम के माध्यम से, या यीशु के नाम के कलात्मक आह्वान के माध्यम से प्राप्त करते हैं,' और फिर वे कहते हैं कि पहला मार्ग दूसरे से लंबा है—जबकि दूसरा अधिक तीव्र और अधिक प्रभावी है। परिणामस्वरूप, कुछ लोगों ने आध्यात्मिक प्रथाओं में यीशु की प्रार्थना को सर्वोच्च स्थान दिया है। यह ज्ञान प्रदान करती है, शक्ति देती है, पुनर्जीवित करती है, सभी शत्रुओं पर, दृश्य और अदृश्य दोनों पर, विजय प्राप्त करती है, और हमें परमेश्वर तक उठाती है। यह इतनी सर्वशक्तिमान और सामर्थी है! प्रभु यीशु का नाम आत्मा में आशीषों, शक्ति और जीवन का खजाना है।

इससे स्वाभाविक रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि जिसने भी पश्चाताप किया है, या जिसने प्रभु की खोज शुरू कर दी है, उसे बिल्कुल शुरुआत से ही यीशु की प्रार्थना के अभ्यास में पूर्ण निर्देश दिया जा सकता है और दिया जाना चाहिए; और इसके माध्यम से, प्रार्थना के अन्य सभी रूपों से भी परिचित कराया जा सकता है, क्योंकि इस तरह कोई भी अधिक तेज़ी से मज़बूत हो सकता है, अधिक शीघ्रता से आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त कर सकता है, और आंतरिक शांति में प्रवेश कर सकता है। इस बात से अनजान, कुछ—या वास्तव में अधिकांश—अपने आप को केवल शारीरिक और मानसिक अभ्यासों तक सीमित कर लेते हैं, और अपने प्रयासों और समय को लगभग व्यर्थ ही गँवा देते हैं।

इस अभ्यास को 'कला' कहा जाता है। और यह बहुत सरल है। अपनी चेतना और ध्यान को अपने हृदय में केंद्रित रखते हुए, बिना किसी छवि या रूप के, यह विश्वास करते हुए कि प्रभु आपको देख रहे हैं और सुन रहे हैं, अखंड रूप से दोहराएँ: *'हे प्रभु यीशु मसीह, परमेश्वर के पुत्र, मुझ पर दया करो'*।

इसमें स्थिर होने के लिए, किसी को सुबह या शाम को एक निश्चित समय—पंद्रह मिनट, आधा घंटा या उससे अधिक, जितना वह संभाल सकता है—केवल इस प्रार्थना को करने के लिए अलग रखना चाहिए। यह सुबह और शाम की प्रार्थनाओं के बाद, खड़े होकर या बैठकर किया जाना चाहिए। यह अभ्यास की नींव रखेगा।

फिर, दिन भर, चाहे आप कुछ भी कर रहे हों, हर कुछ मिनटों में इसे कहने का सचेत प्रयास करें।

यह आदत और अधिक गहरी होती जाएगी, और प्रार्थना, मानो अपने आप ही, व्यक्ति के किसी भी कार्य या पेशे के बावजूद, जपती रहेगी। कोई व्यक्ति जितनी दृढ़ता से इस पर अमल करेगा, वह उतनी ही जल्दी सफल होगा।

निश्चित रूप से अपनी चेतना को हृदय पर केंद्रित रखना चाहिए और प्रार्थना करते समय, जिस एकाग्रता से यह की जाती है, उसके भाव के रूप में अपनी सांस को थोड़ा रोककर रखना चाहिए।

लेकिन सर्वोपरि शर्त यह विश्वास है कि ईश्वर निकट है और हमें सुनता है। अपनी प्रार्थना ईश्वर के कान में कहें।

यह अभ्यास आत्मा में गर्माहट भरता है, जिसके बाद ज्ञान की प्राप्ति होती है, और फिर परमानंद। लेकिन यह सब कभी-कभी केवल वर्षों के अंतराल में ही प्राप्त होता है।

शुरू में, यह प्रार्थना लंबे समय तक किसी अन्य गतिविधि की तरह केवल एक क्रिया होती है; फिर यह मन का विषय बन जाती है, और अंत में, हृदय में जड़ जमा लेती है।

इस प्रार्थना के सही मार्ग से भटकने की संभावनाएँ होती हैं। इसलिए, इसे किसी ऐसे व्यक्ति से सीखना चाहिए जो इसे जानता हो। त्रुटियाँ अधिकतर वहाँ होती हैं जहाँ व्यक्ति का ध्यान केंद्रित होता है—मस्तिष्क में या हृदय में।

जो हृदय में है, वह सुरक्षित है। उससे भी अधिक सुरक्षित वह है जो क्षण-क्षण टूटे हृदय से ईश्वर से चिपका रहता है, पश्चाताप करता है, और भ्रमों से मुक्ति के लिए प्रार्थना करता है।

पवित्र पिताओं ने इस अभ्यास पर शिक्षण विस्तार से प्रस्तुत किया है। अतः, जिसने इस कार्य को आरंभ किया है, उसे अन्य सभी बातों को त्यागकर उनके ग्रंथों को पढ़ना चाहिए। सबसे अच्छी शिक्षाएँ हेसिकियस (यरूशलेम के — *संपादक*) की रचनाओं में, एल्डर बेसिल द्वारा लिखे प्रस्तावनाओं में, और पैसियस के जीवन में पाई जाती हैं (द लाइफ एंड राइटिंग्स ऑफ द मोल्डोवियन एल्डर पैसियस वेलिचकोव्स्की, विद द एडिशन् ऑफ प्रीफेसेज टू द बुक्स ऑफ सेंट्स ग्रेगरी ऑफ साइनै, फिलोथियस ऑफ़ सिनाई, इसिचियस द प्रेसेबिटर और नीलस ऑफ़ सोरा, का संकलन उनके मित्र और साथी तपस्वी, एल्डर बेसिल ऑफ़ पोल्यामेरुल द्वारा, आध्यात्मिक संयम और प्रार्थना पर किया गया है। कोज़ेल्स्क वेडेन्स्काया ऑप्टिना हर्मिटेज द्वारा प्रकाशित। मास्को, 1892 (सं.); ग्रेगरी ऑफ़ साइना, फिलोथियस ऑफ़ साइना, थियोलिप्टस (फिलाडेल्फिया के मेट्रोपॉलिटन — *सं.*), सिमोन द न्यू थियोलॉजिस्ट, नीलस ऑफ़ सोरा, और पवित्र भिक्षु डोरोथियस (रूसी) से।

जो कोई भी उपरोक्त बताई गई सभी बातों को अपनाकर इसमें निपुण हो जाता है, वह एक ऐसा व्यक्ति है जो ईसाई जीवन का अभ्यास करता है। वह अपने शुद्धिकरण और ईसाई पूर्णता में शीघ्र प्रगति करेगा, और ईश्वर के साथ एकता में वांछित शांति प्राप्त करेगा।

ये आत्मा की शक्तियों के लिए अभ्यास हैं, जो आत्मा की गतिविधियों के अनुरूप अनुकूलित हैं। यहाँ हम देखते हैं कि उनमें से प्रत्येक आत्मा के जीवन, या आध्यात्मिक संवेदनशीलताओं के अनुरूप है। फिर भी वे आंतरिक निवास के लिए मौलिक शर्तों को मजबूत करने की ओर भी ले जाते हैं, अर्थात्: मानसिक अभ्यास एकाग्रता को, इच्छाशक्ति के अभ्यास सतर्कता को, और हृदय के अभ्यास संयम को जन्म देते हैं। प्रार्थना, अपने हिस्से के लिए, इन सभी को समाहित करती है और सभी को एकजुट करती है; वास्तव में, अपनी प्रकृति में, यह पहले वर्णित आंतरिक गतिविधि के अलावा और कुछ नहीं है।

ये सभी गतिविधियाँ आत्मा की शक्तियों को विकसित करने के उद्देश्य से हैं, जो नए जीवन की भावना के अनुरूप हैं। यह आत्मा का आध्यात्मिकीकरण करने, या उसे आत्मा में ऊँचा उठाने और उससे एक कर देने के समान है। पतन में, वे विरोध में एकजुट थे। परिवर्तन में, आत्मा बहाल हो जाती है, लेकिन आत्मा में आत्मा और सभी आध्यात्मिक चीजों के प्रति विरोध और अरुचि की एक तीव्र प्रवृत्ति बनी रहती है। ये गतिविधियाँ, जो आध्यात्मिक तत्त्वों से परिपूर्ण हैं, आत्मा को पवित्र आत्मा के साथ सामंजस्य में लाती हैं और उसे उसी में विलीन कर देती हैं। इससे यह स्पष्ट है कि वे कितनी आवश्यक हैं, और जो लोग स्वयं को उनसे मुक्त करते हैं, उनकी दशा कितनी दयनीय होती है। वे स्वयं ही अपने परिश्रम के निष्फल होने का कारण हैं—वे परिश्रम तो करते हैं, पर फल नहीं देखते; फिर वे जल्द ही हतोत्साहित हो जाते हैं, और सब कुछ समाप्त हो जाता है।

लेकिन साथ ही, यह याद रखना चाहिए कि उनका सारा फल उत्साह और खोज की भावना से आता है। यह इन कर्मों के माध्यम से अनुग्रह की पुनर्स्थापना शक्ति को प्रवाहित करता है और आत्मा में पुनरुत्थान लाता है। इसके बिना, ये सभी कर्म खाली, ठंडे, निर्जीव और बांझ हैं। जब कोई आंतरिक भावना नहीं होती है तो पढ़ना, प्रणाम करना, पूजा और बाकी सब कुछ बहुत कम फल देता है। इस प्रकार के कर्म अहंकार और आत्म-धार्मिकता की ओर ले जा सकते हैं, और कोई व्यक्ति केवल इन्हीं पर निर्भर हो सकता है। इसलिए, जब आत्मा के अभाव वाले व्यक्ति पर विपत्ति आती है तो सब कुछ ध्वस्त हो जाता है। इसके अलावा, वे अपने आप में ही थकाऊ होते हैं। हालाँकि, आत्मा आत्मा को एक ऐसी शक्ति प्रदान करती है जिससे वह केवल इन कर्मों में ही संतुष्टि नहीं पाती है और हमेशा उनकी ओर मुड़ना चाहती है, ।

इसलिए इन कार्यों में लगे रहने के दौरान, यह हमेशा ध्यान में रखना अत्यंत आवश्यक है कि जीवन की आत्मा हमारे भीतर जलती रहे, हमारे उद्धारकर्ता, ईश्वर की ओर एक विनम्र और हार्दिक मुड़ने के साथ; और यह प्रार्थना और भक्तिपूर्ण अनुष्ठानों के माध्यम से सबसे अच्छी तरह से पोषित और संरक्षित होती है। साथ ही, इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि स्वयं को केवल इन्हीं तक सीमित न रखा जाए, क्योंकि ये आत्मा के लिए भी पोषक हैं। अतः इनमें लगे रहने पर भी कोई आध्यात्मिक बना रह सकता है, जो आत्मा के लिए हानिकारक है। ऐसा सबसे अधिक संभावना है कि यह पढ़ने और, सामान्य रूप से, सत्य के ज्ञान और आत्मसात करने के साथ हो।

नए जीवन की आत्मा के अनुसार शरीर का संचालन

यहाँ एक विशिष्ट विशेषता देह का संयम है। देह को संयमित करना अर्थ है कि उसे किसी भी वासना में लिप्त न होने देना, या सुख के लिए कुछ भी न करना। ना तो भोजन, ना पेय, ना नींद, ना गति, ना दृष्टि, ना श्रवण, और ना ही किसी अन्य इंद्रिय या छाप को इस तरह ग्रहण करना चाहिए जैसे कि वे कोई आशीर्वाद हों, बल्कि इस तरह से जैसे वे संयोगवश हों, बिना उन पर ध्यान दिए—चाहे उससे पहले हो, उसके दौरान हो या बाद में—और उससे भी अधिक, एक निश्चित मात्रा में त्याग के साथ, शरीर की इच्छाओं के अनुसार नहीं, बल्कि तर्क और एक अच्छे उद्देश्य के अनुसार। शरीर को थोड़े आत्म-संयम के साथ उसकी आवश्यकता की चीज़ें दें, और, उसे एक ओर रखकर, पूरी तरह से आत्मा की ओर मुड़ें। पवित्र पिताओं में, इसे शरीर

के विश्राम की खोज कहा जाता है—जो सभी रोगों में सबसे खतरनाक और ईश्वर-विरोधी है। जिसमें देह के प्रति दया हो, उसमें परमेश्वर की आत्मा वास नहीं कर सकती। और लापरवाही और सुस्ती से उत्पन्न होने वाली देह की कभी-कभार की, आंशिक तुष्टि भी आत्मा को ठंडा कर देती है। तो फिर उन लोगों के बारे में क्या कहा जा सकता है जिनके लिए देहिक सुख एक नियम बन गया है? देह की तुष्टि आत्मा के लिए वैसी ही है जैसे पानी आग के लिए। मांस ही सभी वासनाओं का केंद्र है, जैसा कि कैसियन (जॉन कैसियन द रोमन — *संपादक)* सिखाते हैं और जैसा कि कोई भी अनुभव से सत्यापित कर सकता है; अतः, इसकी संयम-पालना वासनाओं को सूखा देने के समान है। जो भी थोड़ा भी मांस के सुखों में लिप्त रहता है, वह आंतरिक रूप से केंद्रित नहीं हो सकता; वह उसी में डूबा रहता है जो मांस को प्रसन्न करता है, और इसलिए उसका ध्यान भटका रहता है और परिणामस्वरूप, वह ठंडा पड़ जाता है। एक आत्मा जो मांस से चिपकी रहती है, वह उससे मिल जाती है; इससे वह बोझिल हो जाती है, पृथ्वी की ओर खिंच जाती है, और मन से आध्यात्मिक को स्वतंत्र रूप से निहारने में असमर्थ हो जाती है। इसके विपरीत, जिसने देह को वश में किया है, उसकी दृष्टि कितनी स्पष्ट होती है, वह कितनी आसानी से अपने भीतर उतरता है, उसकी वासनाएँ कितनी कम जड़ जमाती हैं, और सामान्य रूप से, उसके भीतर आध्यात्मिक जीवन कितनी स्पष्ट रूप से जीवंत हो उठता है! *जितना यह बाहरी स्वरूप क्षय हो रहा है, उतना ही आंतरिक स्वरूप दिन-प्रतिदिन नया होता जा रहा है* (तुलना करें 2 कुरिन्थियों 4:16)। मांस, यदि वह मजबूत होता है, तो आत्मा की कीमत पर ही होता है; और आत्मा, यदि वह परिपक्व होती है, तो केवल मांस के विश्राम के द्वारा ही होती है। हमें संतों के जीवन में कोई आसान जीवन नहीं मिलता: सभी ने कठोरता से, आत्म-त्याग में, दुर्बलता में, सूखापन में और देह की मृत्यु में जीवन व्यतीत किया। अतः, संत इसाक द सीरियन के लिए, देह की मृत्यु को मोक्ष की एक शर्त माना जाता है। जो देह पर दया करता है, वह एक ऐसे मार्ग पर खड़ा है जो आकर्षक, फिसलन भरा, भ्रामक और मायावी है।

मांस को उसके सभी अंगों, अवयवों और कार्यों में संयमित किया जाना चाहिए, ताकि उसके सभी अंग धार्मिकता के उपकरण बन सकें।

हमारे शारीरिक जीवन के अंगों में से कुछ पशु-आत्मिक हैं, जो आत्मा की गतिविधि के सबसे करीबी उपकरण हैं, जबकि अन्य पूरी तरह से पशुवत हैं, जो पशु के पोषण, पालन-पोषण और विकास के उपकरण हैं। पहले वाले अधिक स्वतंत्र हैं और कम प्रतिबंधित हैं; बाद वाले अधिक बंधे हुए, अधिक कामुक और अधिक स्थूल हैं।

पहले में शामिल हैं: इंद्रियाँ, वाणी और गति; दूसरे में शामिल हैं: पोषण, निद्रा, यौन क्रिया और विभिन्न संवेदी छापें—गर्मी, ठंड, कोमलता आदि।

इसलिए देह को नियंत्रित करने के लिए निम्नलिखित नियम हैं:

१. अपनी इंद्रियों, विशेष रूप से दृष्टि और श्रवण को नियंत्रित करें; अपनी गतिविधियों को संयमित करें; अपनी जीभ को काबू में रखें। जो इन तीनों को काबू में रखने में विफल रहता है, वह अपने आंतरिक स्व को अव्यवस्था, शिथिलता और बंधन में पाता है; वास्तव में, वे भीतर भी मौजूद नहीं होते; क्योंकि ये वे मार्ग हैं जिनसे आत्मा भीतर से बाहर जाती है, या वे खिड़कियाँ हैं जो आंतरिक गर्मी को बाहर निकलने देती हैं।

२. उन पर अपना अधिकार जताएँ और उन्हें जबरदस्ती उन वस्तुओं की ओर निर्देशित करें जो अब लाभकारी हैं। पहले, वे उस चीज़ की ओर अप्रतिरोध्य रूप से आकर्षित होते थे जो आत्मा और प्रमुख जुनून को पोषित करती थी। अब आपको उन्हें उस ओर मोड़ना होगा जो आत्मा का निर्माण करती है।

3. शरीर को आवश्यक भोजन दें—साधारण और पौष्टिक—इसे माप-तौल कर दें, इसकी गुणवत्ता और समय निर्धारित करें, और उसी में संतुष्ट रहें। नींद के साथ भी ऐसा ही करें। शरीर को सूखा कर यौन क्रिया को समाप्त करें। सबसे बढ़कर, शरीर को कड़वाहट की स्थिति में रखें—ठंडा, कठोर और इसी तरह का—ताकि कोई कोमलता न रहे।

४. यह सब स्थापित करने के बाद, देह के विरुद्ध तब तक संघर्ष करें जब तक कि वह वश में न हो जाए और इस साधारण तथा कठोर जीवन के आदी होकर, एक मौन सेवक न बन जाए। अंततः देह का वशीकरण हो ही जाता है। मनुष्य को इसे ध्यान में रखना चाहिए और अपनी मेहनत के इनाम के रूप में इसके लिए प्रयास करना चाहिए। शारीरिक सद्गुणों का विकास शारीरिक प्रयासों के माध्यम से किया जाता है: एकांत, मौन, उपवास, जागरण, परिश्रम, वंचित रहने में धैर्य, पवित्रता, और ब्रह्मचर्य।

५. हालाँकि, यह ध्यान में रखना चाहिए कि यह साथी कब्र तक हमें दबाएगा और हम पर आक्रमण करेगा। कहा जाता है: देह पर भरोसा न करें—यह धोखेबाज़ है। और जिस क्षण आप इसे वश में करने की आशा में अपनी रक्षा की ढील देते हैं, यह तुरंत आपको पकड़ लेगा और आप पर हावी हो जाएगा। इसके खिलाफ संघर्ष जीवन भर का होता है, लेकिन यह शुरुआत

में सबसे कठिन होता है, और फिर आसान और आसान होता जाता है, जब तक कि अंत में अनुशासन पर केवल सचेत ध्यान ही शेष नहीं रह जाता, और शरीर की प्रवृत्तियों की केवल मद्धम अनुभूति ही रह जाती है।

६. सबसे स्थायी सफलता के लिए—विशेष रूप से शारीरिक प्रयासों में—क्रमबद्धता के सिद्धांत का पालन करना आवश्यक है। यहाँ कुछ सामान्य सलाह दी गई है: सबसे पहले, शरीर को हर तरह से संयम की अवस्था में रखें, और अपना सारा ध्यान आंतरिक कार्य पर लगाएँ। जब वासनाएँ शांत होने लगें और हृदय में गर्माहट उत्पन्न होने लगे, तो जैसे-जैसे आंतरिक उष्णता बढ़ेगी, शरीर की आवश्यकताएँ स्वाभाविक रूप से कम हो जाएँगी और महान शारीरिक करतब अपने आप होने लगेंगे।

७. वे सबसे महत्वपूर्ण शारीरिक कृत्य जो देह को नियंत्रित करते हैं, वे हैं: उपवास, जागरण, परिश्रम और ब्रह्मचर्य। इनमें से अंतिम (ब्रह्मचर्य) सभी में सबसे प्रभावी, सबसे आवश्यक और सबसे महत्वपूर्ण है। इसलिए, ब्रह्मचर्य ईसाई पूर्णता का सबसे तेज़ मार्ग है। इसके बिना, कोई व्यक्ति ऐसी शक्ति या ऐसे वरदान प्राप्त नहीं कर सकता। केवल यह ध्यान में रखना चाहिए कि, शारीरिक पवित्रता के अलावा, आत्मा की पवित्रता भी होती है, जो उस व्यक्ति में भी कमी हो सकती है जिसने कब्र तक शारीरिक पवित्रता बनाए रखी हो। यह शारीरिक पवित्रता से अधिक महत्वपूर्ण है। इसलिए, विवाहित जोड़े भी, एक हद तक, आत्मा की पवित्रता के माध्यम से कुंवारी कन्याओं के करीब आ सकते हैं। अनुग्रह उस श्रमिक की सहायता करता है जो ईश्वर के प्रति समर्पित है। इसीलिए हम देखते हैं कि विवाहित जोड़े आध्यात्मिक पूर्णताएँ प्राप्त करते हैं।

नए जीवन की आत्मा के अनुरूप बाह्य जीवन का क्रम

नए जीवन की आत्मा के अनुरूप बाहरी जीवन के क्रम से संबंधित सभी कुछ को संसार से पृथक्करण, या हमारे बाहरी जीवन के संपूर्ण क्रम से सांसारिक आत्मा के निष्कासन के रूप में वर्णित किया जा सकता है। *'मैंने तुम्हें संसार से चुन लिया है,* अर्थात् मैंने तुम्हें अलग कर दिया है,' प्रभु ने प्रेरितों से कहा (यूहन्ना 15:19)। वह अपनी दिव्य कृपा से प्रत्येक विश्वासी के लिए भी यही करता है: वह उनकी आत्मा को संसार से अलग कर देता है। वास्तव में, धर्म-परिवर्तन का सार ही अपनी चेतना को व्यर्थ की दुनिया से हटाकर उसे एक दूसरी दुनिया—आध्यात्मिक दुनिया—के लिए खोलना है। लेकिन जो शुरुआत में आत्मा में अदृश्य रूप से पूरा हुआ, उसे बाद में जीवन में कर्म में पूरा किया जाना चाहिए और वह एक स्थायी नियम बन जाना चाहिए। जो प्रभु की खोज करता है, उसे दुनिया से अलग हो जाना चाहिए।

'जगत' से तात्पर्य हर उस चीज़ से है जो भावुक, व्यर्थ और पापी है, जो निजी, पारिवारिक और सामाजिक जीवन में प्रवेश कर चुकी है और वहाँ एक रिवाज और एक नियम बन गई है। इसलिए, संसार से अलग होने का अर्थ अपने परिवार या समाज से भागना नहीं है, बल्कि उन नैतिकता, रीति-रिवाजों, नियमों, आदतों और मांगों को त्यागना है जो मसीह की आत्मा के सिद्धांतों के बिल्कुल विपरीत हैं, जो हमारे भीतर जड़ें जमा चुकी हैं और परिपक्व हो रही हैं। नागरिकता और पारिवारिक जीवन पर ईश्वर का आशीर्वाद है; अतः, किसी को भी उनका, या उनकी आवश्यक भलाई से संबंधित किसी भी चीज़ का त्याग या तिरस्कार नहीं करना चाहिए। लेकिन उनमें जो कुछ भी कामवासनापूर्ण और जुनूनी है, जो एक ऐसे विकास की तरह है जो उन्हें नुकसान पहुँचाता है और विकृत करता है, उसका तिरस्कार और अस्वीकृति की जानी चाहिए। दुनिया से भागने का अर्थ है सच्चे पारिवारिक जीवन और नागरिकता में स्वयं को स्थापित करना; फिर भी बाकी सब कुछ इस तरह मानना जैसे कि वह हमारा नहीं है, जैसे कि उससे हमारा कोई लेना-देना नहीं है। *जो लोग दुनिया का उपयोग करते हैं, वे ऐसा इस तरह करें जैसे कि वे इसका उपयोग नहीं करते* (1 कुरिन्थियों 7:31)।

ऐसा क्यों करना चाहिए, यह स्वयंसिद्ध है। जो व्यर्थ है और जुनून में डूबा हुआ है, वह अनिवार्य रूप से हमारे आत्माओं में भी वही भर देता है, जो जुनून को भड़काता या पैदा करता है। जैसे कोयले के पास चलने वाला काला हो जाता है, या आग को छूने वाला जल जाता है, वैसे ही सांसारिक मामलों में भाग लेने वाला भी जुनूनी और अधर्मी चीजों से भर जाता है। इसलिए, एक बार दुनिया में फँस जाने पर, पश्चातापी व्यक्ति फिर से गिर जाता है, और निर्दोष भ्रष्ट हो जाते हैं। यह लगभग अपरिहार्य है। तुरंत ही मन मुरझा जाता है; विस्मृति, कमजोरी, कैद और लूट-पाट उत्पन्न होती है, जिसके बाद हृदय को चोट पहुँचती है, फिर वासना और उसके परिणाम—और व्यक्ति गिर जाता है। भ्रष्टाचार की सभी कहानियाँ इसकी गवाही देती हैं; ठीक उसी तरह जैसे धर्म की ओर मुड़े हुए सभी लोग इस बात की गवाही देते हैं कि उन सभी चीजों को पीछे छोड़ना कितना अपरिहार्य और आवश्यक है, क्योंकि वे इन सभी रीति-रिवाजों से आग से भागने की तरह भागते हैं।

जहाँ तक इस बात का सवाल है कि वास्तव में क्या और कैसे त्यागना है, तो अनुभव हमारे धर्मग्रंथों से बेहतर सिखाता है।

नियम यह है: उस नए जीवन के लिए जो भी खतरनाक हो, जो वासना जगाता हो, घमंड लाता हो और आत्मा को

बुझाता हो, उसे त्याग देना चाहिए—और इसमें कितनी विविधता है! इसका पैमाना प्रत्येक उस व्यक्ति का हृदय हो जो केवल दिखावे के लिए नहीं, बल्कि बिना किसी कपट के सच्चे मन से मोक्ष की खोज करता है। वर्तमान में, रंगमंच, नृत्य-समारोह, नाचना, संगीत, गायन, यात्रा, सैर, मेलजोल, चुटकुले, हाज़िरजवाबी, हँसी, व्यर्थ के मनोरंजन और यहाँ तक कि उठने, सोने, खाने आदि के समय—इन सभी को अलग रखना और बदलना होगा। दूसरे समयों और स्थानों में, चीजें अलग हो सकती हैं। लेकिन नियम हमेशा एक ही है: उस चीज़ को त्याग दें जो जीवन के लिए हानिकारक और खतरनाक है, जो आत्मा को बुझा देती है। लेकिन वह वास्तव में क्या है? किसी एक व्यक्ति के लिए यह सबसे तुच्छ चीज़ हो सकती है, शायद एक परिचित चेहरे के साथ एक परिचित स्थान पर टहलना भी… *'मेरे लिए सब कुछ अनुमत है, पर सब कुछ लाभप्रद नहीं है'* (1 कुरिन्थियों :6)।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि संसार का त्याग करना अपने संपूर्ण बाहरी जीवन को शुद्ध करने, उससे सभी प्रकार की वासनाओं को हटाने, और उसे शुद्ध चीज़ों से बदलने के सिवा और कुछ नहीं है—ऐसी चीज़ें जो आध्यात्मिक जीवन में बाधा न डालें बल्कि उसकी सहायता करें—पारिवारिक जीवन, निजी जीवन और सार्वजनिक जीवन में; सामान्य रूप से, घर और बाहर, दूसरों के साथ और अपने पेशेवर दायित्वों में, अपने बाहरी आचरण का एक ढाँचा स्थापित करना; नए जीवन की आत्मा की माँगों के अनुसार, हर चीज़ को नियमों द्वारा परिभाषित करना, घर में हर तरह से व्यवस्था स्थापित करना, अपने पेशेवर जीवन में व्यवस्था, और परिचितों और व्यवहारों में व्यवस्था—किसे, कब और कैसे।

यह कैसे किया जाए? यथासंभव, लेकिन ऐसा परामर्श और चिंतन के साथ, किसी आध्यात्मिक पिता या उस व्यक्ति के मार्गदर्शन में करें जिसमें व्यक्ति को विश्वास हो। कुछ लोग ऐसा अचानक करते हैं और, ऐसा लगता है, अधिक प्रभावी ढंग से, जबकि अन्य धीरे-धीरे ऐसा करते हैं। व्यक्ति को, बिल्कुल पहले क्षण से ही, हृदय से सांसारिक और पापी सभी चीजों से घृणा करनी चाहिए और उससे अलग रहना चाहिए, उसकी इच्छा न करते हुए और उसमें कोई आनंद न लेते हुए। *'दुनिया से प्रेम न करो, और न ही दुनिया की वस्तुओं से* (1 यूहन्ना 2:15)। दुनिया का इस आंतरिक त्याग के बाद, बाहरी त्याग या तो अचानक हो सकता है या धीरे-धीरे। एक आत्मा से कमजोर व्यक्ति लंबे संघर्ष को सहन नहीं करेगा, दृढ़ नहीं रहेगा, सुस्त हो जाएगा और गिर जाएगा। यह विशेष रूप से उन लोगों के लिए सच है जो कामुक वासनाओं से ग्रस्त हैं, जो एक दूसरी प्रकृति की ताकत ले लेती हैं। इसलिए, ऐसे लोगों को अनिवार्य रूप से एक ही बार में हर चीज़ से अलग हो जाना चाहिए, और उस स्थान से पीछे हट जाना चाहिए जहाँ वे पाप में लिप्त थे। उत्साह की मजबूत भावना वाला व्यक्ति इसे सहन कर लेगा, भले ही धीरे-धीरे; फिर भी दोनों ही मामलों में, धर्म-परिवर्तन के बिल्कुल पहले क्षण से ही, पापी दुनिया और जो कुछ भी सांसारिक है, उससे सभी संपर्क को पूरी तरह से बंद करना अत्यंत आवश्यक है, जब तक कि एक नए जीवन के ढाँचे स्थापित नहीं हो जाते। यह ठीक वैसा ही है जैसे किसी नए रोपे गए पेड़ को हवा से बचाना, जो भले ही हल्की हो, फिर भी उसे गिरा सकती है क्योंकि उसकी जड़ें अभी मजबूती से नहीं जमी होतीं।

यह धारणा कि कोई व्यक्ति दुनिया और सांसारिकता से चिपके हुए ईसाई जीवन जी सकता है, एक खोखली, भ्रामक धारणा है। जो कोई भी इसके आधार पर जीता है, वह पाखंड और दिखावे के जीवन से अधिक कुछ नहीं सीखेगा; अर्थात्, वे केवल अपनी ही नजर में ईसाई होंगे, पर वास्तविकता में नहीं। शुरुआत में, वह एक हाथ से उस चीज़ को नष्ट कर देगा जिसे उसने दूसरे हाथ से बनाया है; यानी, जो कुछ दुनिया से दूर रहते हुए इकट्ठा किया गया है, वह उसमें पहले ही कदम पर फिर से बिखर जाएगा, और इससे सीधे महज राय तक का संक्रमण होता है। जो हृदय से खो जाता है, वह स्मृति और कल्पना में बना रह सकता है। अब, पहले की बातों को याद करते और कल्पना करते हुए, कोई व्यक्ति सोच सकता है कि वे वास्तव में अभी भी मौजूद हैं, जबकि वास्तविकता में वे लुप्त हो चुके हैं, और स्मृति में केवल एक निशान छोड़ गए हैं। और वे सोचेंगे कि उनके पास वह है जो, वास्तव में, उनके पास नहीं है। न्याय यह है: *जिनके पास नहीं है, उनसे वह भी छीन लिया जाएगा, जिसे वे सोचते हैं कि उनके पास है* (लूका 8:18)। और केवल राय से, फरीसीवाद तक केवल एक कदम है। हालाँकि, कठोर फरीसीवाद एक भयानक अवस्था है। यह भयानक है, हालांकि; लेकिन संसार का त्याग करने के बाद क्या किया जाए? यह केवल बाहर से भयानक है; भीतर, संसार का त्याग स्वर्ग में प्रवेश है। निश्चित रूप से, तुरंत कड़वाहट, दुःख और हानि होगी: तो क्या? — धैर्य से खुद को मजबूत करो। कौन सी अधिक कीमती है: संसार या आत्मा, समय या अनंत काल? छोटी चीज़ को त्याग दो — और वह ले लो जिसे किसी भी मानक से मापा नहीं जा सकता। हालाँकि, ऐसा होता है कि दुनिया का प्रबल दबाव केवल शुरुआत में ही महसूस होता है; बाद में यह कम हो जाता है, कम हो जाता है, और जो दुनिया छोड़ चुके होते हैं वे शांति में रह जाते हैं, क्योंकि दुनिया में कुछ ही लोग हैं जिन्हें बहुत मान दिया जाता है—वे कुछ समय के लिए इसके बारे में बात करेंगे, और फिर वे भूल जाएँगे। जो संसार को त्याग चुके हैं, वे मृतकों के समान हैं। अतः, संसार की तुच्छता और अहंकार को देखते हुए—यह देखते हुए कि वह वर्तमान को प्रेम करता है और बाकी सब कुछ भूल जाता है—संसार की शत्रुता से बहुत अधिक डरने की आवश्यकता नहीं है। यह एक तमाशा है: यह केवल उन्हीं लोगों के लिए चिंतित रहता है, या उन्हीं को अपने

भीतर समाए रखता है जो इसमें हैं; अन्य लोगों की परवाह यह कम ही करता है।

इस प्रकार, चाहे आत्मा की शक्तियों के विकास की ओर निर्देशित प्रयासों के माध्यम से हो, या शरीर के सभी अंगों—विशेषकर उन अंगों के जो आत्मा के सबसे निकट हैं—पर संयम के माध्यम से हो, या अपने बाहरी आचरण के शुद्धिकरण के माध्यम से, एक अच्छा और स्थायी सुरक्षा कवच चाहने वाला व्यक्ति अपने आंतरिक स्वरूप की रक्षा करेगा। एकांत में इन प्रारंभिक आध्यात्मिक और मानसिक प्रयासों के माध्यम से आंतरिक रूप से स्वयं को मजबूत करने के बाद, और शरीर को संयम में रखते हुए, वह पारिवारिक, नागरिक या सामुदायिक मामलों की ओर बढ़ता है—ऐसे मामलों की ओर जो ईश्वर की इच्छा के अनुसार शुद्ध और उद्धारकारी हैं—और इन सभी के माध्यम से वह आत्मा में दृढ़ होता है, या, कम से कम, भ्रष्ट नहीं होता।

एक और चीज़ है जो उसे विचलित कर सकती है—चीज़ों का अनवरत दृश्य और ध्वनि—कुछ सांसारिक, कुछ साधारण—जो, केवल इसलिए कि वे आत्मा को प्रभावित करती हैं, उसका ध्यान खींचती हैं और इस प्रकार उसकी शांति छीन लेती हैं। यदि ये मार्ग भी बंद कर दिए जाएँ, तो आंतरिक शांति अबाधित रहेगी। स्पष्ट रूप से, इस उद्देश्य के लिए सबसे निश्चित और निर्णायक साधन इंद्रियों का संयम है, लेकिन यह हर किसी के लिए संभव या आवश्यक नहीं है। इसलिए, पवित्र पिताओं ने एक उद्धारकारी उपाय निकाला: बाहरी चीजों के प्रभावों के लिए खुले रहना, फिर भी उनसे विचलित न होना, बल्कि आत्मा का निर्माण करना। इसमें हर वस्तु, हर देखी और सुनी गई चीज़ को एक आध्यात्मिक महत्व देना, और इस आध्यात्मिक महत्व के विचार में इतने दृढ़ता से स्थापित हो जाना शामिल है कि किसी वस्तु को देखते समय, चेतना को वस्तु स्वयं नहीं बल्कि उसका महत्व स्पर्श करता है। जो कोई भी अपनी राह में आने वाली हर चीज़ के संबंध में ऐसा करता है, वह निरंतर एक विद्यालय में चलने जैसा अनुभव करेगा… प्रकाश और अंधकार, मनुष्य और पशु, पत्थर और पौधा, घर और खेत — सब कुछ , हर छोटी से छोटी बारीकी तक, उसके लिए एक सबक होगा; बस इसे अपने लिए व्याख्यायित करना है और उस समझ में दृढ़ता से स्थापित होना है। और यह कितना उद्धारकारी है! 'आप रो क्यों रहे हैं?' शिष्यों ने उस वृद्ध से पूछा, जिसने एक सुंदर, भव्य पोशाक पहने महिला को देखा था। उसने उत्तर दिया, 'मैं रोता हूँ, ईश्वर की बुद्धिमान प्राणियों के विनाश के लिए, और इसलिए कि मेरे पास अपनी आत्मा के उद्धार के लिए उतनी लगन नहीं है, जितनी कि उसके पास अपने शरीर के विनाश के लिए है…' एक अन्य ने, अपनी पत्नी को कब्र पर रोते हुए सुना और कहा: 'एक ईसाई को अपने पापों के लिए इसी तरह रोना चाहिए।'

ऐसे ही कर्म हैं जिनसे आत्मा, शरीर और हमारा बाहरी आचरण नए जीवन की आत्मा के अनुसार ढला है, जब आत्मा रूपांतरण में ईश्वर की कृपा से जीवंत हो जाती है, और संकल्प, व्रत और पवित्र संस्कारों द्वारा उनकी मुहर लगने तक प्रगति करती है। लेकिन जैसे परमेश्वर के प्रति परिवर्तन तब अस्थिर होता है जब तक कि उसे संस्कारों के माध्यम से अनुग्रह द्वारा सील नहीं किया जाता, वैसे ही, उसके बाद हमेशा के लिए, उत्साह अस्थिर, परिश्रम शक्तिहीन, इच्छा कमजोर और जीवन क्षीण रहता है, जब तक कि कोई पाप-स्वीकृति और पवित्र कुम्यूनियन के दैवी संस्कारों के माध्यम से नया नहीं हो जाता। उत्साह से प्रकट होने वाला ईसाई जीवन, अनुग्रह का जीवन है; परिणामस्वरूप, इसे संरक्षित करने, पोषित करने और पुनर्जीवित करने का सबसे शक्तिशाली साधन दिव्य अनुग्रह का आहरण और ग्रहण ही होना चाहिए। कुछ विशिष्ट तत्व हैं जो हमारे शारीरिक जीवन को पोषित करते हैं; ऐसे तत्व भी हैं जो हमारे आध्यात्मिक जीवन को पोषित करते हैं। ये संस्कार हैं।

यह ठीक हमारे आध्यात्मिक जीवन के पोषण और उत्थान के लिए ही है कि प्रभु ने हमें शरीर और रक्त का संस्कार दिया है। प्रभु ने कहा, *'मैं जीवित रोटी हूँ; मेरा मांस सच्चा भोजन है, और मेरा रक्त सच्चा पेय है;* इसलिए, *जो कोई इस रोटी को खाएगा वह अनंतकाल तक जीवित रहेगा* (यूहन्ना 6:51–58)। आध्यात्मिक जीवन प्रभु के साथ एकता का परिणाम है; उनके अलावा और उनके बिना, हमारा कोई सच्चा जीवन नहीं है। लेकिन वे कहते हैं: *'जो मेरा मांस खाता है और मेरा रक्त पीता है, वह मुझ में वास करता है, और मैं उसमें ...' 'मैं पिता के कारण जीवित हूँ; वैसे ही जो मुझे खाता है, वह मेरे कारण जीवित रहेगा* (यूहन्ना 6:56–57): अर्थात्, प्रभु के साथ एकता उनके शरीर और लहू को ग्रहण करने से स्थापित होती है। सच्चा आध्यात्मिक जीवन मज़बूत, सक्रिय और फलदायी होता है। लेकिन प्रभु कहते हैं: *'मेरे बिना तुम कुछ भी नहीं कर सकते'। जो मुझ में रहता है और मैं उसमें रहता हूँ, वह बहुत फल देता है* (यूहन्ना 15:5)। इन सब से यह निष्कर्ष निकलता है कि *जब तक आप मनुष्य के पुत्र के मांस को नहीं खाते और उसका लहू नहीं पीते, तब तक आपके भीतर जीवन नहीं होगा ... जो यह रोटी खाता है वह अनन्तकाल तक जीवित रहेगा* (यूहन्ना 6:51–53)।

यहाँ हमारे आध्यात्मिक जीवन के संरक्षण और उसे मजबूत करने का धन्य स्रोत है! इसलिए, ईसाई धर्म की शुरुआत से ही, भक्ति के सच्चे उत्साही लोगों ने बार-बार संप्रभु भोज को सबसे बड़ी आशीष माना है। प्रेरितों के समय में, इसका हर जगह अभ्यास किया जाता था: सभी ईसाई प्रार्थना और रोटी तोड़ने, यानी संप्रभु भोज ग्रहण करने में लगे रहते थे। बेसिल द ग्रेट, सीज़र को लिखे अपने पत्र में कहते हैं कि प्रतिदिन शरीर और रक्त का सेवन करना उद्धारकारी है, और अपने जीवन के बारे में वे लिखते हैं: 'हम सप्ताह में चार बार भाग लेते हैं।' और सभी संतों की यही सामान्य धारणा है: कि बिना कम्युनियन के कोई मोक्ष नहीं है, और बार-बार कम्युनियन के बिना जीवन में कोई प्रगति नहीं है।

लेकिन प्रभु—जीवन का स्रोत, जो उन लोगों को जीवन देते हैं जो उनमें भाग लेते हैं—एक भस्म करने वाली आग भी हैं। जो योग्य रूप से भाग लेता है, वह जीवन में भाग लेता है, जबकि जो अयोग्य रूप से भाग लेता है, वह मृत्यु में भाग लेता है। यद्यपि यह मृत्यु स्पष्ट रूप से नहीं होती, यह हमेशा एक व्यक्ति की आत्मा और हृदय में अदृश्य रूप से घटित हो रही होती है। जो लोग अयोग्य रूप से भाग लेते हैं, वे आग की अंगारों या लोहे की स्लैग की तरह अलग हो जाते हैं। या तो मृत्यु का बीज स्वयं शरीर के भीतर बो दिया जाता है, या यह वहीं और उसी समय घटित होता है, जैसा कि प्रेरित के अवलोकन (1 कुरिन्थियों 29–30) के अनुसार कोरिन्थ की कलीसिया में हुआ था। इसलिए, किसी को भी भय और कांपते मन के साथ तथा उचित तैयारी के साथ पवित्र सहभागिता ग्रहण करनी चाहिए।

यह तैयारी मृत कर्मों से अपनी अंतरात्मा को शुद्ध करने में निहित है। प्रेरित सिखाते हैं, *'मनुष्य अपना परीक्षण करे, और तब वह इस रोटी में से खाए और इस प्याले में से पिए* (1 कुरिन्थियों 11:28)। पाप से घृणा और उससे हर तरह से मुंह मोड़ने के संकल्प के साथ किया गया पाप-स्वीकार, अपनी कृपा से, एक व्यक्ति की आत्मा को अकल्पनीय ईश्वर को धारण करने में सक्षम पात्र बना देता है। दृढ़ संकल्प और प्रतिज्ञा ही वह स्थान है जहाँ प्रभु यूखरिस्त में हमारे साथ संवाद करते हैं, क्योंकि यही हमारे भीतर का एकमात्र शुद्ध भाग है; बाकी सब अशुद्ध है। इसलिए, कोई भी अपने आप में योग्य नहीं होता; बल्कि, केवल प्रभु ही हैं, जो अपनी कृपा से, उनके पश्चातापपूर्ण अंगीकार और प्रतिज्ञा के कारण उन्हें योग्य ठहराते हैं।

इस मामले को यहीं तक सीमित किया जा सकता है: योग्य होकर पाप-स्वीकृति करो, और आप एक योग्य सहभागी बनेंगे। लेकिन पाप-स्वीकृति स्वयं एक संस्कार है, जिसके लिए योग्य तैयारी की आवश्यकता होती है; और, इसके अलावा, इसकी पूर्णता तक पहुँचने के लिए, यह विशिष्ट कार्यों, भावनाओं और मनोवृत्तियों की माँग करती है जिन्हें एक साथ पूर्ण और प्रकट नहीं किया जा सकता, बल्कि इसके लिए समय और, एक तरह से, उन पर विशेष भक्ति की आवश्यकता होती है। इसलिए, इसे हमेशा एक सुस्थापित अनुष्ठान के अनुसार किया गया है, जिसमें इसके लिए तैयारी हेतु प्रारंभिक कृत्य और अभ्यास शामिल हैं, जो या तो अपने पापों की बेहतर समझ को बढ़ावा देने, या उन पर पश्चाताप को जगाने और प्रकट करने, या संकल्प के संकल्प को मजबूत करने का काम करते हैं। कुल मिलाकर, ये **तैयारी की अवधि** बनाते हैं।

इसलिए, यह निष्कर्ष निकलता है कि संस्कारों के माध्यम से अनुग्रह के जीवन को ऊँचा उठाने और मजबूत करने के लिए, व्यक्ति को उपवास की एक अवधि का पालन करना चाहिए, जिसमें इसके सभी आवश्यक तत्व शामिल हों—अर्थात्, पाप-स्वीकार के लिए जाना और इस प्रकार स्वयं को तैयार करके, योग्य रूप से पवित्र सहभाग प्राप्त करना। अतः, उपवास की एक अवधि का पालन करना चाहिए, या यूँ कहें कि उपवास की एक अवधि को अपनाना चाहिए, क्योंकि यह हमारे लिए पवित्र चर्च द्वारा पहले से ही स्थापित की जा चुकी है। चार उपवासों की स्थापना इसी उद्देश्य से की गई है, ताकि धर्मपरायण लोग इनके दौरान उपवास कर सकें, पाप-स्वीकृति कर सकें और पवित्र कम्युनियन प्राप्त कर सकें। अतः, यह नियम बनाया जाना चाहिए कि पूर्णता की खोज करने वालों को वर्ष में चार बार, सभी प्रमुख उपवासों के दौरान उपवास करना चाहिए। यह वास्तव में *ऑर्थोडॉक्स कन्फेशन* में लिखा है। हालाँकि, यह उन उत्साही लोगों को अधिक बार, या यहाँ तक कि लगातार उपवास करने से नहीं रोकता है; और न ही यह उन लोगों पर एक बोझ के रूप में थोपा गया है, जो अपनी परिस्थितियों के कारण इसे पूरा करने में असमर्थ हैं। बस इतना करना चाहिए: साल में चार बार उपवास करने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा दें। सामान्य लोगों के लिए, चार बार उपवास करना एक मामूली, मध्यम उपाय है और, जैसा कि अनुभव ने दिखाया है, एक बहुत ही उद्धारकारी उपाय है। जो ऐसा करते हैं वे बाकी लोगों से अलग नहीं दिखते, और इसलिए वे उनसे आगे निकलने का घमंड नहीं करेंगे। हालाँकि, महान लेंट और क्रिसमस लेंट के दौरान दो बार उपवास करना—शुरुआत में और अंत में—अनुमत है। इससे उपवास की कुल छह अवधियाँ हो जाएँगी।

उपवास को संयम, या चर्च के विधानों के अनुसार उपवासों का उचित पालन, से अलग किया जाना चाहिए। यह उपवास का ही एक हिस्सा है, लेकिन भोजन और नींद के संबंध में अपनी अधिक कठोरता में और इस बात में कि यह हमेशा अन्य धार्मिक गतिविधियों के साथ संयुक्त होता है, इससे भिन्न है, जैसे: यथासंभव सांसारिक चिंताओं और कार्यों को अलग रखना; सक्षम लोगों के लिए पवित्र पुस्तकों का पाठ करना; निर्धारित सेवाओं के लिए चर्च में नियमित रूप से उपस्थित होना;

और इसी तरह। आम तौर पर, यह समय पूरी तरह से धार्मिक कार्यों को समर्पित होता है, जिनका उद्देश्य उपयुक्त तरीके से पश्चाताप और स्वीकारोक्ति करना, और बाद में पवित्र Communion प्राप्त करना होता है।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि, समग्र रूप से, लेंट में अपने पूरे जीवन की शुद्धि, इसके पूरे क्रम की बहाली, अपने उद्देश्यों पर पुनः ध्यान केंद्रित करना, प्रभु के साथ मिलन का नवीनीकरण, और आत्मा तथा हमारे पूरे अस्तित्व का नवीनीकरण शामिल है। यह एक मैले कपड़े को धोने या यात्रा के बाद स्नानघर में स्नान करने के समान है। एक ईसाई यात्रा पर है और, चाहे वे कितने भी सावधान क्यों न हों, धूल—उग्र विचारों और पाप के दागों—से बच नहीं सकता। अपवित्रता चाहे कितनी भी मामूली क्यों न हो, यह आँख में धूल के एक कण या घड़ी में रेत के एक दाने के समान है—आँख देख नहीं सकती, घड़ी चलती नहीं है। इसलिए, समय-समय पर स्वयं को शुद्ध करना आवश्यक है। तो फिर, कलीसिया में हमारे लिए इसे कितनी बुद्धिमानी से व्यवस्थित किया गया है, और ऐसे संस्थान के प्रति विनम्रता से समर्पित होना कितना उद्धारकारी है!

यही उपवास का महत्व है! यह हमारे भीतर जीवन को पोषित करने, उसे गर्माहट देने और संरक्षित रखने का एक साधन है, लेकिन सबसे बढ़कर, यह हमारे जीवन, हमारी कमियों और उनके कारणों की एक गहन समीक्षा है, और उनसे बचने के तरीके स्थापित करने का कार्य है। जब पापों को पहचाना जाता है, पश्चाताप और घृणा के साथ हृदय से बाहर निकाल दिया जाता है, और एक संकल्प के साथ पाप-स्वीकार द्वारा धोया जाता है, तो पात्र तैयार हो जाता है। पवित्र सहभागिता में, प्रभु आते हैं और योग्य लोगों की आत्मा के साथ मिलन करते हैं, जिन्हें यह महसूस करना चाहिए: *मैं अकेला नहीं हूँ, बल्कि आपके साथ हूँ।*

लगातार उपवास की ओर

उपवास एक एकल क्रिया है, लेकिन उपवास की भावना को अखंड गतिविधि की अवस्था तक ऊँचा उठाया जाना चाहिए; और इसके लिए, कुछ ऐसे अभ्यास करने चाहिए जो इसे दृढ़ता से जड़ जमाने में मदद करते हैं।

चूंकि प्रायश्चित में तीन पवित्र करने वाले कार्य शामिल हैं—उपवास, पापस्वीकार और पवित्र सहभागिता—इन तीनों को अधिकतम निरंतरता या अधिकतम आवृत्ति तक ऊँचा उठाया जाना चाहिए। इसके लिए, एक को चाहिए:

क) उपवास के संबंध में

1. सभी प्रमुख उपवासों का पालन करें (जो कई दिनों तक चलते हैं — *संपादक*) या उपवास की अवधि को तपस्या में बिताएँ, अर्थात् केवल संयम से परे जाकर, ताकि शरीर स्वयं वंचितता, अभाव और असुविधा को महसूस करे। तपस्या के लिए उपवास के दिनों की एक विशिष्ट संख्या निर्धारित की जाती है, जिसके दौरान अपनी सामान्य गतिविधियों को त्यागकर अपना ध्यान पूरी तरह से अंतरात्मा की शुद्धि पर केंद्रित किया जाता है; तपस्या के दौरान, दैनिक जीवन सामान्य रूप से जारी रहता है; उपवास कम कर दिया जाता है, और अन्य गतिविधियाँ परिस्थितियों के अनुसार निर्धारित होती हैं। केवल देह की यातना, सभी सुखों के त्याग के साथ—जैसा कि शोक के समय के लिए उपयुक्त है—आत्मा को हल्का करती है और ईश्वर की दया को आकर्षित करती है। आध्यात्मिक विकास का यह कितना शक्तिशाली साधन है!

2. बुधवार और शुक्रवार को उपवास करना। समय-समय पर, यह एक व्यक्ति को दृढ़ता से याद दिलाता है कि वे स्वतंत्र नहीं हैं, बल्कि बंधन में हैं, एक बोझ के अधीन हैं; यह कामुकता के प्रवाह को रोकता है, संयम लाता है और ऊर्जा प्रदान करता है; यह, मानो, लगाम और लगाम के साथ एक उत्साही घोड़े को संक्षेप में काबू करने जैसा है।

3. इसके अलावा, अन्य दिनों पर भी, विशेष रूप से सोमवार को, स्वेच्छा से उपवास करना, जैसा कि प्रथा है। कुछ लोग स्वयं को कुछ प्रकार के भोजन से वंचित रखते हैं और लगातार केवल उपवास का भोजन ही करते हैं, जबकि अन्य ऐसा हर दूसरे दिन करते हैं, और इसी तरह। उपवास के विभिन्न रूप हैं, और सभी अपने-अपने सामर्थ्य और उत्साह के अनुसार लाभकारी और अनुशंसित हैं।

ख) पाप-स्वीकार के संबंध में

1. कोई भी पाप जो किसी की अंतरात्मा पर बोझ बनता है, उसे उपवास के किसी विशेष समय की प्रतीक्षा किए बिना, पश्चाताप के माध्यम से तुरंत शुद्ध किया जाना चाहिए। इसे अपने दिल में एक दिन के लिए भी पालना अच्छा नहीं है, और एक घंटे के लिए भी नहीं, क्योंकि पाप अनुग्रह को दूर भगा देता है, मनुष्य से निडरता और प्रार्थना छीन लेता है, और जितना अधिक समय तक इसे बनाए रखा जाता है, उतना ही यह हृदय को कठोर और ठंडा कर देता है। लेकिन जब पश्चाताप के माध्यम से इसे बाहर फेंका जाता है, तो यह आँसुओं की मार्मिक ओस को पीछे छोड़ जाता है।

२. हर दिन, सोने से पहले, मनुष्य को प्रभु के सामने निजी तौर पर पाप-स्वीकृति करनी चाहिए, जिसमें विचारों, इच्छाओं, भावनाओं और जुनूनी आवेगों में सभी पाप, साथ ही धार्मिक कार्यों में सभी अशुद्धताएँ, पश्चाताप की भावना के साथ ईश्वर के सामने उजागर की जाती हैं, यह मानते हुए कि, यद्यपि यह प्रतीत होता है कि यह मनुष्य की इच्छा के विरुद्ध किया गया है, फिर भी वह हमारे भीतर मौजूद है और हमें परमेश्वर के सामने और हमारे अपने पवित्रता और पूर्णता के बोध के सामने अपवित्र और अयोग्य बना देता है। जब कोई सोने जाता है, तो वह, मानो, दूसरी दुनिया में चला जाता है; पाप-स्वीकृति इसके लिए उसे तैयार करती है। नींद के दौरान, दिन भर जो कुछ जमा हुआ होता है, वह हमारे स्वभाव का ही हिस्सा बन जाता है—उसे शुद्ध किया जाना चाहिए, और जो अयोग्य है उसे पश्चाताप के साथ त्याग दिया जाना चाहिए; इसके बाद, सब कुछ शुद्ध हो जाता है।

३. हर क्षण पाप-स्वीकृति का अभ्यास करना, अर्थात्, जैसे ही कोई इसके प्रति सचेत होता है, एक पश्चात्तापी आत्मा के साथ, हर बुरे और अशुद्ध विचार, हर इच्छा, भावना और प्रवृत्ति को सर्व-द्रष्टा ईश्वर के सामने स्वीकार करना, और क्षमा तथा भविष्य में ऐसी चीजों से बचने की शक्ति माँगना; ठीक उसी क्षण जैसे कोई स्वयं को अशुद्धि से शुद्ध करता है। यह अभ्यास सबसे अधिक उद्धारकारी है। यह धूल में चलते समय अपनी आँखें पोंछने जैसा है; इसके लिए हृदय का पूर्ण ध्यान आवश्यक है। जो व्यक्ति पहले से ही संयत है, वह हमेशा परिश्रमी और उत्साही होता है। इसके विपरीत, पश्चाताप और प्रायश्चित द्वारा विचारों और इच्छाओं को शुद्ध न करके, व्यक्ति हृदय में एक घाव छोड़ देता है। और कितने अनदेखे घाव हैं, कितनी पीड़ाएँ! तो क्या यह कोई आश्चर्य की बात है कि इसके बाद आत्मा में ठंडक आ जाती है और पतन हो जाता है? एक विचार दूसरे विचार की ओर और एक इच्छा दूसरी इच्छा की ओर आसानी से ले जाता है—सहमति, और वहाँ से, आंतरिक व्यभिचार और पतन। लेकिन जो व्यक्ति अविराम पश्चाताप करता है, वह लगातार स्वयं को शुद्ध करता है और अपने सामने का रास्ता साफ़ करता है।

४. अपने विचार साझा करना—अर्थात् किसी समान विचारधारा वाले व्यक्ति या अपने आध्यात्मिक पिता को कोई भ्रम, उलझन या नई अंतर्दृष्टि बताना, ताकि वे इसके गुण-दोष का निर्णय कर सकें और अपना फैसला सुना सकें। इस प्रकार, जड़ता और भटकाव से बचा जाता है; व्यक्ति स्वयं निर्णय लेने की आदत डालता है और, परिणामस्वरूप, उस समय की बचत होती है जो कभी-कभी व्यर्थ की सोच-विचार में बर्बाद हो जाता है। सबसे बढ़कर, अटूट सुरक्षा और विश्वास की अडिग दृढ़ता होती है, जो इच्छाशक्ति की दृढ़ता और कर्म की स्थिरता से जुड़ी होती है।

इन सभी कार्यों के माध्यम से, पाप-स्वीकृति वास्तव में अनवरत हो जाती है। आत्मा पश्चाताप, कोमलता, आत्म-नम्रता, प्रार्थनात्मक प्रणाम की अवस्था में बनी रहती है — और इस प्रकार वह जीवित रहती है। सभी कर्मों में से, यह उत्साह की भावना और भक्ति के जोश को बनाए रखने के लिए सबसे उपयुक्त है, इतना कि कुछ लोगों के लिए, उनके सभी कार्य, अपने और दूसरों के लिए, एक ही बात तक सीमित थे: हर पल पश्चाताप करना और अपने पापों पर रोना।

ग) पवित्र सहभागिता के संबंध में

1. मनुष्य को यथासंभव अधिक बार धर्मविधि में भाग लेना चाहिए और जब यह मनाई जा रही हो, तो उस समय अर्पित हो रहे ईश्वर के बलिदान में दृढ़ और प्रबल विश्वास के साथ खड़ा रहना चाहिए। शरीर और रक्त का संस्कार ईसाइयों के लिए दैवी पोषण है और यह एक बलिदान है। धर्मविधि में हर कोई संस्कार ग्रहण नहीं करता, न ही यह हमेशा ग्रहण किया जाता है, लेकिन बलिदान सभी द्वारा और सभी के लिए अर्पित किया जाता है। इसीलिए हर किसी को इसमें भाग लेना चाहिए। वे विश्वास के द्वारा, अपने पापों के लिए गहरी पश्चाताप के द्वारा, और प्रभु के प्रति विनम्र समर्पण के द्वारा भाग लेते हैं, जो स्वयं को संसार के जीवन के लिए एक बलिदान के रूप में—एक मेमने की तरह—समर्पित करते हैं। इस संस्कार का एक भी जीवंत मनन आत्मा को शक्तिशाली रूप से पुनर्जीवित और उत्साहित करता है। इसके अलावा, विश्वास और पश्चाताप हमेशा पापों की शुद्धि करते हैं, और अक्सर ईसाई के हृदय पर प्रभु का एक गुप्त स्पर्श करते हैं, जो उसे मीठा और पुनर्जीवित करता है, मानो यह एक आध्यात्मिक मिलन हो।

ऐसा स्पर्श शहद और छत्ते से भी मीठा है, और सभी आध्यात्मिक टॉनिक से भी अधिक स्फूर्तिदायक है। लेकिन यह याद रखना चाहिए कि यह पूरी तरह से ईश्वर का एक उपहार है। यह कब, किस पर, और कैसे प्रदान किया जाता है, यह स्वयं प्रभु पर निर्भर करता है। एक ईसाई को इसे श्रद्धा और आनंद के साथ ग्रहण करना चाहिए और जब यह प्रदान किया जाता है तो आनंदित होना चाहिए, लेकिन इसके लिए प्रयास नहीं करना चाहिए, न ही इसे प्राप्त करने के तरीके सोचने चाहिए; वास्तव में, इस पर भरोसा न करना बेहतर है कि यह हो रहा है या जो हो रहा है वह वास्तव में वही है। यह घमंड से बचने और भ्रम से सावधान रहने के लिए है।

२. यदि आप चर्च में नहीं हो सकते, तो पवित्र और दिव्य बलिदान के समय को एक आह और ईश्वर की ओर मुड़े बिना न बीतने दें; यदि संभव हो, तो प्रार्थना में खड़े हो जाइए और कुछ बार झुकिए। प्रकृति में कोई भी भयानक चीज़ सारी सृष्टि को काँपा देती है: उदाहरण के लिए, गरज, भूकंप, या तूफान। चर्च में दैवीय बलिदान के क्षण में, पृथ्वी और स्वर्ग पर सबसे भव्य और महान कार्य किया जा रहा होता है; फिर भी यह अदृश्य रूप से, आध्यात्मिक रूप से, असीम त्रिमूर्ति परमेश्वर, पवित्र स्वर्गदूतों, स्वर्गीय चर्च के संपूर्ण समुदाय, और पृथ्वी पर संघर्ष करने और जीने वाले सभी लोगों की आस्था की दृष्टि के सामने किया जाता है — अदृश्य, फिर भी वास्तविक। यही कारण है कि विश्वासी को इन क्षणों को बिना ध्यान दिए नहीं जाने देना चाहिए। लेकिन जब इन्हें याद किया जाता है, तो यह स्मरण ही आत्मा को प्रज्वलित करता है और उसे ईश्वर तक उठाता है, और इस प्रकार अनुग्रह को आकर्षित करता है।

इस प्रकार उपवास के अनुशासन निरंतरता के करीब आ सकते हैं, ताकि वे आंतरिक भक्ति के साथ मिलकर, निरंतर उत्साह और शक्ति के साथ, उत्साह की प्रबलता और खोज की भावना को बनाए रख सकें, और उसकी मदद से, सभी आध्यात्मिक और शारीरिक प्रयासों को हमारे आंतरिक स्वरूप के नवीनीकरण और सुदृढ़ीकरण के लिए मोक्ष के साधन में बदल सकें।

मार्गदर्शक नियमों का सामान्य क्रम ऐसा ही है। जीवन के सार पर आधारित होने के कारण, यह प्रभु की खोज करने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए अत्यंत आवश्यक है। लेकिन यहाँ केवल सिद्धांत, नियमों की भावना और शक्ति का ही उल्लेख किया गया है: उदाहरण के लिए, शरीर के संबंध में — सभी शारीरिक कार्यों में देह की कठोर तपस्या; या बाहरी जीवन के संबंध में — जुनून की भावना से ओत-प्रोत हर चीज़ से विरक्ति, आत्मा का अपनी पूरी शक्ति के साथ समर्पण, और अनुग्रह के साधनों के प्रभाव में चलना। ये तपस्या की गतिविधि के आवश्यक बिंदु हैं। जहाँ तक इन सिद्धांतों के अनुप्रयोग का प्रश्न है, व्यक्तियों की विविध परिस्थितियों को देखते हुए, यह भी विविध होना चाहिए, और इस मामले में एक नियम निर्धारित करना असंभव है। उदाहरण के लिए, मन को ठीक करने के लिए, पवित्र चर्च द्वारा समझी गई दिव्य सच्चाइयों को उस पर अंकित करना चाहिए। यह ईश्वर के वचन, धर्मपिता की शिक्षाओं, संतों के जीवन और उपदेशों से प्रेरणा लेकर पढ़ने, सुनने और चर्चा करने के माध्यम से हासिल किया जा सकता है। यह आध्यात्मिक पिता पर निर्भर है कि वह यह परखें कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए कौन सी विधि सबसे उपयुक्त है और इसे कैसे किया जा सकता है। कोई भी व्यक्ति जैसा भी कर सकता है, उसे बस वैसा ही कर लेना चाहिए। क्योंकि, यद्यपि तपस्या अपने आप में एक ही अवधारणा है, यह अनंत रूपों में प्रकट होती है। बस यह ध्यान में रखना चाहिए कि एक आध्यात्मिक पिता जो विभिन्न रियायतों और अनुलाभों के माध्यम से उत्साह की भावना को बुझा देता है, या जो ठंडा पड़ रहे लोगों को शांत करके सुला देता है, वह आत्माओं का विनाशक और एक हत्यारा है; क्योंकि मार्ग केवल एक ही है—संकीर्ण और दुःखद।

इस सब का सबसे पूर्ण और सबसे सफल साकार रूप संन्यासवाद में मिलता है। यह जीवन का एक ऐसा तरीका है जो अपने सर्वोत्तम, शुद्धतम और सबसे परिपूर्ण रूप में, तपस्या की मांगों को सटीक रूप से आत्मा से ही पूरा करता है। यह कठिन और प्रायश्चितपूर्ण है; यह हमेशा उन लोगों से मिलकर बना होता है जो मार्गदर्शन करते हैं और जो मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं; अपनी प्रकृति से बाहरी दुनिया से अलग, फिर भी अपनी प्रकृति से शरीर की जरूरतों से बँधा; यह आध्यात्मिक अभ्यास, अध्ययन, दिव्य पूजा, प्रार्थना और आज्ञाकारिता के अभ्यास के लिए सबसे बड़ा अवसर प्रदान करता है; यह विशेष रूप से जुनून के सक्रिय उन्मूलन के लिए उपयुक्त है, आम तौर पर अनासक्ति, तपस्या, बेचैनी और आत्म-भूल के माध्यम से, और विशेष रूप से एक आध्यात्मिक निर्देशक के मार्गदर्शन में। तब, एक सजग भिक्षु में, ईश्वर के लिए एक आंतरिक लालसा शीघ्र ही परिपक्व हो जाती है, सबसे दृढ़ आत्म-त्याग और सभी चीजों से विरक्ति के लिए, स्वयं में निवास करने की अधिक क्षमता के लिए, और प्रार्थना की भावना से प्रचुर रूप से पोषित होने के लिए। इसलिए, सजग भिक्षु शीघ्र ही यहाँ मौन की ओर, मन के एकांत की ओर बढ़ता है, और विश्राम के लिए एक स्थान पर पीछे हट जाता है—मरुभूमि या एक कोठरी में।

वासनाओं के विरुद्ध संघर्ष के नियम, या आत्म-प्रतिरोध के सिद्धांत

वर्णित तरीके से स्थित रहना, वासना को जड़ से उखाड़ फेंकने, और हमारे शुद्धिकरण तथा सुधार का एक शक्तिशाली और प्रभावी साधन है। इसमें पूर्ण जागरूकता और स्वतंत्रता के साथ रहते हुए, एक व्यक्ति, मानो जुनून को अलग रखकर, उसे नष्ट कर देता है, उसे पोषण से वंचित करके या उसे दबा देता है, जैसे जुए के नीचे, निर्धारित नियमों द्वारा अपनी पूरी ताकत और गतिविधि की हद तक। इस प्रकार दबाए गए भाव, एक पात्र के नीचे रखी मोमबत्ती की तरह बुझ जाते हैं। हालाँकि, केवल इसी

एक सकारात्मक गतिविधि तक स्वयं को सीमित रखना किसी भी तरह से संभव नहीं है। नियम उन शक्तियों के उपचार के रूप में स्थापित किए जाते हैं जो भ्रष्ट हो चुकी हैं और भावुकता में डूबी हुई हैं। उसी शक्ति को जो **बुराई** में **मौजूद है**, अब **भलाई** की ओर निर्देशित किया जाना चाहिए। इसलिए, किसी को भी गतिविधि की शुरुआत में और शक्तियों की पहली हलचल में, बुराई का सामना किए बिना नहीं रह सकता। यदि अच्छाई और बुराई सह-अस्तित्व में नहीं रह सकती हैं, और यदि हमसे शुद्ध अच्छाई—बिना किसी बुराई के मिश्रण के—की अपेक्षा की जाती है, तो शुद्ध अच्छाई को शुरू करने और पूरा करने के लिए हर प्रयास में बुराई को दूर करना आवश्यक है। इस प्रकार, ' ' के साथ निरंतर संबंध में, अपनी शक्तियों का प्रत्यक्ष, सकारात्मक प्रयत्न हमेशा एक अप्रत्यक्ष प्रयास के साथ होता है जो उनमें उत्पन्न होने वाले पाप और वासना को दूर करने की ओर निर्देशित होता है—दूसरे शब्दों में, **वासनाओं और कामनाओं के खिलाफ संघर्ष**। वर्णित उपलब्धियों में स्वयं को स्थापित करना, और उनमें प्रशिक्षण प्राप्त करना, संघर्ष और मुकाबले के माध्यम से, प्रलोभनों और मोह के ऊपर विजय के माध्यम से ही प्राप्त होता है। पेट के विरुद्ध संघर्ष किए बिना कौन कभी उपवास करने वाला तपस्वी रहा है, या आत्म-इच्छा और आत्म-अभिव्यक्ति को वश में किए बिना कोई सच्चा बाल-सदृश विश्वासी? और यह किसी एक पहलू पर ही नहीं, बल्कि सकारात्मक गतिविधि के पूरे क्रम पर, इसके सबसे भीतरी स्रोत से लेकर संसार से विरक्ति के अंतिम चरण तक लागू होता है। हर जगह संघर्ष है, इसलिए वर्णित व्यवस्था, शक्ति और प्रकृति को बहाल करते हुए, एक ही समय में अनवरत आध्यात्मिक युद्ध का मैदान भी है। शक्ति में जो अस्वाभाविक है उस पर विजय प्राप्त करें, और वह स्वाभाविक के आगे झुक जाएगा; बुराई को दूर भगाएँ और अस्वीकार करें—और आप अच्छाई देखेंगे। तपस्या अनवरत विजय है।

सभी आंतरिक विजयों की संभावना, नींव और शर्त स्वयं पर पहली विजय है—इच्छाशक्ति को तोड़ने और स्वयं को ईश्वर के हवाले करने में, और सभी पापपूर्ण चीजों को शत्रुतापूर्ण रूप से अस्वीकार करने में। यहाँ जुनून, घृणा और अरुचि के लिए एक अरुचि का जन्म हुआ, जो आध्यात्मिक सैन्य शक्ति है और जो अकेले ही पूरी सेना को बदल देती है। जहाँ यह अनुपस्थित है, वहाँ बिना लड़े ही जीत पहले से ही दुश्मन के हाथ में है; इसके विपरीत, जहाँ यह मौजूद है, वहाँ हमें अक्सर बिना लड़े ही जीत मिल जाती है। इससे यह स्पष्ट है कि जिस प्रकार हमारा अंतर्मन सकारात्मक कार्य की शुरुआत का बिंदु है, उसी प्रकार यह युद्ध की शुरुआत का बिंदु भी है, बस विपरीत दिशा में। चेतना और स्वतंत्र इच्छा, अच्छाई की ओर मुड़ना और उससे प्रेम, हर बुराई और हर जुनून को घृणा से नष्ट कर देते हैं—और, इसके अलावा, अपने ही जुनून को भी। वास्तव में, यही परिवर्तन का सार, मोड़ का बिंदु है। इसलिए, जो शक्ति भावनाओं के विरुद्ध संघर्ष करती है, वह भी मन, या आत्मा है, जिसमें चेतना और स्वतंत्रता निहित हैं—एक आत्मा जो अनुग्रह से पोषित और मजबूत होती है। इसके माध्यम से, जैसा कि हमने देखा है, सद्गुणों के कार्यों द्वारा उपचार की शक्ति संवेदनाओं तक पहुँचती है; इसके माध्यम से ही, संघर्ष में प्रहार करने वाली, विनाशकारी शक्ति भी संवेदनाओं तक पहुँचती है। और इसके विपरीत: जब संवेदनाएँ उठती हैं, तो वे सीधे मन या आत्मा को, अर्थात् चेतना और स्वतंत्रता को वश में करने का लक्ष्य रखती हैं। वे हमारे अंतर्मन के मंदिर में होते हैं, जहाँ दुश्मन, वासनाओं के माध्यम से, आत्मा-शरीर से घात की तरह अपने तपे-भुने तीर चलाता है। और जब तक चेतना और स्वतंत्रता अक्षुण्ण रहते हैं—अर्थात्, भलाई के पक्ष में खड़े रहते हैं—तब तक चाहे हमला कितना भी बड़ा क्यों न हो, विजय हमारी होती है।

हालाँकि, इसका यह अर्थ नहीं है कि विजय की संपूर्ण शक्ति हममें ही निहित है; यह केवल इसके स्रोत को प्रकट करता है। संघर्ष का केंद्रबिंदु हमारा पुनर्स्थापित आत्मा है; जो शक्ति कामवासनाओं को जीतती और नष्ट करती है, वह अनुग्रह है। यह हमारे भीतर एक को बनाता है जबकि दूसरे को ध्वस्त करता है—लेकिन फिर भी, आत्मा, या चेतना और स्वतंत्र इच्छा के माध्यम से। जो रोते-धोते लड़ता है, वह स्वयं को परमेश्वर के हवाले कर देता है, अपने शत्रुओं पर विलाप करता है और उनसे घृणा करता है, और परमेश्वर, उसमें और उसके द्वारा, उन्हें दूर भगा देता है और उन्हें मार गिराता है। *'हिममत रखो,'* प्रभु कहते हैं, *'मैंने जगत पर जय प्राप्त की है* (यूहन्ना 16:33)। प्रेरित स्वीकार करते हैं, *'मैं उस मसीह के द्वारा सब कुछ कर सकता हूँ जो मुझे सामर्थ्य देता है* (फिलिप्पियों 4:13)—ठीक वैसे ही जैसे, उसके बिना, हम कुछ भी नहीं कर सकते। जो कोई भी अपनी ताकत से जीतना चाहता है, वह निस्संदेह या तो उसी वासना का शिकार होगा जिससे वह लड़ रहा है, या किसी दूसरी वासना का। लेकिन जिसने स्वयं को परमेश्वर के हवाले कर दिया है, वह बिना किसी प्रयास के ही विजय प्राप्त कर लेता है। यह, फिर से, किसी के अपने प्रतिरोध को नकारता नहीं है, बल्कि केवल यह दिखाता है कि, सभी प्रतिरोधों के बावजूद, किसी की सफलता या विजय कभी भी हमारी अपनी नहीं हो सकती; और यदि वह मौजूद है, तो वह हमेशा परमेश्वर की ओर से होती है। इसीलिए आपको हर संभव तरीके से विरोध और संघर्ष करना चाहिए, लेकिन अपने सारे दुःख जीवित परमेश्वर पर डालना बंद न करें, जो कहते हैं: 'मैं बुराई के दिन में तुम्हारे साथ हूँ—डरो मत।'

तो फिर, एक व्यक्ति को अब कैसे काम करना चाहिए, या वासनाओं को वश में करने के लिए आम तौर पर कौन से तरीके उपयुक्त हैं? यह निर्धारित करने के लिए, किसी को भी अपने सभी दुश्मनों की जांच करनी चाहिए और उनकी पहचान

करनी चाहिए, साथ ही उन रूपों की भी पहचान करनी चाहिए जिनमें वे दिखाई देते हैं और काम करते हैं; इससे, उनके खिलाफ लड़ाई की प्रकृति अपने आप स्पष्ट हो जाएगी। लड़ाई में सफलता काफी हद तक इसकी पूरी संरचना की स्पष्ट समझ पर निर्भर करती है।

भलाई की ओर हमारी प्रगति कभी भी शांतिपूर्ण नहीं होती, क्योंकि हमारी वासनाएँ अभी भी जीवित हैं और वर्तमान दुनिया—जो व्यर्थ और दृश्यमान है—और उसमें शासन करने वाली अंधकारमय शक्तियों द्वारा उन्हें मजबूती से बनाए रखा जाता है। ये ही वे स्रोत हैं जिनसे हमारे भीतर भलाई के विरुद्ध आवेग उत्पन्न होते हैं।

परिवर्तन तक एक व्यक्ति पूरी तरह से जुनून के अधीन रहता है। परिवर्तन के बाद, उत्साह से भरा आत्मा शुद्ध हो जाता है। हालाँकि, आत्मा और शरीर वासनाओं के अधीन रहते हैं। जब उनका शुद्धिकरण और उपचार शुरू होता है, तो वे अपनी अस्तित्व की रक्षा के लिए, उन्हें चलाने वाली आत्मा का विरोध और विद्रोह करते हैं। ये विद्रोह मुख्य रूप से शारीरिक और मानसिक शक्तियों के माध्यम से किए जाते हैं और इन शक्तियों के आत्मा पर कब्ज़ा करने की हद तक, वे आत्मा को पीड़ित करते हैं। लेकिन ऐसी हरकतें भी हैं जो सीधे आत्मा पर निर्देशित होती हैं। ये वे तीखे तीर हैं जिन्हें दुश्मन, अपनी अत्याचार से भाग निकले बंदी पर, शरीर और आत्मा के घात से चलाता है। इसलिए, इस तथ्य के बावजूद कि हमारे भीतर एक हिस्सा है जो चंगा या संपूर्ण है, पाप के विद्रोह और जुनून स्वयं को प्रकट करते हैं और हमारे पूरे अस्तित्व में महसूस किए जाते हैं।

1. **शरीर में**: इनका मूल कारण शरीर का भोग, या शरीर की तृप्ति है, जिससे शारीरिक जीवन की प्रचुरता और कामुक आनंद सीधे तौर पर जुड़े हुए हैं। जहाँ ये मौजूद हैं, वहाँ कामुक इच्छा, लालच, कामुक भोग, आलस्य, नपुंसकता, इंद्रियों का भटकना, बकबक, चित्त की अस्थिरता, बेचैनी, हर बात में कामुकता, तुच्छता, व्यर्थ की बातें, उनींदापन, आँखों की नींद, सुख की प्यास, और हर प्रकार की सृष्टि जो कामुकता में देह को तृप्त करने के लिए बनाई गई हो।

२. **आत्मा में:** क) **बौद्धिक भाग में** — स्वच्छंदता, केवल अपनी बुद्धि पर निर्भरता, विपरीत स्वभाव, ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध विद्रोह, संदेह, अहंकार (घमंड — *सं.*) और घमंड, जिज्ञासा, मन का विचलन, विचारों का भटकना; ख) **इच्छाशील भाग में** — स्वच्छंदता, अवज्ञा, सत्ता की लालसा, क्रूरता, उद्यमशील भावना, दंभ, आत्म-हक जताना, कृतघ्नता, स्वामित्व की भावना, लालच; ग) **भावुक भाग में** — वे जुनून जो हृदय की शांति और प्रसन्नता को भंग करते हैं, या विभिन्न प्रकार के सुख और दर्द: क्रोध, ईर्ष्या, घृणा, द्वेष, प्रतिशोध, निंदा, तिरस्कार, कीर्ति प्रेम, व्यर्थता, अहंकार, विषाद, दुःख, शोक, निराशा, आनंद, उल्लास, भय, आशा, अपेक्षाएँ।

इन सभी मानसिक और शारीरिक भावों का स्रोत आत्म-प्रेम या आत्मा है, जो यद्यपि शुरू में वश में कर लिया जाता है या अस्वीकार कर दिया जाता है, फिर भी अक्सर फिर से उठ खड़ा होता है और, किसी न किसी भाव के वेश में, आत्मा के साथ संघर्ष में प्रवेश करता है। यह शेष आत्मा, अपनी सभी भावनाओं के साथ, अब धधकते हुए कामुक मनुष्य का निर्माण करती है और ठीक वही *'अंगों में विद्यमान व्यवस्था'* है जिसका उल्लेख प्रेरित (रोमियों 7:23) ने किया है, जिससे हमेशा कुछ ऐसा उत्पन्न होता है जो आत्मा की इच्छा के विपरीत होता है। पवित्र पिताओं ने, ईसाई आध्यात्मिक योद्धा का ध्यान भटकने से रोकने के लिए, सभी भावों को उनकी जड़ों तक ट्रेस करने का प्रयास किया, ताकि यह दिखाया जा सके कि योद्धा को किस लक्ष्य को प्राप्त करना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए, उन्होंने स्रोत पर तीन की पहचान की—स्वयं: कामुकता, लालच और अहंकार—और फिर पाँच और जो इनसे निकलते हैं। इन्हीं तक सीमित रहकर, उन्होंने इनके उदय का वर्णन किया और इनसे लड़ने की विधि बताई। जो कोई आत्म-त्याग द्वारा कामुक सुख, अनासक्ति द्वारा लोभ, और विनम्रता द्वारा अहंकार को समाप्त कर देता है, उसने स्वार्थपरता पर विजय प्राप्त कर ली है; क्योंकि अपनी संतान में इसे जड़ से उखाड़ना स्वयं में उखाड़ने से आसान है। यह सब आत्मा और शरीर से संबंधित है। लेकिन आत्मा भी, एक बार पुनर्जीवित हो जाने पर—या, यूँ कहें कि, पुनर्जीवित होने की प्रक्रिया में—पीड़ाओं से मुक्त नहीं है, जो इस कारण और भी अधिक खतरनाक हैं कि वे जीवन के मूल स्रोत को छूती हैं और अपनी सूक्ष्मता और गहराई के कारण अक्सर अप्रत्यक्ष होती हैं। और यहाँ, ठीक वैसे ही जैसे आत्मा और शरीर में, आंतरिक आध्यात्मिक जीवन के पूरे ताने-बाने के विरुद्ध, गतिविधियों और अवस्थाओं की एक विरोधी श्रृंखला है जो उसे दूर भगाती है और उसे अस्पष्ट कर देती है। इस प्रकार, अक्सर ऐसा होता है कि, भीतर स्थिर रहने और संयम के बजाय, भीतर से एक प्रवाह निकलता है, इंद्रियों में पलायन हो जाता है; अंतरिक स्थिरता के तीन कार्यों—ध्यान, सतर्कता और संयम—के बजाय मन का विचलन, आंतरिक कलह, अहंकार, कमजोरी, शिथिलता, आत्म-उपेक्षा, कामुकता, दुस्साहस, बंधन, पक्षपात और हृदय का आघात होता है; आध्यात्मिक दुनिया के प्रति जागरूकता के बजाय—ईश्वर, मृत्यु, न्याय और जो कुछ भी आध्यात्मिक है, उसकी भूल होती है।

चूंकि चेतना—जो इन आंतरिक अवस्थाओं पर आधारित है—आत्मा का सार है, जब यह घटती है, तो जीवन-शक्ति

की गतिविधि भी घटती है। इससे ईश्वर के भय और उस पर निर्भरता की भावना के स्थान पर निडरता उत्पन्न होती है; आध्यात्मिकता को चुनने और संजोने के स्थान पर उसके प्रति उदासीनता; सभी चीजों से विरक्ति के स्थान पर आत्म-संतुष्टि (क्यों कोई खुद को पीड़ा दे!); पश्चाताप की भावनाओं के बजाय—सुन्नता, एक कठोर हृदय; प्रभु में विश्वास के बजाय—आत्म-संतुष्टि; उत्साह के बजाय—उदासीनता, सुस्ती और जोश की कमी; और ईश्वर के प्रति भक्ति के बजाय—आत्म-संतुष्टि।

जब ऐसी भावना किसी की चेतना या स्वतंत्रता पर हावी होती है, तो यह या तो हमारे आध्यात्मिक जीवन के स्रोत को पूरी तरह से अवरुद्ध कर देती है या उसे सीमित कर देती है और हमें अत्यधिक खतरे में डाल देती है। ऐसे समय में बाहरी मदद अत्यंत आवश्यक हो जाती है। कभी-कभी व्यक्ति इन प्रलोभनकारी प्रवृत्तियों से अवगत भी नहीं होता है, क्योंकि वे सूक्ष्मतम विचारों के क्षेत्र से संबंधित होती हैं। भावनात्मक और शारीरिक वासनाएँ अधिक स्पष्ट और स्थूल होती हैं, हालांकि उनमें भी सूक्ष्म वासनाएँ होती हैं, जैसे कि, उदाहरण के लिए, शारीरिक आराम की इच्छा, हठ और अवज्ञा। वे शब्दों में स्पष्ट होती हैं, लेकिन अक्सर कर्मों में छिपी रहती हैं।

देखो, पाप के विद्रोहों का झुंड, जो हमारे नए जीवन को बुझाने के लिए सदैव तैयार रहता है… एक व्यक्ति अपने अस्तित्व की धरती पर ऐसे चलता है जैसे कि वह दलदल में हो, जो किसी भी क्षण डूब सकता है। जब तुम चलो, तो सावधानी से चलो, कहीं तुम्हारा पैर किसी पत्थर पर न ठोकर खा जाए।

हालाँकि, नए नियमों और व्यवस्था के जुए के नीचे रहते हुए, और आत्मा के कार्यरत होने पर, ये सभी अधर्मी प्रवृत्तियाँ इतनी प्रबल नहीं होतीं यदि उनके पड़ोसी माता-पिता—जगत और राक्षसों—की सहायता न होती।

संसार वासनाओं का साकार रूप है, या लोगों, रीति-रिवाजों और कर्मों में प्रकट हुई वासनाएँ हैं। जब कोई किसी भी तरह से इसके संपर्क में आता है, तो समानता और आत्मीयता के कारण, वह अपने भीतर उसी प्रकार के घाव या वासना को जगाए बिना नहीं रह सकता। इसलिए, दुनिया में रहने वाला हर व्यक्ति अवसरों और प्रलोभनों द्वारा प्रेरित, अपने भीतर रहने वाली वासनाओं के माध्यम से इनकी ओर आकर्षित होता है ।

लेकिन कुछ आकर्षण स्वयं संसार से ही संबंधित हैं। ये हैं: इसकी आकर्षक दिखावट और हर चीज़ में सफलता; इसकी भयानक शक्ति—भीड़ के बीच परित्याग और उजाड़ का एहसास; और, हर चीज़ में, बाधाएँ, व्यंग्य, उपहास, तिरस्कार, उदासीनता, और गैर-कानूनी कार्यों के माध्यम से पीड़ा। इसके बाद अत्याचार, उत्पीड़न, द्वेष, वंचना, और हर तरह के दुःख आते हैं।

और राक्षस, जो सभी बुराइयों के स्रोत हैं, अपनी सेनाओं से हर ओर लोगों को घेर लेते हैं, और उन्हें हर प्रकार के पाप सिखाते हैं, जो शरीर के माध्यम से, विशेष रूप से इंद्रियों और उस तत्त्व के माध्यम से होते हैं जिसमें आत्मा और स्वयं राक्षस वास करते हैं। यही कारण है कि हर वासना और हर पापी विद्रोह का कारण वे ही माने जाते हैं। लेकिन पाप के चक्र के भीतर कुछ ऐसा है जिसे केवल राक्षस ही प्रेरित कर सकते हैं, कुछ ऐसा जिसके लिए, सभी भ्रष्टता के बावजूद, मानव स्वभाव अक्षम प्रतीत होता है: इस प्रकार, धर्मनिंदापूर्ण विचार—संदेह, अविश्वास, असाधारण घृणा, मानसिक अस्पष्टता, विभिन्न प्रकार के भ्रम और, सामान्य रूप से, भावुक, भ्रष्ट करने वाले प्रलोभन, जैसे: अनियंत्रित कामवासना, घातक और लगातार नफरत, और इसी तरह। राक्षसों के खिलाफ इन अदृश्य संघर्षों के अलावा, उनसे ऐसे हमले भी होते हैं जो शरीर के माध्यम से दिखाई देने वाले और मूर्त होते हैं: ये विभिन्न प्रकार के भूत-प्रेत हैं, जो शरीर पर उनके अधिकार तक का विस्तार करते हैं। राक्षसों की सभी चालाकियों को पहचानने के लिए, निफॉन, स्पिरिडॉन और अन्य लोगों के जीवन को पढ़ना उपयोगी है।

यह सब कुछ है जो नए मनुष्य के विरुद्ध उठता है, भीतर और बाहर दोनों ओर से। जो लोग चौकस हैं वे कहते हैं कि इन हलचलों में से किसी एक या किसी अन्य के आरंभ के बिना एक क्षण भी नहीं बीतता; यह अपरिहार्य है, क्योंकि हम देखते हैं कि कैसे आंतरिक आत्मा, जो भलाई के लिए उत्सुक है, एक शत्रु दल से हर तरफ से घिरी हुई है, और उसमें एक समुद्र की तरह डूबी हुई है। हालाँकि, इन शत्रुओं की भीड़ को पहचानने के अलावा, इस लड़ाई में सफल होने के लिए यह भी जानना आवश्यक है कि ये हमले किन रूपों में होते हैं।

आइए कल्पना करें कि किसी व्यक्ति का मन किस ओर निर्देशित है। यह भीतर की ओर मुड़ता है, एक अन्य दुनिया की ओर; वहाँ कुछ अलग मौजूद है और कार्य करता है। उनके विचार आध्यात्मिक मामलों में व्यस्त हैं, और उनके इरादे आध्यात्मिक कर्मों की ओर निर्देशित हैं। इसका अर्थ है कि उन्होंने कामनाओं और पापों से मुंह मोड़ लिया है। जब उचित समय पर सद्गुणों के विकास के अनुकूल नियमों की एक व्यवस्था स्थापित हो जाती है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वे पूरी तरह से आध्यात्मिक, पवित्र प्रकाश के क्षेत्र में स्थित हैं। पापपूर्ण और कामनाएँ उनके ध्यान से हट गई हैं और नियमों के अधीन हैं। वे समय-समय पर कभी-कभी उभरती हैं, और फिर चाहे ध्यान आकर्षित करें या न करें, फिर से पीछे हट जाती हैं। वे केवल अंतर्ज्ञान को प्रकट होती हैं, अपनी उपस्थिति की याद दिलाती हैं, और केवल इस बात की चाह रखती हैं कि उन पर विचार

किया जाए और उन पर मनन किया जाए। इसलिए, जिस मुख्य रूप में शत्रु हमारे भीतर प्रकट होता है, **वह विचार** है। जब शत्रु हमारे मन को एक बुरे विचार से भरने में सफल हो जाता है, तो वह पहले से ही लाभ के बिना नहीं रहता, और अक्सर जीत का दावा कर सकता है, क्योंकि जल्द ही एक इच्छा उस विचार की ओर आकर्षित हो सकती है, और इच्छा के बाद एक निर्णय और क्रिया आती है—और यह पहले से ही पाप और पतन है। इसी आधार पर, पवित्र पिता, जो अपने प्रति सचेत थे, भावनाओं के उभार और उसमें उलझने के निम्नलिखित रूपों और स्तरों की पहचान करते हैं: एक विचार का आक्रमण, स्वयं एक विचार, आनंद, इच्छा, जुनून, आकर्षण, संकल्प, और उसके बाद, कर्म। जिस तरह से वे प्रकट होते हैं, उनमें से कुछ कभी-कभी धीरे-धीरे, एक के बाद दूसरे के रूप में विकसित होते हैं; अन्य समयों में, प्रत्येक अलग से, जैसे कि क्रम से बाहर, दिखाई देता है, सिवाय **निर्णय के,** जो कभी भी एक तत्काल क्रिया नहीं है, बल्कि उससे पहले चिंतन और स्वतंत्र इच्छा का प्रयोग होता है: जब तक वह अनुपस्थित है, तब तक पवित्रता अक्षुण्ण रहती है और अंतरात्मा स्पष्ट रहती है। इसलिए, इससे पहले के सभी कार्यों को एक ही शब्द से संबोधित किया जाता है: 'विचार'—या तो अपने आप में या एक विशेषण के साथ—एक साधारण विचार, एक भावुक विचार, एक कामुक विचार; क्योंकि यह हमारे भीतर या तो बस एक विचार के रूप में, एक पापी वस्तु का मात्र प्रतिनिधित्व, या वासना, लालसा, इच्छा, या अंत में, जुनून, एक प्रवृत्ति के रूप में प्रकट होता है। ये सभी मन या आत्मा को भावुक और पापी चीज़ों की ओर आकर्षित करते हैं और लुभाते हैं, लेकिन यह अभी तक बुराई नहीं है, न ही यह पाप है, जब तक कि मन इनसे सहमत नहीं हो जाता; इसे हर बार जब भी ये उत्पन्न हों, इनसे संघर्ष करना होगा, जब तक कि यह उन्हें दूर नहीं कर देता। इस संघर्ष का दायरा एक विचार, वासना, जुनून या आकर्षण के उत्पन्न होने के क्षण से लेकर उनके गायब होने और उनके हर निशान के मिट जाने तक फैला होता है; इस संघर्ष के सभी नियम इसी उद्देश्य की ओर निर्देशित होते हैं। यह सच है कि दुनिया भी अपनी तरह से काम करती है, ठीक वैसे ही जैसे शैतान करता है, लेकिन उनके प्रलोभन हमारी चेतना तक केवल इन तीन तरीकों में से किसी एक से ही पहुँचते हैं, क्योंकि उनका एकमात्र उद्देश्य हमारी आंतरिक स्थिति को अस्थिर करना और हमें अपनी ओर खींचना है। उनकी सभी चालाकियाँ इसी उद्देश्य की ओर निर्देशित होती हैं; इस प्रकार, इस संबंध में, यह मायने नहीं रखता कि वे हमारे खिलाफ कौन सी विधियाँ या कार्य करते हैं, बल्कि यह मायने रखता है कि वे हमारे भीतर क्या जगाना चाहते हैं—यही जीवन और आचरण में महत्वपूर्ण और मूल्यवान है। उदाहरण के लिए, उत्पीड़न में, लक्ष्य किसी व्यक्ति का दुःख नहीं होता, बल्कि शिकायत करने, निराशा, या सद्गुण को त्यागने का विचार होता है। परिणामस्वरूप, आध्यात्मिक संघर्ष के संबंध में, यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है: चाहे पाप कहीं भी और कैसे भी उत्पन्न हो, अपनी सारी शक्ति और ध्यान उसी पाप पर केंद्रित करें; उससे संघर्ष शुरू करें और उसके खिलाफ लड़ें। यह नियम अत्यंत महत्वपूर्ण है: यह एक व्यक्ति को उसके भीतर केंद्रित रखेगा, और इस प्रकार उसे मजबूत और एक तरह से, सुरक्षित रखेगा। यही कारण है कि, पवित्र पिताओं की रचनाओं में, सभी नियम विचारों, भावों और इच्छाओं की ओर निर्देशित हैं, और उनकी प्रकृति पर लागू होते हैं; कारणों का उल्लेख, हालांकि, नहीं किया गया है, या यदि किया गया है, तो इस संबंध में उन्हें कोई विशेष महत्व दिए बिना, और अक्सर बिना किसी भेदभाव के किया गया है। दुनिया, राक्षस और वासना सभी एक ही जुनून को जगा सकते हैं—और जगाते भी हैं—फिर भी यह इसे एक विशिष्ट चरित्र नहीं देता। इस प्रकार, यहीं पर तपस्वी का संपूर्ण ध्यान केंद्रित होना चाहिए: भीतर की ओर, अपनी ही विचारों, इच्छाओं, भावों और प्रवृत्तियों की ओर—हालाँकि मुख्यतः अपने विचारों की ओर, क्योंकि हृदय और इच्छाशक्ति मन जितनी परिवर्तनशील नहीं होतीं, जबकि भाव और इच्छाएँ विरले ही अलग से उत्पन्न होती हैं, बल्कि अधिकांशतः विचारों से ही जन्म लेती हैं। यही नियम है: एक विचार को काट दो, और तुम सब कुछ काट दोगे।

इसके बाद, आध्यात्मिक युद्ध की एक सामान्य रूपरेखा तैयार करना बहुत आसान है। इसका *लेटर्स ऑन द क्रिश्चियन लाइफ़* में पर्याप्त रूप से वर्णन किया गया है। हम इसे वहीं से उद्धृत करेंगे।

आध्यात्मिक युद्ध के नियमों में से, जो एक ईसाई की युद्ध कला का निर्माण करते हैं, कुछ हमलों को रोकने के लिए, कुछ लड़ाई को सबसे आसान और सबसे सफल निष्कर्ष पर पहुँचाने के लिए, और कुछ विजय के फलों को सबसे दृढ़ता से सुरक्षित करने के लिए, या हार के परिणामों को यथासंभव शीघ्रता से मिटाने के लिए होते हैं; और इसलिए ये स्वाभाविक रूप से तीन श्रेणियों में विभाजित हैं: (क) युद्ध से पहले पालन किए जाने वाले नियम, (ख) स्वयं युद्ध के दौरान, और (ग) युद्ध के बाद।

लड़ाई से पहले, एक योद्धा को इस तरह से काम करना चाहिए कि, अपने कार्यों के माध्यम से, वह या तो हमलों को रोकता है, या खुद को उन्हें बिल्कुल शुरुआत में ही पहचानने में सक्षम बनाता है, या फिर जीत के लिए आधार तैयार करता है। इसलिए, सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण, उसे पापी प्रवृत्तियों के दायरे को सीमित करना चाहिए और उन्हें एक ही स्थान पर केंद्रित करना चाहिए; क्योंकि इस तरह न केवल उसके लिए विघ्न-बाधाओं का पता लगाना आसान होगा, बल्कि यह भी स्पष्ट होगा कि अपने प्रयासों को किस ओर निर्देशित करना है।

1. पाप के क्षेत्र की सामान्य रूपरेखा इस प्रकार है: जीवन के केंद्र—हृदय—में स्थापित होकर, पाप आत्मा और शरीर के सभी कार्यों में प्रवेश करता है, फिर एक व्यक्ति के सभी बाहरी संबंधों में फैलता है और अंत में, अपने प्रभाव को उसके आसपास की हर चीज़ पर डाल देता है। अब, जब इसे हृदय की गहराइयों से बाहर निकाल दिया जाता है, तब भी यह उसके आसपास ही मंडराता रहता है, और पहले की तरह ही पोषण करता रहता है; चेहरे, वस्तुएँ और परिस्थितियाँ आसानी से उन्हीं विचारों और भावनाओं को जगा सकती हैं जिन्हें किसी व्यक्ति ने पाप की सेवा करते समय उनसे जोड़ा था। एक समझदार योद्धा को अब दुश्मन के इस बाहरी पोषण को काट देना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए, उसे करना चाहिए: क) अपने संपूर्ण बाहरी आचरण को पुनर्गठित करना, अपने बारे में हर चीज़ को एक नया रूप, नई प्रेरणाएँ, एक नई लय, आदि, नए जीवन की भावना के अनुरूप देना; ख) अपने समय को इस तरह व्यवस्थित करना कि एक भी घंटा उचित काम के बिना न बचे। आवश्यक गतिविधियों से खाली किसी भी समय को केवल किसी भी चीज़ से नहीं, बल्कि ऐसी गतिविधियों से भरना चाहिए जो पाप को मारने और आत्मा को मजबूत करने में मदद करें। कोई भी स्वयं अनुभव कर सकता है कि इस संबंध में कुछ शारीरिक व्यायाम कितने फायदेमंद हैं—वे व्यायाम जो उल्लेखित प्रवृत्तियों का प्रतिकार करते हैं; c) अपनी इंद्रियों, विशेष रूप से आँखों, कानों और जीभ को नियंत्रित करना, जो हृदय से बाहरी दुनिया तक और बाहरी दुनिया से हृदय तक पाप के लिए सबसे आसान मार्ग हैं; ग) हर उस चीज़ को—वस्तुओं, लोगों और परिस्थितियों को—एक आध्यात्मिक महत्व देना, जिनका सामना करना पड़ता है, और, विशेष रूप से, अपनी रहने की जगह को आत्मा के लिए सबसे आकर्षक चीज़ों से भरना, ताकि बाहरी दुनिया में रहते हुए भी, कोई एक तरह के दिव्य विद्यालय में वास कर सके। सामान्य रूप से, अपने संपूर्ण बाहरी जीवन को इस तरह व्यवस्थित किया जाना चाहिए कि, एक ओर, यह अब विशेष ध्यान की मांग न करे और हमें अपने लिए सभी चिंताओं से मुक्त कर दे, और दूसरी ओर, यह न केवल हमें पाप के अप्रत्याशित उथल-पुथल से बचाए, बल्कि उभर रहे आत्मा के नए जीवन को पोषित और मजबूत भी करे। ऐसी व्यवस्था के तहत, पाप बाहरी रूप से पूरी तरह से अलग हो जाएगा; उसे अब इस स्रोत से पोषण या सुदृढ़ीकरण नहीं मिलेगा।

२. यदि कोई व्यक्ति, भीतर से, अब स्वयं को उसी अवस्था में बनाए रखने का हर संभव प्रयास करता है, जिसमें वह उस पहली विजय से उभरा था—अर्थात्, यदि वह उन भावनाओं और प्रवृत्तियों को लगातार पुनर्जीवित करता है जो उस समय उसमें पुनर्जीवित हुई थीं—तो पाप भीतर से भी घेर लिया जाएगा, और यहाँ हमेशा के लिए बिना किसी सहारे या दृढ़ता के रह जाएगा। पाप, पोषण और सहारे से वंचित होकर, यदि तुरंत नष्ट न हो जाए, तो कम से कम तब तक कमजोर होता जाएगा जब तक कि वह पूरी तरह से समाप्त न हो जाए। इसके बाद, पाप के विरुद्ध संघर्ष स्पष्ट रूप से कम हो जाएगा और यह पूरी तरह से विचारों (जो विशेष रूप से नई व्यवस्था को बाधित करने के लिए प्रवृत्त होंगे) के विरुद्ध संघर्ष पर केंद्रित हो जाएगा, और शायद ही कभी जुनून और प्रवृत्तियों के विरुद्ध, जहाँ किसी को केवल **सतर्क रहने की** आवश्यकता है... यही दो चौकस पहरेदार हैं जिन्हें मसीह के सिपाही को लगातार बनाए रखना चाहिए: संयम और विवेक। पहला भीतर की ओर निर्देशित है, दूसरा बाहर की ओर; पहला सीधे हृदय से उत्पन्न होने वाली हलचलों पर नजर रखता है, जबकि दूसरा बाहरी प्रभावों के कारण उसमें उत्पन्न होने वाली संभावित हलचलों की पूर्व सूचना देता है। पहले के लिए नियम यह है: एक बार ईश्वर की उपस्थिति की स्मृति से हर विचार को आत्मा से निकाल देने के बाद, हृदय के द्वार पर खड़े हो जाओ और उसमें प्रवेश करने तथा उससे बाहर निकलने वाली हर चीज़ पर सावधानी से नज़र रखो; सबसे बढ़कर, भावनाओं और इच्छाओं को अपने कार्यों से पहले न आने दो, क्योंकि सभी बुराइयाँ इन्हीं से उत्पन्न होती हैं। दूसरे के लिए नियम: प्रत्येक दिन की शुरुआत में, बैठें और सभी संभावित मुठभेड़ों और परिस्थितियों, और उनके जवाब में उत्पन्न होने वाली सभी भावनाओं और आवेगों पर विचार करें; और उनके खिलाफ पहले से ही अपने भीतर आवश्यक रक्षा तैयार करें, ताकि जब कोई अप्रत्याशित हमला आए तो आप घबरा न जाएँ या गिर न जाएँ। इसके अलावा, जब वास्तव में हमला होता है तो अधिक प्रभावी ढंग से कार्य करने के लिए, पहले से ही जानबूझकर मानसिक लड़ाई करना उपयोगी होता है, जिसमें खुद को विभिन्न परिस्थितियों, विभिन्न भावनाओं और इच्छाओं के साथ मानसिक रूप से रखना होता है, और यहाँ खुद को उचित सीमाओं के भीतर रखने के विभिन्न तरीकों को तैयार करने के लिए, और यह देखने के लिए कि एक स्थिति के विपरीत दूसरी स्थिति में किस बात ने हमें विशेष रूप से मदद की। ऐसी प्रारंभिक अभ्यास एक योद्धा भावना को बढ़ावा देती है, जो व्यक्ति को बिना डर के दुश्मन का सामना करने और उसे, मानो, आजमाए हुए और परखे हुए तरीकों से बिना किसी बड़ी कठिनाई के हराने की आदत डालती है। इसके अलावा, युद्ध में उतरने से पहले, हमें पहले यह निर्धारित करना चाहिए कि कब आक्रामक रूप से कार्य करना है, कब रक्षात्मक रूप से, और कब पीछे हटना है। इस तथ्य के अलावा कि लड़ाई की किसी एक या दूसरी पद्धति का उपयोग आध्यात्मिक विकास के चरणों के अनुरूप होता है, शुरुआत में पीछे हटना ही सबसे अच्छा है, यानी, बिना कोई प्रतिरोध किए प्रभु की शरण में जाना। इसके अलावा, एक बार जब हम अनुभव के माध्यम से अपने दुश्मनों को जान लेते हैं और उनके हमलों का अध्ययन कर लेते हैं, तो हम उन्हें बिना

किसी देरी के पीछे हटा सकते हैं; हालाँकि, हमें जानबूझकर अपने भीतर जुनून को भड़कने नहीं देना चाहिए, न ही खुद को ऐसी परिस्थितियों में रखना चाहिए जहाँ वे पूरी ताकत से काम कर सकें, केवल युद्ध और विजय का अवसर बनाने के लिए। कुछ तीव्र भावनात्मक उथल-पुथल होती हैं जिन पर केवल किसी एक या दूसरे तरीके से ही काबू पाया जा सकता है। विचारों को तो निश्चित रूप से दूर भगाया जा सकता है, लेकिन प्रवृत्तियों और जुनून, विशेषकर शारीरिक प्रकृति के, के मामले में ऐसा हमेशा संभव नहीं होता। दोनों ही मामलों में, कोई केवल अज्ञानता के कारण विजय खो सकता है। अंत में, किसी को भी केंद्रीय, विजयी विचार के बिना युद्ध में कभी नहीं उतरना चाहिए—यह, मानो, विजय का ध्वज है। जैसे इसने पहले अच्छाई के पक्ष में अच्छाई और बुराई के बीच का मामला निपटाया था, वैसे ही अब, आत्मा की हर एक पापी प्रवृत्ति के खिलाफ युद्ध के दौरान, यह हमें सहज ही विजेता बना देगा। इसके प्रकट होते ही, शत्रुओं की सारी सेनाएँ, सभी दुष्ट विचार और इच्छाएँ, बिखर जानी चाहिए। इसमें किसी व्यक्ति को प्रेरित करने और उसे स्वयं से ऊपर उठाने की शक्ति है; अतः, इसे यथासंभव मन में लाना चाहिए और इसे एक जीवंत वास्तविकता बनाना चाहिए—इस प्रकाशमान को, जो अंधकार को दूर करता है, मन के आकाश पर हमेशा के लिए स्थापित करना चाहिए। पाप को मिटाने के उत्साह को इस विचार से अधिक प्रबल रूप से कोई जगा नहीं सकता—वह उत्साह, वह जीवित जल की तीव्र धारा जो लहराती तो है पर उफनती नहीं, और प्रलोभन के पत्थरों को फेंकने से उत्पन्न सभी तरंगों को अदृश्य कर देती है।

इस तरह की सावधानियों और नियमों के साथ, हे मसीह के योद्धा, आत्मविश्वास के साथ युद्ध में आगे बढ़ो। इसके अलावा, स्वयं युद्ध के दौरान भी, तुम्हें स्थापित नियमों के अनुसार ही कार्य करना चाहिए, कहीं ऐसा न हो कि तुम उन दुश्मनों जैसे दिखने लगो जो अपनी रक्षा करते समय बेतरतीब ढंग से हमला करते हैं। अक्सर, बिना किसी अनावश्यक तनाव के, एक ही सुव्यवस्थित कार्य-प्रणाली तुम्हें सफलता दिला सकती है। शत्रु के आगमन को भांपते ही—उत्साह, विचारों, वासनाओं या प्रवृत्तियों की पहली हलचल—सबसे पहले, यह पहचानने में शीघ्रता करें कि ये शत्रु हैं। यह एक बड़ी और सार्वभौमिक गलती है कि हम अपने भीतर उत्पन्न होने वाली हर चीज़ को अपनी अंतर्निहित संपत्ति समझ लें, जिसके लिए हमें वैसे ही खड़ा होना चाहिए जैसे हम अपने लिए होते हैं। हर पाप हमारे पास से ही आता है; अतः, इसे हमेशा स्वयं से अलग करना चाहिए, अन्यथा हमारे भीतर एक गद्दार होगा। जो कोई भी स्वयं से युद्ध करना चाहता है, उसे स्वयं को दो भागों में विभाजित करना चाहिए: स्वयं और अपने भीतर छिपे शत्रु।

किसी विशेष पापी प्रवृत्ति से स्वयं को अलग करने और उसे अपना शत्रु मान लेने के बाद, इस बोध को अपनी भावनाओं तक पहुँचाओ और अपने हृदय में उसके प्रति घृणा को पुनः जगाओ। पाप को दूर करने का यह सबसे प्रभावी साधन है। हर पापी प्रवृत्ति आत्मा में उससे प्राप्त किसी न किसी आनंद की अनुभूति से पोषित होती है; अतः जब उससे घृणा उत्पन्न हो जाती है, तो वह सभी आधार खोकर अपने आप विलुप्त हो जाती है। हालाँकि, यह हमेशा आसान नहीं होता, न ही यह हमेशा संभव होता है: विचारों को क्रोध से दबाना आसान है; इच्छाओं को दबाना अधिक कठिन है; लेकिन जुनून को दबाना और भी कठिन है, क्योंकि वे स्वयं हृदय की गतिविधियाँ हैं। जब इससे मदद नहीं मिलती, और दुश्मन इस तरह बिना लड़े हार नहीं मानता, तो साहस के साथ, लेकिन अहंकार या अति आत्मविश्वास के बिना संघर्ष में उतरें। कायरता आत्मा को भ्रम, अस्थिरता और ढिलाई की स्थिति में डाल देती है, और चूँकि वह स्वयं में दृढ़ता से स्थापित नहीं होती, इसलिए वह आसानी से गिर सकती है। अहंकार और घमंड ही वे दुश्मन हैं जिनसे लड़ना चाहिए: जो भी उन्हें हावी होने देता है, वह पहले ही हार चुका है और उसने खुद को और गिरावटों के लिए तैयार कर लिया है, क्योंकि वे एक व्यक्ति को निष्क्रियता और लापरवाही की ओर ले जाते हैं। एक बार जब लड़ाई शुरू हो जाए, तो सबसे बढ़कर अपने दिल की रक्षा करो: उभरती हुई प्रवृत्तियों को अपनी भावनाओं तक पहुँचने न दो; उन्हें अपनी आत्मा के द्वार पर ही रोककर वहाँ उन्हें नष्ट करने का प्रयास करो। इस उद्देश्य के लिए, अपनी आत्मा में उन विश्वासों को स्थापित करने में शीघ्रता करें जो उस विचार के विपरीत हों जिस पर वह परेशान करने वाला विचार आधारित है। मन की लड़ाई में, इस तरह के प्रति-विश्वास न केवल एक ढाल हैं, बल्कि तीर भी हैं—वे आपके दिल की रक्षा करते हैं और दुश्मन को सीधे दिल में मारते हैं। तब से, लड़ाई इस बात पर आधारित होगी कि उभर रहे पाप को उसके बचाव करने वाले विचारों और धारणाओं द्वारा लगातार ढाल प्रदान की जाए, जबकि लड़ने वाला व्यक्ति, अपनी ओर से, विरोधी विचारों और धारणाओं से इन किलों को नष्ट करेगा। इस संघर्ष की अवधि कई परिस्थितियों पर निर्भर करती है, जिन्हें निश्चित रूप से निर्धारित करना असंभव है। मनुष्य को कमजोर नहीं होना चाहिए या विचारों में भी शत्रु के पक्ष की ओर थोड़ा भी झुकना नहीं चाहिए—और विजय सुनिश्चित है, क्योंकि पापी प्रवृत्ति, जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया है, हमारे भीतर कोई ठोस आधार नहीं रखती है और इसलिए, स्वाभाविक रूप से, जल्द ही समाप्त हो जाती है। यदि, अपनी रक्षा के लिए इस ईमानदार प्रयास के बाद भी, शत्रु अभी भी आपके आत्मा में एक भूत की तरह मंडराता रहे और हार मानने से इनकार कर दे, तो यह एक स्पष्ट संकेत है कि वह एक बाहरी शक्ति से पोषित हो रहा है; इसलिए आपको भी मदद के लिए किसी बाहरी स्रोत की ओर मुड़ना चाहिए, चाहे

वह सांसारिक हो या स्वर्गीय—अपने आध्यात्मिक निर्देशक में विश्वास रखें और, प्रार्थना में, प्रभु, सभी संतों, और विशेष रूप से अपने संरक्षक देवदूत को पुकारें। ईश्वर के प्रति भक्ति कभी भी व्यर्थ नहीं गई है। हालांकि, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि विचारों से लड़ना एक बात है, जुनून से लड़ना दूसरी, और इच्छाओं से लड़ना तीसरी बात है: क्योंकि विचार एक-दूसरे से भिन्न होते हैं, इच्छाएं एक-दूसरे से भिन्न होती हैं, और जुनून एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। इस सब में, किसी को विशिष्ट तरीकों का उपयोग करना चाहिए, जिन्हें पहले या तो चिंतन के माध्यम से या तपस्वियों के अनुभवों और शिक्षाओं से निर्धारित किया जाना चाहिए। लेकिन किसी को हमेशा सख्त प्रतिरोध का सहारा नहीं लेना चाहिए: कभी-कभी केवल तिरस्कार ही दुश्मन को भगा देता है, जबकि प्रतिरोध केवल उसे बढ़ाता है और उसे उकसाता है। शत्रु का तब तक पीछा करना चाहिए जब तक उसका कोई निशान भी न बचे; अन्यथा, हृदय में छोड़ा गया एक साधारण विचार भी, एक बुरे बीज की तरह, आत्मा के उसकी ओर अनदेखे मोड़ में फल देगा। खुद लड़ाई के दौरान, भविष्य में इसे रोकने के लिए कदम नहीं उठाने चाहिए। जो नियम क्षण भर की उतावली में बनाए जाते हैं, वे हमेशा बहुत कठोर होते हैं, और इसलिए उन्हें बदलना हमेशा आवश्यक होता है; परिणामस्वरूप, इससे असफलता का अनुभव होता है, जो आध्यात्मिक युद्ध में बहुत हानिकारक और योद्धा के लिए बहुत प्रलोभनपूर्ण होता है।

लड़ाई खत्म हो गई है। आपको हार से बचाने के लिए प्रभु का धन्यवाद करें, लेकिन उद्धार के आनंद में अत्यधिक मग्न न हों; लापरवाही न करें; अपनी लगन को कम न होने दें — दुश्मन अक्सर केवल इसलिए हार का नाटक करता है ताकि जब आप सुरक्षा की भावना के आगे झुक जाएँ, तो वह आपको आश्चर्यजनक हमले से और भी आसानी से हरा सके। इसलिए, अपने युद्ध के हथियार को मत फेंको, और आत्म-संरक्षण के नियमों को मत भूलो। हमेशा एक सतर्क और चौकस योद्धा रहो। बैठकर लूट का हिसाब लगाना बेहतर है: युद्ध के पूरे क्रम की समीक्षा करो—इसकी शुरुआत, इसका क्रम, और अंत में, इसका कारण क्या था, इसे विशेष रूप से क्या तीव्र बनाया, और इसे किसने समाप्त किया। यह पराजितों से वसूल किया गया एक प्रकार का श्रद्धांजलि होगी, जो उन पर भविष्य की विजयों को बहुत आसान बना देगी; इस प्रकार, अंततः, आध्यात्मिक ज्ञान और तपस्या का अनुभव प्राप्त होता है। अपनी विजय के बारे में किसी को न बताएं—यह शत्रु को बहुत उत्तेजित करेगा और आपकी शक्ति को कम कर देगा। ऐसे हालात में अहंकार से बचना असंभव है, लेकिन वह आत्मिक दृढ़ीकरण के द्वार खोलेगा, और एक शत्रु को परास्त करने के बाद, आपको उनकी पूरी सेना से लड़ना होगा। किन्तु यदि आप पराजित हों, तो पश्चात्ताप करें, परन्तु परमेश्वर से न भागें, हठी न बनें; शीघ्रता से अपना हृदय कोमल करें और उसे पश्चात्ताप की ओर लाएं। गिरना असंभव है, लेकिन गिरने के बाद फिर से उठना संभव और आवश्यक है। जो व्यक्ति तेजी से दौड़ता है, भले ही वह किसी चीज़ से ठोकर खाकर गिर जाए, वह जल्दी उठता है और एक बार फिर अपने लक्ष्य की राह पर चल पड़ता है—उसके उदाहरण का पालन करें। हमारे प्रभु एक माँ की तरह हैं जो अपने बच्चे का हाथ पकड़कर उसे आगे ले जाती है और उसे कभी नहीं छोड़ती, भले ही वह बार-बार ठोकर खाकर गिरता हो। निष्क्रिय निराशा में डूबने के बजाय, इस वर्तमान गिरावट से विनम्रता और समझदारी का पाठ सीखकर नए प्रयासों के लिए हौसला बढ़ाएँ, ताकि आप उस जगह न चलें जहाँ फिसलन हो और जहाँ गिरना तय हो। यदि आप सच्ची पश्चाताप से पाप को नहीं मिटाते हैं, तो आपके भीतर कुछ पैर जमा लेने के बाद, यह अनिवार्य रूप से आपको पाप के सागर की गहराई में खींच ले जाएगा। पाप आप पर हावी हो जाएगा, और आपको एक बार फिर से संघर्ष की बिल्कुल शुरुआत से शुरू करना होगा; लेकिन यह ईश्वर ही जानता है कि क्या यह संभव भी होगा। शायद, अब पाप के आगे झुककर, आप पश्चाताप की सीमा पार कर जाएँगे; शायद, उसके बाद, आपके हृदय को छूने वाला एक भी सत्य नहीं रहेगा; शायद आपको अनुग्रह भी नहीं दिया जाएगा। तब, यहाँ रहते हुए ही, आपका नाम उन लोगों में लिखा जाएगा जिन्हें अनंतकालिक यातना की सज़ा मिली है।

सामान्य तौर पर, इस संघर्ष के नियमों के संबंध में यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि, सार में, वे विशिष्ट मामलों पर पूरे शस्त्रागार के अनुप्रयोग के अलावा और कुछ नहीं हैं, और इस कारण से उन सभी का वर्णन करना असंभव है। आंतरिक संघर्ष का स्वभाव अथाह और छिपा हुआ है; इसके आसपास की परिस्थितियाँ अत्यंत विविध हैं, और योद्धा बहुत विविध हैं: जो एक के लिए प्रलोभन है, वह दूसरे के लिए कुछ भी नहीं है; जो एक को प्रभावित करता है, वह दूसरे को पूरी तरह से उदासीन छोड़ देता है। इसलिए, सभी के लिए नियमों का एक ही सेट स्थापित करना पूरी तरह से असंभव है। इस संघर्ष के नियमों का सबसे अच्छा आविष्कारक प्रत्येक व्यक्ति स्वयं है। अनुभव ही सब कुछ सिखाता है; बस आत्म-विजय की तीव्र इच्छा होनी चाहिए। प्रारंभिक तपस्वियों ने किताबों से नहीं सीखा और फिर भी वे विजेताओं के आदर्श के रूप में खड़े हैं। इसके अलावा, इन नियमों पर बहुत अधिक निर्भर नहीं किया जाना चाहिए—ये केवल एक बाहरी रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं। इस मामले का सार वह है जिसे प्रत्येक व्यक्ति केवल अनुभव के माध्यम से ही सीखता है, जब वह वास्तव में संघर्ष में संलग्न होता है। और इस प्रयास में, उनके एकमात्र मार्गदर्शक उनकी अपनी विवेकशीलता और ईश्वर के प्रति समर्पण ही रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर ईसाई

जीवन का आंतरिक मार्ग अत्यंत जटिल और गुप्त प्राचीन भूमिगत मार्गों की याद दिलाता है। उनमें प्रवेश करने पर, परीक्षा दे रहे व्यक्ति को कुछ सामान्य निर्देश मिलते हैं—यहाँ यह करो, वहाँ वह करो, यहाँ किसी विशेष निशान का अनुसरण करो, और वहाँ किसी अन्य का—और फिर उसे अंधेरे में अकेला छोड़ दिया जाता है, कभी-कभी एक दीपक की मद्धिम रोशनी में। सब कुछ उनकी सूझबूझ, विवेक और सावधानी, और अदृश्य मार्गदर्शन पर निर्भर करता है। आंतरिक ईसाई जीवन में भी इसी तरह की गोपनीयता बनी रहती है। यहाँ, हर कोई अकेले चलता है, भले ही वह नियमों की भीड़ से घिरा हो। केवल हृदय की प्रशिक्षित भावनाएँ, और विशेष रूप से अनुग्रह के प्रेरण, ही उसके लिए स्वयं के विरुद्ध संघर्ष में स्थिर, अचूक और सर्वदा उपस्थित मार्गदर्शक हैं; बाकी सब कुछ पीछे छूट जाता है।

प्रत्येक जुनून, इच्छा और विचार के विरुद्ध संघर्ष का यही क्रम है। जहाँ तक जुनून, इच्छाओं और विचारों का सवाल है, वे सभी एक जैसे हैं; परिणामस्वरूप, प्रत्येक विचार के विरुद्ध संघर्ष को विस्तार से संबोधित करने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। हम केवल कुछ टिप्पणियाँ करेंगे:

१. **सूक्ष्म** और अति सूक्ष्म विचार होते हैं, और **स्थूल** और अति स्थूल विचार भी होते हैं। कोई भी व्यक्ति बाद वालों को स्वयं देख सकता है; पहले वाले हृदय में रहते हुए अप्रत्यक्ष होते हैं, लेकिन बाद में प्रकट हो जाते हैं—व्यक्ति के कार्यों के माध्यम से, और स्वयं से अधिक दूसरों को। यहाँ एक प्रवृत्ति है कि अपने मन की शांति, अच्छाई और पवित्रता पर जरा भी भरोसा न किया जाए, बल्कि उन पर हमेशा संदेह किया जाए—घटनाओं के क्रम पर बारीकी से नज़र रखी जाए और यह देखा जाए कि किन विचारों के साथ वे शुरू और समाप्त होती हैं, ताकि बाद में इसी से यह आकलन किया जा सके कि मूल रूप से भीतर क्या था। हालाँकि, यह सबसे अच्छा है कि कोई दूसरा विश्वसनीय मार्गदर्शक हो—एक अनुभवी दृष्टि तुरंत बता देगी कि हमारे भीतर क्या छिपा है, भले ही हम स्वयं उस पर ध्यान न दें। जब हम सबसे सूक्ष्म विचारों की बात करते हैं, तो हमारा मतलब केवल आध्यात्मिक विचारों से नहीं होता: वे शरीर और आत्मा दोनों से उत्पन्न होते हैं। उनकी विशिष्ट विशेषता उनकी अप्रतिभाष्यता, गहराई में छिपाव है, इसलिए कोई व्यक्ति सोचता है कि वह शुद्ध रूप से, बिना किसी जुनून के मिश्रण के कार्य कर रहा है, जबकि वास्तव में वह जुनून के कारण ही कार्य कर रहा है। इसका कारण हृदय की वह पवित्रता है जो अभी स्थापित नहीं हुई है, या, यूँ कहें, स्वाभाविक को अधि-आरोपित से अलग करने में असफलता है। जब ऐसा होता है, तो सूक्ष्म और अतिसूक्ष्म स्थूल और अतिस्थूल हो जाएँगे, क्योंकि तब अनुभव से ध्यान तीक्ष्ण हो जाएगा और हृदय की इंद्रियाँ भले और बुरे में अंतर करने के लिए प्रशिक्षित हो जाएँगी।

२. कुछ विचार, इच्छाएँ और जुनून ऐसे होते हैं जो अचानक उभरने वाले और क्षणिक व्यवधानों के रूप में आते हैं, और कुछ ऐसे होते हैं जो लगातार बने रहते हैं, जो दिनों, महीनों और वर्षों तक टिकते हैं। पहले वाले हल्के होते हैं, लेकिन उन्हें भी अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए; किसी को न केवल उनके लिए, बल्कि उनके क्रम के लिए भी सावधानीपूर्वक देखना चाहिए। ऐसा लगता है कि दुश्मन एक नियम का पालन करता है: किसी जुनून से अचानक शुरुआत न करना, बल्कि एक विचार से करना, और उसे बार-बार दोहराना। एक विचार जिसे पहली बार में गुस्से से दूर भगा दिया जाता है, उसे दूसरी या तीसरी बार अधिक नरमी से स्वीकार किया जा सकता है; फिर एक इच्छा और एक जुनून पैदा होगा, और वहां से सहमति और कार्रवाई तक पहुंचने में केवल एक कदम ही बाकी रहता है। लगातार आने वाले विचार भारी और घातक होते हैं; मुख्य रूप से उन्हीं पर **'प्रलोभन'** नाम लागू होता है**।** उनके बारे में जो जानना चाहिए वह यह है कि वे प्रकृति के नहीं हैं, यद्यपि वे अपनी प्रकृति से ही उसमें निहित हैं, बल्कि हमेशा शत्रु से आते हैं; कि प्रभु उन्हें एक विशेष उद्देश्य के साथ, हमारे शुद्धिकरण के लिए, हमारी निष्ठा, विश्वास, दृढ़ता और भीतरी मनुष्य को परखने की क्षमता की परीक्षा और पुष्टि करने के लिए अनुमति देते हैं, — इसलिए, हमें उन्हें समान भाव से सहन करना चाहिए, भले ही वे एक नए, अनुग्रह से परिपूर्ण हृदय के लिए अत्यंत अपमानजनक हों—जैसे कि ईश्वर-निंदा, निराशा और अविश्वास; मुख्य बात यह है कि कभी भी उनके आगे न झुकें, उन्हें आत्मसात न करें, और हृदय को उनसे मुक्त रखें, उन्हें विचार और विश्वास के माध्यम से स्वयं से और अपनी स्वतंत्रता से अलग करें।

३. जिन विचारों से लड़ना चाहिए, वे हमेशा बुरे नहीं होते; वे अक्सर देखने में अच्छे लगते हैं और बहुत बार तटस्थ होते हैं। जहाँ तक बुरे विचारों की बात है, तो उनका एक ही नियम है: उन्हें तुरंत दूर भगा देना; बाद वालों, यानी तटस्थ विचारों का, परीक्षण या तर्क-वितर्क किया जाना चाहिए। यहीं पर यह बहुत-प्रशंसित कौशल काम आता है कि यह समझा जाए कि किन विचारों पर अमल करना है और किन्हें खारिज करना है। इसके लिए कोई नियम निर्धारित नहीं किए जा सकते: हर किसी को अपने अनुभवों से स्वयं सीखने दें, क्योंकि कोई दो व्यक्ति एक जैसे नहीं होते, और जो किसी और के लिए उपयुक्त है, वह हमारे लिए उपयुक्त नहीं हो सकता। इस प्रकार आगे बढ़ना बेहतर है: एक बार जब कार्रवाई का कोई मार्ग निर्धारित हो जाए, तो उसका पालन करें; लेकिन जो भी नई चीज़ उत्पन्न होती है, चाहे वह कितनी भी विश्वसनीय क्यों न लगे, उसे अलग रख दें। यदि कोई विचार स्वयं में या उसके परिणामों में हानिकारक नहीं है, तब भी उस पर तुरंत अमल नहीं करना चाहिए, बल्कि

सही समय का इंतज़ार करना चाहिए, ताकि जल्दबाज़ी न हो। कुछ लोग एक विचार पर अमल किए बिना पाँच साल तक इंतजार करते रहे हैं। हालाँकि, सबसे महत्वपूर्ण नियम अपने मन और हृदय पर भरोसा न करना, बल्कि हर विचार को अपने आध्यात्मिक गुरु के समक्ष प्रस्तुत करना है। इस नियम का उल्लंघन करना हमेशा से ही, और आज भी, बड़ी गिरावटों और धोखों का कारण रहा है।

४. एक बुरा विचार प्रलोभन देता है, जबकि एक तर्कसंगत विचार धोखा देता है। जो व्यक्ति पहले वाले से भटकता है, उसे पापी और पतित माना जाता है, जबकि जो व्यक्ति दूसरे वाले से भटकता है, उसे भ्रम के जादू में माना जाता है। क्या भ्रम के सभी रूपों को उनकी उत्पत्ति और विशेषताओं में वर्णित करना संभव है? उनकी प्रमुख विशेषताओं में से एक यह है कि कोई व्यक्ति आत्मविश्वास के साथ खुद को वह कुछ मान लेता है जो वह वास्तव में नहीं है, उदाहरण के लिए: दूसरों को सिखाने के लिए बुलाए जाने के रूप में, एक असाधारण जीवन जीने में सक्षम होने के रूप में, और इसी तरह। इसका स्रोत सबसे सूक्ष्म विचारों में निहित है: कि 'मैं कुछ महत्व रखता हूँ, और वह भी कोई मामूली महत्व नहीं...' महत्वहीन व्यक्ति अपने बारे में कुछ कल्पना करता है। शत्रु इसी सबसे गहरे अहंकार से चिपककर व्यक्ति को फँसाता है। इसके अलावा, हमारे द्वारा अनदेखे हर सूक्ष्म, दुष्ट विचार हमें भ्रम में रखते हैं; जबकि हम सोचते हैं कि हम अच्छे और धार्मिक विचारों द्वारा निर्देशित हैं। इस संबंध में, यह कहा जा सकता है कि एक क्षण भी ऐसा नहीं बीतता जब हम भ्रम में न हों; हम ऐसे चलते हैं मानो भूतों के बीच में हों, जो किसी न किसी रूप में हमें फँसा लेते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि बुराई अभी भी भीतर है, जो अभी तक दूर नहीं हुई है, जबकि अच्छाई सतह पर दिखाई देती है; इसलिए, हमारी आँखों पर मानो भाप की धुंध की परत चढ़ी हुई है।

5. प्रत्येक विचार के संबंध में, यह अच्छा है कि उनके बारे में पहले से ही जानकारी इकट्ठा कर ली जाए; अर्थात्, उनका, उनके उत्पन्न होने के कारणों, उनके परिणामों और उन्हें दूर करने के तरीकों को समझना। यह एक भंडार के रूप में काम करेगा, जो संघर्ष के समय में बहुत उपयोगी होगा; अर्थात्, जब किसी विचार को घृणा से दूर नहीं किया जा सकता और वह बढ़ने लगता है, लुभाता और मनाता है, तो उसे खंडन करने वाली किसी चीज़ से उसका मुकाबला करना चाहिए। लेकिन ऐसा करने के लिए, हमारे पास भंडार में विचार होने चाहिए। इस संबंध में, पवित्र पिताओं ने **आठ** प्रमुख जुनूनों का चयन किया है और उन्हें एक मॉडल के रूप में वर्णित किया है, जिसका उपयोग मार्गदर्शन चाहने वाला कोई भी व्यक्ति कर सकता है। हालाँकि, ये आध्यात्मिक संघर्ष के एकमात्र विषय नहीं हैं, बल्कि केवल प्रमुख हैं। परिणामस्वरूप, हमें दूसरों की रचनाओं में अन्य जुनूनों के वर्णन और उनसे निपटने के नियम मिलते हैं। इनका सबसे समृद्ध संग्रह जॉन क्लाइमैकस की रचनाओं में पाया जाता है।

६. कामुक विचार होते हैं, मानसिक विचार होते हैं, और आध्यात्मिक विचार होते हैं। यह सभी के लिए स्पष्ट है कि ये सभी किसी भी समय उत्पन्न हो सकते हैं; लेकिन, स्वाभाविक रूप से, कामुक विचार पहले अधिक ध्यान देने योग्य होते हैं, जबकि मानसिक और आध्यात्मिक विचार बाद में प्रकट होते हैं। तदनुसार, संघर्ष को भी आगे बढ़ना चाहिए या अपना ध्यान केंद्रित करना चाहिए। किसी को यह जानना चाहिए ताकि, उदाहरण के लिए, शरीर पर विजय प्राप्त करने के बाद, कोई सुरक्षा की झूठी भावना से उत्पन्न आत्मसंतोष का शिकार न हो जाए, क्योंकि किसी को अभी भी आत्मा के माध्यम से हराया जा सकता है, और जिसने आत्मा को वश में कर लिया है, उसे आत्मा में ही परास्त किया जा सकता है। सामान्य तौर पर, जब तक कोई सांस लेता है, संघर्ष समाप्त नहीं होगा, भले ही यह शांत हो जाए, और कभी-कभी लंबे समय के लिए।

7. संत डोरोथियस कहते हैं: 'एक है जो काम करता है, एक है जो संघर्ष करता है, और एक है जो विजयी होता है।' पहला पाप करता है, दूसरा स्वयं को शुद्ध करना शुरू करता है, और तीसरा निर्लिप्तता के करीब है। जितना अधिक दृढ़ता से कोई व्यक्ति अपने जुनून के खिलाफ उठता है, विचार में भी उन पर न झुकता है, इच्छा या आनंद में तो और भी नहीं, या, यदि ऐसा होता भी है, तो जल्दबाजी में उन्हें दिल से उखाड़ फेंकता है, हमेशा अपने आप को घृणा की स्थिति में लाता है, उतनी ही जल्दी वह पवित्रता प्राप्त करता है। कोई व्यक्ति अपने प्रति जितना अधिक नरम और लापरवाह होता है, यह प्रक्रिया उतनी ही लंबी खिंचती है, जिसमें रुकावटें और असमान प्रगति होती है। यह आत्म-दया, या जुनून से खुद को अलग करने में असफल होने पर निर्भर करता है: खुद पर तरस खाकर, एक व्यक्ति दुश्मन को पालता है और खुद के खिलाफ हो जाता है।

8. इस संघर्ष का परिणाम विचारों से मन की, वासनाओं से हृदय की, और प्रवृत्तियों से इच्छाशक्ति की पवित्रता है। जब यह प्राप्त हो जाता है, तो व्यक्ति निर्लिप्त होकर कार्य करता है। उनका अंतर्मन एक शुद्ध दर्पण बन जाता है, जो आध्यात्मिक वस्तुओं को प्रतिबिंबित करता है।

९. विचारों, कामनाओं और जुनून के खिलाफ मानसिक संघर्ष, अपनी पूर्ण आवश्यकता, अनिवार्यता और विजयी शक्ति के बावजूद, हमें हमारे दोषों से शुद्ध करने का एकमात्र साधन नहीं होना चाहिए, जो अन्य सभी को बाहर कर दे और उनकी जगह ले ले। इसके साथ ही **भावनाओं के खिलाफ सक्रिय संघर्ष** भी होना चाहिए—अर्थात्, उनके उन्मूलन, विनाश और नाश

(कुचलने — *संपादक)* के लिए, उनके विपरीत कार्यों के माध्यम से। इसका कारण यह है कि वासना ने हमारी शक्तियों में व्याप्त (संतृप्त, जड़ जमा ली है — *संपादक*) है, और ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि हमने भावुकता से काम किया। प्रत्येक भावुक कार्य ने अपनी शक्ति में वासना का एक कण समाहित किया है, और इस तरह के सभी कार्यों के संचय के माध्यम से, हमारी शक्ति वासना से इस तरह लबालब भर गई है, जैसे पानी से गीला स्पंज या बदबूदार कपड़ा। इसके विपरीत, इस जुनून को निकालने के लिए, पहले वाले के विपरीत कार्यों में संलग्न होना चाहिए, ताकि इस तरह प्रत्येक कार्य, जब वह शक्ति में बसता है, तो उससे जुनून का एक समानुपाती हिस्सा विस्थापित हो जाए; और इस तरह के कार्यों की बहुतायत, जो बार-बार और लगातार किए जाएं, तो सभी जुनून को समाप्त कर देंगे। ऐसा तरीका, बशर्ते कि इसे ठीक से लागू किया जाए, इतना शक्तिशाली है कि जो लोग इसका अभ्यास करते हैं, वे कुछ प्रयासों के बाद ही अपने जुनून में कमी, राहत और स्वतंत्रता की भावना, और अपनी आत्मा में एक निश्चित प्रकाश महसूस करने लगते हैं। केवल मानसिक संघर्ष ही चेतना से जुनून को दूर करता है, लेकिन यह जीवित ही रहता है; यह केवल छिपा हुआ होता है। इसके विपरीत, विपरीत क्रिया इस सांप के सिर पर प्रहार करती है। हालाँकि, इसका यह मतलब नहीं है कि क्रियाशील रहते हुए मानसिक संघर्ष को बंद किया जा सकता है। इसे क्रिया के साथ अविभाज्य रूप से जुड़ा रहना चाहिए; अन्यथा, यह पूरी तरह से निष्फल हो सकता है और जुनून को कम करने के बजाय बढ़ा भी सकता है, क्योंकि एक जुनून से लड़ते समय, दूसरा हावी हो सकता है—उदाहरण के लिए, उपवास के दौरान अहंकार। यदि इस पर ध्यान नहीं दिया जाता है, तो, सभी प्रयासों के बावजूद, इस अभ्यास का कोई फल नहीं निकलेगा। मानसिक संघर्ष, जब सक्रिय अभ्यास के साथ संयुक्त हो जाता है, तो वह वासना पर बाहर और भीतर से प्रहार करता है, और उसे उतनी ही तेजी से समाप्त कर देता है जितनी तेजी से एक दुश्मन दोनों तरफ से घिरकर पराजित हो जाने पर नष्ट हो जाता है।

10. इस सक्रिय आत्म-सुधार में, एक निश्चित क्रम और अनुक्रम का पालन करना चाहिए; इसे स्थापित करने में, सामान्य रूप से जुनून की प्रकृति, अपने स्वयं के चरित्र, और सकारात्मक कर्म पर अनुभाग में उल्लिखित सदाचारपूर्ण आचरण पर ध्यान देना चाहिए। सबसे पहले, व्यक्ति को मुख्य आसक्तियों पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए: आत्म-तुष्टि, कामवासना और अहंकार — और, परिणामस्वरूप, मुख्य रूप से आत्म-संयम और कठोरता, संपत्ति के दुरुपयोग और संपत्ति के विनाश, स्वयं को दूसरों के अधीन करने और आत्म-अपमान में स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए (देखें बार्सानुफियस)। जो संत सक्रिय रूप से स्वयं को शुद्ध करने में लगे हुए हैं, उनके लिए इस प्रकार के कर्म हमेशा सर्वोपरि होते हैं। दूसरे स्थान पर उनका प्रमुख जुनून आता है। यह प्रमुख जुनून धर्म-परिवर्तन के क्षण में, अपनी पापी प्रवृत्ति के एहसास और पश्चाताप के दौरान प्रकट होगा। जब पाप न करने का संकल्प लिया जाता है, तो यही वह भावना है जिसे सबसे दृढ़ता से मन में रखा जाता है। अतः, बाद में, इसे हमारे भीतर बसने वाले पाप के विरुद्ध प्रतिरोध की तत्काल वस्तु बनना चाहिए। यह सभी अन्य भावनाओं पर हावी हो जाती है, ठीक वैसे ही जैसे यह उन्हें अपने चारों ओर बाँधती है, या उनके लिए एक धुरी का काम करती है। अन्य वासनाएँ तभी प्रबल हो सकती हैं, जब यह एक वासना कमजोर और पराजित हो जाए, और वे इसके साथ ही दूर (बिखर, फैल — *संपादक)* हो जाती हैं / शुरुआत से ही व्यक्ति को अपनी पूरी ताकत से इसके खिलाफ खुद को लैस करना चाहिए, और यह और भी जरूरी है क्योंकि अक्सर इसके प्रति बहुत नफरत होती है, जो विरोध करने की ताकत देती है। और इस एक को पहले वश में किए बिना कोई भी व्यक्ति प्राथमिक जुनून को वश में नहीं कर सकता। तीसरे संबंध में, सदाचारी कर्म का क्रम स्वयंसिद्ध है। अर्थात्, पहले प्रबल वासना के विरुद्ध कार्य करना चाहिए, फिर मूल वासनाओं के विरुद्ध, और फिर, जब दोनों शांत हो जाएँ, तो सदाचारी कर्म शत्रु दल के अवशेषों को अपनी इच्छानुसार समाप्त करने के लिए स्वतंत्र हो जाता है, और वह भी एक आंतरिक मार्गदर्शन के अनुसार। जो भी जुनून पुनर्जीवित होता है और महसूस होता है, कर्मों को उसी जुनून के विरुद्ध निर्देशित किया जाना चाहिए। ये संघर्ष के उद्देश्य हैं, और इन्हें एक प्रसिद्ध सिद्धांत के अनुसार आगे बढ़ाया जाना चाहिए। इसके अलावा, जबकि निर्धारित क्रम का पालन किया जाना चाहिए, प्रतिरोध का कार्य स्वयं मापा हुआ और स्थिर होना चाहिए, ताकि कोई विचलित व्यक्ति की तरह एक चीज़ से दूसरी चीज़ पर न भटक जाए। कोई सच्चा फल नहीं मिलेगा, बल्कि केवल व्यर्थता ही बोई जाएगी। कोई जितना दृढ़ निश्चय और अडिग होकर कार्य करता है, वह उतना ही अंत और शांति के करीब आता है। जिस कार्य को शुरू किया है, उसमें तब तक लगे रहना चाहिए जब तक फल न मिल जाए, क्योंकि अंत ही प्रयास को मुकम्मल करता है… और जो कुछ भी अनुभव कर्ता को सिखाता है, उस पर भी ध्यान देना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि चीजें इस प्रकार आगे बढ़ती हैं: मोड़ के तुरंत बाद वासनाओं के खिलाफ एक सक्रिय संघर्ष आता है; उससे या उसके साथ ही एक तत्काल आंतरिक संघर्ष भी उत्पन्न होता है; फिर, बाद में, वे परस्पर एक-दूसरे को सुदृढ़ और मजबूत करते हैं: जैसे आंतरिक बढ़ता है, वैसे बाहरी भी बढ़ता है; जैसे बाहरी बढ़ता है, वैसे आंतरिक भी बढ़ता है; अंत में, जब दोनों पर्याप्त रूप से मजबूत हो जाते हैं, तो किसी व्यक्ति के मन में कामों और कृत्यों के विचार उत्पन्न होते हैं जिनका उद्देश्य वासनाओं का निर्णायक उन्मूलन करना, उन्हें जड़ से ही खत्म करना होता है। किसी को न तो स्वयं महान काम और कृत्य करने चाहिए, और न ही

दूसरों को ऐसा करने की सलाह देनी चाहिए। किसी को धीरे-धीरे, कदम-दर-कदम बढ़ते और मजबूत होते हुए कार्य करना चाहिए, ताकि उसमें जोश और ताकत आ सके। अन्यथा, हमारे कार्य एक पुराने वस्त्र पर नए पैबंद की तरह होंगे। कार्य करने का आह्वान भीतर से ही उत्पन्न होना चाहिए, ठीक वैसे ही जैसे कभी-कभी एक मरीज सहज प्रवृत्ति और अंतर्ज्ञान से एक निर्णायक रूप से ठीक करने वाले उपचार की ओर निर्देशित होता है।

11. अपने ही वासनाओं के विरुद्ध मानसिक और सक्रिय संघर्ष अपने आप में शक्तिशाली है, लेकिन जब इसे कोई और मार्गदर्शन करता है तो यह प्रयास अतुलनीय रूप से अधिक तेजी से, फलदायी और प्रभावी ढंग से आगे बढ़ता है। अकेले, कोई भी हमेशा मन की लड़ाई में दुश्मन को पहचान नहीं पाता, न ही कोई हमेशा उसके खिलाफ कार्रवाई करने और ऐसा करते हुए उत्साह और दृढ़ संकल्प बनाए रखने में सक्षम होता है; और, सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि, दोनों ही मामलों में, कोई भी पूरे संघर्ष को चलाने के लिए एक ही योजना या एक पूर्व-निर्धारित रूपरेखा नहीं रख सकता। इसे अकेले हासिल करना पूरी तरह से असंभव है। यह आवश्यक है कि कोई हमारे वर्तमान और हमारे भविष्य दोनों को बाहर से देखे। इसलिए, किसी आध्यात्मिक मार्गदर्शक के हाथों में स्वयं को सौंपना आत्म-सुधार के सर्वोत्तम और सबसे निर्णायक साधन के रूप में माना जाना चाहिए। वह हम पर और हमारे भीतर एक ही विधि का उपयोग करेंगे—सक्रिय, मानसिक संघर्ष—लेकिन, सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वह अपने स्वयं के निर्णय, योजना, और लक्ष्य, मार्ग, और चौराहे की स्पष्ट समझ के अनुसार ऐसा करेंगे। तो, तुम जो शुद्धि की इच्छा रखते हो और उसकी खोज में हो, प्रभु से एक पितृवत् मार्गदर्शक की खोज करो और उससे विनती करो; उसे पाकर, अपने बारे में वह सब कुछ बताओ जो तुम जानते हो और जो तुम अपने भीतर देखते हो। फिर स्वयं को पूरी तरह से, अंतर्मन और बाह्य रूप से, उसके हवाले कर दो—स्वयं को बिना तराशी हुई सामग्री की तरह समर्पित कर दो, ताकि वह उससे प्रभु के लिए एक घर, एक नया मनुष्य बना सके। ऐसा करने के बाद, अपने लिए हर चिंता को त्याग दें और निश्चिंत होकर पिता की छत्रछाया में शरण लें। उसे जहाँ और जैसे भी वह चाहे, आपको ले जाने दें; उसे आपसे जो कुछ भी, जब भी और जहाँ भी वह चाहे, करवाने दें। हमारी ओर से, हमें उसे बिना सवाल के आज्ञाकारिता देनी है—बिना सोचे-समझे, भरोसेमंद, इच्छुक—और अपना विवेक उसके सामने पूरी तरह से खोलना है, यानि अपने विचारों, इच्छाओं, जुनून, कर्मों और शब्दों का प्रकटीकरण करना है—जो कुछ भी हम करते हैं और जो कुछ भी हमारे साथ होता है। यह उसे यह देखने में सक्षम बनाता है कि हम कहाँ खड़े हैं और हमारी आंतरिक स्थिति क्या है, और इस आधार पर हमें सलाह देने और कार्य सौंपने के लिए उसे कारण प्रदान करता है। हमारे विचारों का प्रकटीकरण और हमारे पिता के प्रति आज्ञाकारिता, जुनून के निर्णायक विनाशक (कुचल्ने वाले — *एड.*) और राक्षसों के विजेता हैं। हर बार जब कोई रहस्योद्घाटन होता है और उस अवसर पर जो सौंपा गया है उसे बाद में पूरा किया जाता है, तो यह किसी घाव को साफ़ करने और पट्टी बदलने जैसा है। यह एक तात्कालिक चिकित्सा उपचार है! जो व्यक्ति अपना मन खोलता है, वह सब अशुद्धता को बाहर निकालता है और, आज्ञाकारिता के माध्यम से, शुद्धता प्राप्त करता है: नए प्रावधान, उपचारात्मक पोषण, शुद्ध रस—ठीक वैसे ही जैसे कोई उल्टी लाने की दवा लेकर फिर अच्छा भोजन लेता है। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उनके भीतर वासनाओं की जड़ ही कट जाती है, अर्थात्: आत्मा, **'मैं'**। जो स्वयं के विरुद्ध युद्ध का नेतृत्व करता है, **वह स्वयं ही** इसे लड़ता है, और इस प्रकार, जबकि ईसाई धर्म ( ) 'स्व' के विरुद्ध कार्य करता है, वह एक तरह से इसे पोषित भी करता है। हालाँकि, एक मार्गदर्शक के मार्गदर्शन में, हमारा **'अहं'** पहले ही क्षण से निर्णायक रूप से उनकी इच्छा में विलीन हो जाता है; और इसके साथ ही, सभी वासनाएँ अपना आधार खो देती हैं और बाद में अव्यवस्थित रूप से, भ्रम में उत्पन्न होती और कार्य करती हैं; फिर भी यहाँ भी, उनकी सारी चालाकी को निष्कपटता से मात दी जाती है और उसे अप्रभावी बना दिया जाता है। सामान्य रूप से, यह वासनाओं को वश में करने और शीघ्रता से पवित्रता प्राप्त करने का एक शक्तिशाली साधन है। संतों के सभी अनुभव इसी दिशा में इशारा करते हैं; और इसके अनगिनत उदाहरण हैं… यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि, धर्म-परिवर्तन के समय, जितनी जल्दी एक आध्यात्मिक गुरु पाया और चुना जाए, उतना ही बेहतर है। उत्साह जीवंत होता है और किसी भी चीज़ के लिए तैयार रहता है, और एक बुद्धिमान मार्गदर्शक इसके साथ क्या कुछ नहीं कर सकता, खासकर तब जब स्व-इच्छा—जो हठ, अविश्वास, विरोध और सुधारने की प्रवृत्ति पैदा करती है—ने अभी तक जड़ जमाने का समय नहीं पाया हो… जो इन गुणों से पीड़ित है, उसे एक नेता चुनने के बाद, एक अच्छे, शिक्षित होने योग्य पुत्र के रूप में अपनी जगह लेने के लिए, पहले इनसे मुक्त होना चाहिए। यह एक दुर्भाग्य की बात है जब आत्मा अपनी ही समझ और इच्छा के अनुसार सब कुछ करने की आदी हो जाती है।

12. अंत में, हमारे पूरे अस्तित्व का परम परिष्कार—एक अग्नि में उसकी शुद्धि के समान—प्रभु स्वयं द्वारा पूरा किया जाता है। विशेष रूप से: बाहर से—दुःखों के माध्यम से; भीतर से—आँसुओं के माध्यम से। यह नहीं कहा जा सकता कि ये केवल अंत में प्रकट होते हैं, और पहले मौजूद नहीं थे। नहीं, वे बिल्कुल शुरुआत से, आरंभ से ही शुरू होते हैं, और विभिन्न परेशानियों और दिल टूटने के रूप में व्यक्ति के साथ चलते हैं; और कोई व्यक्ति जितना अधिक परिपक्व होता है, वे उतने ही

तीव्र हो जाते हैं। लेकिन यह इस तरह है कि प्रभु उन्हें हम में डालते हैं, हमारे अपने भले के लिए बाहरी और आंतरिक घटनाओं के सामान्य क्रम की अनुमति देते हुए और, एक तरह से, उसे आशीर्वाद देते हुए। हालांकि, अंत के करीब, वह जानबूझकर उन्हें व्यवस्थित (सुधारते हैं — संपादक) करते हैं, आँसू प्रदान करते हैं, और दुःख लाते हैं — या तो एक साथ, या एक के बाद एक, कभी-कभी पहले एक, फिर दूसरा, और यहाँ तक कि एक व्यक्ति में एक प्रकार का, और दूसरे में दूसरे प्रकार का। दुःख आग हैं; आँसू पानी हैं। यह **पानी** और **आग से** बपतिस्मा है। सेंट आइज़ैक द सीरियन इसे क्रूस पर उठाए जाने, या बाहरी मनुष्य के अंतिम क्रूस पर चढ़ाए जाने के रूप में चित्रित करते हैं। यह क्षण, जैसा कि कहा जाता है, सबसे अधिक प्रलोभनपूर्ण होता है, जो उस अनुभव के समान है जो अब्राहम को तब हुआ था जब उन्होंने अपने पुत्र को बलिदान के रूप में अर्पित किया था: मन में अंधकार, हृदय में निराशाजनक पीड़ा, ऊपर से क्रोध की आशंका, और नीचे प्रतीक्षा करती हुई नरक; एक व्यक्ति खुद को विनष्ट होते हुए, एक खाई के ऊपर लटकते हुए देखता है। यहाँ से, कुछ विजयी होकर निकलते हैं, जबकि अन्य गिर जाते हैं और वापस मुड़ जाते हैं, केवल इस पहाड़ पर फिर से चढ़ने के लिए। जो इस चरण से गुज़र चुके हैं, स्वर्ग में आरोहण कर चुके हैं, वे अब सांसारिक नहीं बल्कि स्वर्गीय हैं; उन्हें दिव्य आत्मा द्वारा ऊपर उठाया जाता है और उसी द्वारा ले जाया जाता है, जैसे यहेज़केल की दृष्टि में पहिये। ईश्वर उनके भीतर कार्यरत है। उनकी अवस्था मन की पहुँच से परे है। यह केवल अनुभव के माध्यम से जानी जाती है; इसीलिए जो इससे गुज़र चुके हैं वे इसके बारे में नहीं बोलते; ऐसा करने से कोई लाभ नहीं होगा, और यह हानिकारक भी हो सकता है।

अंत में ऐसा ही होता है। उस समय तक, अन्य तरीकों के साथ-साथ, निरंतर दुःख और विपत्ति—जो ईश्वर द्वारा व्यवस्थित होती है—और पश्चाताप की भावना, जो ईश्वर द्वारा प्रदान की जाती है, को शुद्धिकरण के सबसे शक्तिशाली साधन के रूप में अनुभव करना चाहिए। अपनी शक्ति में, यह एक आध्यात्मिक मार्गदर्शक के बराबर है, और ऐसे मार्गदर्शक की अनुपस्थिति में, यह एक विनम्र विश्वासी के लिए पर्याप्त रूप से उसकी जगह ले सकता है—और वास्तव में लेता भी है। क्योंकि ऐसे मामले में, स्वयं ईश्वर ही मार्गदर्शक हैं, और वह निस्संदेह मनुष्य से अधिक बुद्धिमान हैं। सेंट आइज़ैक द सीरियन विस्तार से वर्णन करते हैं कि प्रभु जिस धीरे-धीरे तरीके से शुद्ध हो रहे व्यक्ति को और भी गहरे शुद्ध करने वाले दुःखों में ले जाते हैं और कैसे वह उसके भीतर पश्चाताप की भावना को प्रज्वलित करते हैं। हमसे केवल उतनी ही अपेक्षा है कि हम उनकी दिव्य व्यवस्था में विश्वास रखें और जो कुछ भी वह भेजते हैं, उसे स्वेच्छा से, आनंदपूर्वक और कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करें। इसके अभाव में दुःखद घटनाएँ अपनी शुद्ध करने वाली शक्ति खो देती हैं, जिससे वह हमारे हृदय और अंतरतम तक नहीं पहुँच पाती। यह बात दुःखों पर भी लागू होती है। जहाँ तक पश्चाताप की बात है, इसमें आत्म-निरीक्षण और इस जागरूकता के माध्यम से अपने पापों और अपनी आध्यात्मिक गड़बड़ी की सावधानीपूर्वक जाँच शामिल है कि हमारे भीतर क्या हो रहा है, जिसके बाद बार-बार पाप-स्वीकार किया जाता है, और साथ में सच्ची पश्चाताप और गहरा दुःख होता है। बाहरी दुःखों के बिना, किसी व्यक्ति के लिए अहंकार और घमंड का विरोध करना मुश्किल है; और पश्चाताप के आँसुओं के बिना, कोई फरीसी आत्म-धर्मपरायणता की आंतरिक स्वार्थपरता से खुद को कैसे मुक्त कर सकता है? (संत इसाक द सीरियन के लेखों में, बाहरी दुःखों, आँसुओं और पश्चाताप की सर्वत्र प्रशंसा की गई है)। प्रेरित, पहले गुण के अभाव वाले किसी भी व्यक्ति को व्यभिचारी मानते हैं। चूँकि ये हमारी शक्ति में नहीं बल्कि ईश्वर के हाथ में हैं, और हम अपनी ताकत पर अविश्वास और इस बात की अनभिज्ञता के कारण कि क्या हम उन्हें सहन कर सकते हैं, इनके लिए माँगने में संकोच कर सकते हैं, फिर भी हमें कम से कम बाद वाले को किसी भी तरह से नज़रअंदाज़ नहीं करना चाहिए। दूसरा गुण काफी हद तक हमारे अपने हाथ में है, और इसके लिए प्रार्थना करने पर कोई रोक नहीं है। इसलिए, हर संभव साधन और अपनी सारी बुद्धिमानी का उपयोग करके, पश्चाताप में परमेश्वर के सामने स्वयं को नम्र करने का यथासंभव प्रयास करें, उनके सामने गिर पड़ें और दया की भीख माँगें। आपके इस प्रयास को देखकर, वह आपको अटूट पश्चाताप और, यदि आवश्यक हो, तो प्रचुर आँसू प्रदान करेंगे, जिनसे आपकी आत्मा का मुख अंततः पूरी तरह से धुलकर शुद्ध हो जाएगा। समृद्धि से आत्मविश्वास और घमंड नहीं, बल्कि इस भय की भावना उत्पन्न होनी चाहिए कि प्रभु ने शायद आपको पहले ही अनावश्यक समझकर अलग कर दिया है, और इसलिए हृदय से पश्चाताप के लिए परम उत्साह पैदा होना चाहिए, जो हमेशा परमेश्वर को भाता है। वास्तव में, कोई यह कह सकता है कि जब आप दुःख का कोई बाहरी संकेत नहीं दिखाते हैं, तब भी आपको आंतरिक रूप से शोक मनाना चाहिए, क्योंकि ईश्वर, मानो, आपको इसके लिए बुलाते हैं। इसके विपरीत, जो लोग बाहरी रूप से शोक करते हैं, उन्हें प्रभु स्वयं सांत्वनाएँ भेजते हैं—अनमोल आनंद के क्षण जो मनुष्य को उसके दुःखों को भूलने और उसके घावों को भरने के लिए प्रेरित करते हैं, जिससे शोक करना असंभव हो जाता है। इसके साथ आँसू आ सकते हैं या नहीं भी आ सकते हैं: पूरा मामला अपने स्वयं के अपवित्रता पर परमेश्वर के सामने शोक करने में निहित है।

ये सभी वे तरीके हैं जिनसे हमारे भीतर की वासनाएँ समाप्त होती हैं—चाहे वह हमारी अपनी बौद्धिक कोशिश से हो, आध्यात्मिक नेताओं के मार्गदर्शन से हो, या स्वयं प्रभु के द्वारा हो। यह पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि आंतरिक मानसिक

संघर्ष के बिना, बाहरी संघर्ष सफल नहीं हो सकता; यही बात मार्गदर्शन के तहत संघर्ष, और साथ ही दैवीय शुद्धि के लिए भी कही जानी चाहिए। परिणामस्वरूप, आंतरिक संघर्ष निरंतर और अडिग होना चाहिए। अपने आप में, यह इतना शक्तिशाली नहीं है, लेकिन जब यह अनुपस्थित होता है, तो बाकी सभी अप्रभावी और बेकार हो जाते हैं। जो कर्म करते हैं और जो पीड़ित होते हैं, जो रोते हैं और जो आज्ञा का पालन करते हैं, वे सभी आंतरिक संघर्ष या मन की सतर्कता की कमी के कारण नष्ट हो गए हैं और नष्ट होते जा रहे हैं। यदि हम सकारात्मक आंतरिक क्रिया के बारे में पहले कही गई बात को भी याद करें—अर्थात्, कि यह सकारात्मक बाहरी क्रिया का उद्देश्य और शक्ति का स्रोत है—तो आंतरिक क्रिया का पूर्ण महत्व अपनी पूरी शक्ति के साथ प्रकट हो जाएगा, और यह सभी के लिए स्पष्ट हो जाएगा कि यह सभी तपस्या का स्रोत, आधार और लक्ष्य है। हमारी सभी गतिविधियों को निम्नलिखित सूत्र में संक्षेपित किया जा सकता है: अपने भीतर आध्यात्मिक चेतना और जीवन-शक्ति को जगाते हुए आत्म-संग्रह करें, और इस मानसिकता में, एक आध्यात्मिक निर्देशक या दैवीय व्यवस्था के मार्गदर्शन में निर्धारित बाहरी कर्म-पथ का अनुसरण करें; लेकिन साथ ही, कड़ी और तीव्र एकाग्रता के साथ, अपने भीतर उत्पन्न होने वाली हर चीज़ का अवलोकन और निगरानी करें। जैसे ही कोई भावुक विद्रोह उत्पन्न होता है, उसे मानसिक और सक्रिय रूप से दूर भगा दें और कुचल दें, साथ ही अपने भीतर अपने पापों के लिए पश्चातापी और दुखी भावना को पोषित करना न भूलें।

सभी संन्यासियों का ध्यान यहीं केंद्रित होना चाहिए, ताकि प्रयास करते समय, वह विचलित न हो और, मानो, अपने विचारों के कमरबंद से बँधा या घिरा हुआ हो। इस तरह के आंतरिक निवास और रक्षा के साथ चलना ही संयम से चलना है, और इस पर शिक्षा ही संयम की शिक्षा है। अब यह स्पष्ट हो गया है कि सभी तपस्वियों ने संयम के गुण को तपस्या के गुणों में सबसे प्रमुख क्यों माना और जिनमें यह गुण नहीं था, उन्हें निष्फल क्यों माना। इसीलिए इसे विशेष रूप से रेखांकित किया जाना चाहिए। इस पर पहले ही चर्चा हो चुकी है, लेकिन वह तो महज शुरुआत थी। वहाँ इस पर इसलिए चर्चा की गई थी ताकि यह दिखाया जा सके कि संयम और आत्म-अनुशासन का अभ्यास पूरी तरह से भीतर से ही उत्पन्न होना चाहिए, या, और भी बेहतर, कि किसी को इसे पहले अपने भीतर स्थिर होकर ही अपनाना चाहिए। अब हम अपनी उन्नति के लिए उसी प्रारंभिक बिंदु को चुनें, क्योंकि लक्ष्य वहीं है, जबकि बाहरी चीज़ केवल एक साधन है। अर्थात्, हमें प्रयास करने वाले आत्मा की ईश्वर की ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति, उनके समीप शीघ्र पहुँचने की शर्तें, और उस व्यक्ति की अवस्था को प्रदर्शित करना चाहिए जो समीप है—या, बल्कि, समीप आने में सक्षम है—क्योंकि समीप आना स्वयं ईश्वर की ओर से होता है।

ईश्वर के साथ जीवंत संचार की ओर प्रथम कदम

आत्मिक रूप से स्वयं को स्थापित करने के बाद, वह अपने उत्साह की सारी शक्ति अशुद्धियों और वासनाओं से स्वयं को शुद्ध करने, अपनी शक्तियों को मुक्त करने और उन्हें ईश्वर-प्रसन्न कार्यों में सशक्त बनाने के कार्य की ओर निर्देशित करता है। यह कार्य उसका सारा ध्यान, सारे प्रयास और सारा समय अवशोषित कर लेता है। जैसे ही वे इस प्रयास के आदी हो जाते हैं और साथ ही, अपने आंतरिक स्वरूप में व्यवस्था और संगठन लाते हैं, वे स्वाभाविक रूप से अधिक से अधिक अपने भीतर की ओर मुड़ते हैं, स्वयं को भीतर संकेंद्रित करते हैं, और अपने भीतर एक स्थायी उपस्थिति की नींव रखते हैं। यही प्रारंभिक आध्यात्मिक संघर्ष का उद्देश्य है: स्वयं में प्रवेश करना। ठीक उसी समय जब कोई व्यक्ति अपने भीतर खुद को स्थापित करना शुरू करता है, तो मुख्य लक्ष्य—जिसे उन्हें खोजना चाहिए और जो पहले, मानो, कई कार्यों के पीछे छिपा हुआ था—धीरे-धीरे उनके सामने प्रकट होता है। लेकिन यह स्वाभाविक ही है कि जैसे ही कोई व्यक्ति वासनाओं के क्षेत्र से दूर जाता है, तो वह हमारी आत्मा की मुख्य आकांक्षा और प्रवृत्ति का आमना-सामना करता है, जिसके क्षेत्र का विस्तार करने के लिए ही यह संपूर्ण प्रयास किया जाता है। यह लक्ष्य और आकांक्षा परम शुभ के रूप में ईश्वर की ओर झुकाव है। यह केवल तभी संभव है जब कोई व्यक्ति ईश्वर में जीवन की मिठास का अनुभव करे या यह चख ले कि ईश्वर कितना अच्छा है; इसलिए, यह अचानक नहीं होता। शुरुआत में, व्यक्ति पर भय हावी रहता है: वे कर्तव्य के कारण, उस दायित्व की भावना से दास की तरह सेवा करते हैं जिसे उन्होंने जागने के क्षण में पहचाना था। फिर भय शांत हो जाता है और, पूरी तरह से गायब हुए बिना, यह प्रभु के लिए परिश्रम करने की मिठास, और उसमें आनंद की भावना को रास्ता देता है। इसका प्रकटीकरण ईश्वर की ओर आत्मा का पहला स्पंदन है, अपने प्रकाशमान उद्देश्य का दर्शन है। एक बार जब यह प्रवृत्ति प्रकट हो जाती है, तो यह उसी क्रम में अपने आप बढ़ने लगती है जिसमें यह उत्पन्न हुई थी। हालाँकि, किसी को केवल निष्क्रिय रहकर इसके लिए इंतजार नहीं करना चाहिए; नहीं, इस प्रवृत्ति के सबसे तेज़ी से प्रकट होने में सहायता के लिए किसी को एक निश्चित तरीके से कार्य करना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए, पहले की तरह, प्राथमिक ध्यान आंतरिक, सकारात्मक कार्यों पर होता है; फिर भी, इस तरह से किए गए सभी

बाहरी कर्म—जब तक कि उन्हें आंतरिक मार्ग से भटकने के बिना किया जाता है—इस प्रवृत्ति की सहायता करने, उसे पोषित करने और मजबूत करने में सक्षम होते हैं, साथ ही ईश्वर में सभी आशाएँ रखने और सभी को ईश्वर की महिमा की ओर निर्देशित करने में भी सक्षम होते हैं। इस सभी प्रकार के कार्यों के पीछे यही भावना होनी चाहिए; अन्यथा, वे निष्फल रहेंगे और, सबसे बढ़कर, कोई व्यक्ति उन पर पड़े बोझ को इस भीतर से उत्पन्न हुई शक्ति के बिना सहन नहीं कर सकता। इस प्रकार, उपरोक्त प्रयास ईश्वर की ओर आकर्षण को बढ़ावा दे सकते हैं, लेकिन इन्हें एक विशेष आंतरिक प्रवृत्ति द्वारा इस उद्देश्य की ओर निर्देशित किया जाना चाहिए, जिसे इन्हें करते समय बनाए रखना चाहिए।

ईश्वर की ओर मन की उन्नति, या उनकी ओर झुकाव, तब बनता है जब किसी की आंतरिक गतिविधियाँ मजबूत होती हैं। यह उनमें एक बीज की तरह जड़ जमाता है और मिट्टी पर जिस प्रकार फलता-फूलता है, उसी प्रकार उन पर परिपक्व होता है। इसलिए, ईश्वर की ओर झुकाव को अधिक तेजी से जगाने के लिए इस आंतरिक जीवन को पोषित करते समय, किसी को चाहिए:

1. मन को ईश्वर के समक्ष चलने का प्रशिक्षण दें। एक व्यक्ति को ईश्वर को निरंतर देखने का प्रयास करना चाहिए, मानो वह उनके दाहिने हाथ में हों, और इस बोध तक पहुँचने का प्रयास करना चाहिए कि वे ईश्वर द्वारा देखे जा रहे हैं। इसकी आदत डालना ईश्वर का द्वार है, मन के लिए स्वर्ग का खुलना है।

२. सब कुछ परमेश्वर की महिमा के लिए करना, और सभी चीजों में—चाहे वे बाहरी हों या आंतरिक—मन में इस महिमा के अलावा और कुछ न रखना: यह किसी के भी कार्यों का मापदंड होना चाहिए और उन पर अपनी छाप छोड़नी चाहिए।

3. ईश्वर की इच्छा के बोध में सब कुछ करो, उसी इच्छा में चलो, हर बात में उसकी आज्ञा का पालन करो, और उससे पूर्णतः समर्पित हो जाओ। ईश्वर की इच्छा के अनुसार कार्य करना उस सब को समाहित करता है जो एक व्यक्ति से आता है, जबकि उससे समर्पण उस सब को समाहित करता है जो एक व्यक्ति के साथ होता है। आप जो कुछ भी करें, उसमें यह पहचानने का प्रयास करें कि ईश्वर आपसे उस कर्म में क्या चाहता है; जो कुछ भी आपके पास आता है, उसे प्रभु के हाथ से आया हुआ स्वीकार करें। एक व्यक्ति, एक वस्तु, एक घटना, सुख, दुःख—सबको आनंद से स्वीकार करें; किसी भी विपत्ति के बावजूद, स्वेच्छा से, शांतिपूर्वक और आनंद के साथ सब कुछ आत्मसमर्पण करें।

इन आध्यात्मिक साधनों के माध्यम से, मन परमेश्वर की ओर अधिक से अधिक प्रबुद्ध होगा और परमेश्वर के दर्शन में स्थापित होगा—यह परमेश्वर के अनंत पूर्णताओं के साथ उनके दर्शन में निवास करने का आदी हो जाएगा। यह दृष्टि अधिकांशतः ईश्वर के समक्ष प्रार्थनापूर्वक खड़े रहने के दौरान प्रदान की जाती है और इसी प्रार्थनापूर्वक खड़े रहने से परिपक्व होती है। यह ईश्वर के साथ जीवंत मिलन की ओर आरोहण की शुरुआत है।

ईश्वर के दर्शन के साथ-साथ, आत्मा में ईश्वर की भक्तिपूर्ण उपासना उत्पन्न होती है और पूर्ण होती है, जब, ईश्वर से हृदय की गहराई से पुकारते हुए, कोई एक प्राणी के रूप में आत्म-नम्रता से उनके सामने गिर पड़ता है—न कि एक दर्दनाक लेकिन इस जागरूकता के साथ कि उसे स्वीकार किया गया है, उससे प्रेम किया गया है और उस पर दया की गई है।

परिणामस्वरूप, ईश्वर के प्रति एक अदम्य आंतरिक लालसा और आनंद की अनुभूति उत्पन्न होगी।

ईश्वर की ओर प्रयत्न करना ही लक्ष्य है। लेकिन शुरुआत में यह केवल एक इरादा, एक इच्छा के रूप में ही मौजूद होता है। इसे एक प्राकृतिक आकर्षण की तरह वास्तविक और जीवंत बनाना चाहिए—मधुर, स्वेच्छापूर्ण और अप्रतिरोध्य। केवल इस प्रकार का आकर्षण ही यह दर्शाता है कि हम अपनी सही जगह पर हैं, कि ईश्वर हमें स्वीकार कर रहे हैं, कि हम उनकी ओर बढ़ रहे हैं। जब लोहा चुंबक की ओर खिंचता है, तो इसका मतलब है कि उस पर एक चुंबकीय शक्ति काम कर रही है; आध्यात्मिक अर्थ में भी यही लागू होता है: तभी यह स्पष्ट होता है कि ईश्वर हमसे जुड़ रहे हैं, जब यह जीवंत आकांक्षा होती है—जब आत्मा, बाकी सब कुछ दरकिनार करते हुए, ईश्वर की ओर दौड़ती है, मोहित हो जाती है। शुरुआत में ऐसा नहीं होता—एक उत्साही व्यक्ति पूरी तरह से खुद पर केंद्रित होता है, भले ही यह ईश्वर के लिए ही क्यों न हो; फिर भी ईश्वर पर यह मनन केवल बौद्धिक होता है। प्रभु ने उन्हें अभी तक स्वयं का स्वाद नहीं चखाया है, और न ही वह व्यक्ति इसके काबिल होता है, क्योंकि वे अशुद्ध हैं। वे की सेवा करते हैं

ईश्वर, यूँ कहें, सच्ची आनंद के बिना। फिर, जैसे-जैसे हृदय शुद्ध और सुधारित होता है, वह ईश्वर-प्रसन्न जीवन की मिठास को महसूस करने लगता है, और उसमें प्रेम और उत्सुकता के साथ चलता है—यह उसका आनंद का स्रोत बन जाता है। आत्मा हर चीज़ से, जैसे ठंड से, अलग होने लगती है, और ईश्वर की ओर आकर्षित होती है, जो उसे गर्माहट देता है। इस

आकर्षण की शुरुआत आत्मा में होती है, जो दिव्य अनुग्रह के लिए तरसती है। उसकी प्रेरणाओं और मार्गदर्शन के माध्यम से, यह निर्धारित क्रम के भीतर परिपक्व होती है, जिससे यह आत्मा की इस प्रक्रिया की स्वयं जागरूकता के बिना भी पोषित होती है। इस जन्म के लक्षण हैं: ईश्वर के सामने स्वेच्छा से, शांत और सहज रूप से आंतरिक रूप से स्थित रहना, जिसके साथ श्रद्धा, भय, आनंद और इसी तरह की भावनाएँ जुड़ी होती हैं। पहले, आत्मा खुद को आंतरिक स्व में जबरदस्ती लाती थी, लेकिन अब यह खुद को स्थापित करती है और स्थायी रूप से वहीं रहती है। यह परमेश्वर के साथ अकेले होने में, दूसरों से दूर रहने में, या किसी भी बाहरी चीज़ पर ध्यान न देने में आनंद पाता है। यह अपने भीतर परमेश्वर का राज्य पाता है, जो *पवित्र आत्मा में शांति और आनंद* है (रोमियों 14:17)। भीतर की ऐसी गहराई, या परमेश्वर में डूबना, को मानसिक मौन या परमेश्वर में आनंद-स्थिति कहा जाता है। यह क्षणिक हो सकता है, लेकिन इसे स्थायी बनाना चाहिए, क्योंकि लक्ष्य इसी में निहित है। जब हमारी आत्मा वास्तव में परमेश्वर में होती है, तो परमेश्वर हमारे भीतर होते हैं, क्योंकि यह कोई मानसिक मिलन नहीं है, बल्कि बाकी सब से अलग, परमेश्वर में एक जीवंत, मौन डुबकी है। जिस प्रकार सूर्य की एक किरण ओस की बूंद को उठा ले जाती है, उसी प्रकार प्रभु स्पर्श करके आत्मा को उठा लेते हैं। *'और आत्मा मुझे उठा ले गई,'* भविष्यवक्ता कहते हैं (यहे. 3:12)। कई संत निरंतर परमेश्वर के सामने समाधि में रहते थे, जबकि अन्य पर आत्मा अस्थायी रूप से, फिर भी अक्सर, आविष्कार होती थी। इस प्रकार, जो लोग परमेश्वर की सच्ची, ईमानदारी और लगन से खोज करते हैं, उनमें दिव्य अनुग्रह के द्वारा परमेश्वर में इस प्रकार का आकर्षण, या प्रवेश, शुरू होता है, परिपक्व होता है और स्वयं को पूर्ण करता है।

इसके लिए एक आवश्यक शर्त हृदय का शुद्धिकरण है, ताकि हम उस ईश्वर को ग्रहण कर सकें जो हमें अपनी ओर खींचता है: *'शुद्ध हृदय वाले परमेश्वर को देखेंगे* (मत्ती 5:8)। अतः, अब तक वर्णित सभी तपश्चर्या, अभ्यास और कर्म इस तैयारी के लिए आवश्यक और अनिवार्य हैं। हालाँकि, इन्हें सभी को उचित तरीके से, और विशेष रूप से इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। यहाँ मुख्य बात हृदय की रक्षा करना है: उत्साही आत्मा का भंडार भीतर ही निहित है; आध्यात्मिक प्रयासों, अभ्यासों और कर्मों की वैधता की शर्त यह है कि वे भीतर से ही उत्पन्न हों; संघर्ष में सफलता केवल भीतर से ही मिलती है; ईश्वर के प्रति लालसा जगाने का सबसे अच्छा तरीका भी भीतर से ही है। परिणामस्वरूप, आंतरिक कार्य एक आध्यात्मिक, सच्चे ईसाई जीवन का केंद्रीय स्रोत है। इसी कारण, पवित्र पिता इसे पूर्णता के एकमात्र और अकेले मार्ग के रूप में मानते हैं। *'संयमी और चौकस रहो; पहरा देते रहो और प्रार्थना करो,'* प्रभु कहते हैं (1 पतरस 5:8; मरकुस 14:38)। संयम, या हृदय की रक्षा करना, मुख्य प्रयास है। पवित्र पिताओं के लिए, सब कुछ इसी की ओर निर्देशित है: सब कुछ हृदय में है, क्योंकि जो हृदय में है वही कर्म में प्रकट होता है।

ईश्वर की ओर आरोहण में निर्णायक कदम, ईश्वर के साथ मिलन की वास्तविक दहलीज़, स्वयं को उस पर पूर्ण रूप से समर्पित कर देना है, जिसके बाद वही कार्य करता है, न कि मनुष्य। सारी शक्ति कहाँ निहित है, या हम क्या खोज रहे हैं? ईश्वर के साथ एकता—अर्थात् ईश्वर का हमारे भीतर वास करना और हमारे भीतर चलना आरंभ करना, मानो हमारे आत्मा का वस्त्र धारण करके, अपने मन, इच्छा और अनुभूति से हमारा संचालन करना, ताकि *हमारी इच्छा और हमारा कर्म दोनों ही* उसका कार्य हों, ताकि वह ही सभी चीजों में कार्य करने वाला हो, और हम उनके उपकरण बन सकें, या उनके माध्यम से कार्य करने वाले, अपने विचारों, इच्छाओं, भावनाओं, शब्दों और कर्मों में। यही वह है जिसकी सर्व-नियंता प्रभु, सभी का शासक, खोज करते हैं, क्योंकि वही अकेले सभी चीजें प्राणियों में, प्राणियों के माध्यम से करते हैं। जिस आत्मा ने स्वयं को समझ लिया है, उसे भी यही खोजना चाहिए।

हमारे भीतर ईश्वर के इस वास और उनके शासन, या उनकी सर्वशक्तिमानता की स्वीकृति के लिए, शर्त अपने ही स्वतन्त्रता का त्याग है। एक स्वतंत्र प्राणी, अपनी प्रकृति और परिभाषा के अनुसार, अपनी मर्जी से काम करता है, लेकिन ऐसा नहीं होना चाहिए। ईश्वर के राज्य में, किसी को भी अपनी मर्जी से कार्य नहीं करना चाहिए, बल्कि ईश्वर को ही सभी चीजों में कार्य करना चाहिए; और यह तब तक संभव नहीं होगा जब तक स्वतंत्रता अपने अधिकार पर बनी रहेगी—क्योंकि यह ईश्वर की शक्ति को नकारती और अस्वीकार करती है। और केवल तभी ईश्वर की शक्ति के प्रति यह हठीला प्रतिरोध समाप्त होगा, जब हमारी स्वतंत्रता—या हमारी स्वतंत्र और स्वैच्छिक गतिविधि—उसके सामने नतमस्तक हो जाएगी, जब किसी व्यक्ति के भीतर एक दृढ़ विनती उच्चारित होती है: 'हे प्रभु, आप मुझमें अपनी इच्छा के अनुसार करें, क्योंकि मैं अंधा और कमजोर दोनों हूँ।'

ठीक इसी क्षण ईश्वर की शक्ति मानव आत्मा में प्रवेश करती है और अपना सर्व-व्यापी कार्य शुरू करती है। इस प्रकार, हमारे भीतर ईश्वर के वास की शर्त स्वयं को उस पर दृढ़ता से समर्पित करना है।

ईश्वर के प्रति आत्मसमर्पण हमारी आत्मा का सबसे भीतरी, सबसे गुप्त कार्य है, जो सभी चीजों की तरह क्षणिक है, फिर भी एक क्षण में प्राप्त नहीं होता, बल्कि धीरे-धीरे परिपक्व होता है, चाहे वह एक लंबे या छोटे समय में हो, यह उस ईसाई

की कुशलता और विवेक पर निर्भर करता है जो इसे अपनाता है। इसकी शुरुआत धर्म-परिवर्तन के पहले कार्य में निहित है, क्योंकि वहाँ पश्चातापी, एक व्रत लेते हुए, अनिवार्य रूप से कहता है: 'मैं बुराई से दूर रहूँगा और भलाई करूँगा; हे प्रभु, केवल आप ही अपनी अनुग्रहकारी सहायता से मुझे न छोड़ें।' इस मनोभाव के साथ, वह तपस्या के मार्ग पर प्रवेश करता है और ईश्वर की सहायता प्राप्त करने की आशा में उस पर उत्साहपूर्वक कार्य करता है। लेकिन यह स्पष्ट है कि यहाँ उसका उत्साह मार्गदर्शन करता है, जबकि ईश्वर की क्रिया उसके पीछे-पीछे चलती है। यह नवागंतुक के स्वभाव और ईश्वर की योजना दोनों के कारण आवश्यक है। नवागंतुक प्रभु के लिए परिश्रम करना चाहता है, उनकी सेवा करना चाहता है—और इसलिए वह परिश्रम करता है। यह उसमें आत्मविश्वास की भावना और, यूं कहें तो, ईश्वर को देखने की हिम्मत पैदा करता है। लेकिन यह स्पष्ट है कि इसे जैसा है वैसा ही नहीं रहने दिया जा सकता। यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपने स्व-इच्छित उत्साह को एक तरफ रखकर, ईश्वर के मार्गदर्शन का अनुसरण करे। परिणामस्वरूप, एक व्यक्ति को अपनी प्रारंभिक मानसिक स्थिति में नहीं रहना चाहिए, बल्कि, उसी उत्साह को कम किए बिना, स्वयं को ईश्वर के अधीन कर देना चाहिए, स्वयं को उनके मार्गदर्शन में रखना चाहिए, और उनकी प्रेरणाओं और मार्गदर्शन का अनुसरण करना सीखना चाहिए। इसका निहितार्थ तब बताया गया है जब पतरस से कहा जाता है: *'जब तू जवान था, तब तू अपनी इच्छा से घेरकर जहाँ चाहता था वहाँ जाता था; परन्तु जब तू वृद्ध होगा, तब अपना हाथ फैलाएगा, और कोई तुझे घेरकर उस जगह ले जाएगा जहाँ तू जाना नहीं चाहता* (यूहन्ना 21:18)। शुरू में, एक व्यक्ति अपनी इच्छा से उत्साही होता है, और फिर कहता है: 'प्रभु, तू ही घटनाओं के क्रम को जानता है; मेरी मुक्ति का प्रबंध कर। 'मैं जहाँ भी आप मुझे ले जाएँ, मैं बँधा हुआ ही चलूँगा।' यह ईश्वर के प्रति दृढ़ भक्ति का वास्तविक कार्य है। पहली प्रकार की गतिविधि इतनी प्रशंसनीय और सुंदर है—उसका जो फल होता है! इसीलिए यह किसी को हमेशा के लिए अपने में बाँध सकती है। लेकिन इससे सावधान रहना चाहिए, क्योंकि यह उजाड़ भूमि पर परिश्रम करने जैसा होगा: बहुत रेत और पत्थर, लेकिन कोई जीवन शक्ति नहीं। एक को इससे मुँह मोड़कर ईश्वर के प्रति भक्ति की ओर बढ़ने का प्रयास करना चाहिए। यह सच है कि एक अर्थ में यह पहले प्रयास को जारी रखते हुए अपने आप बढ़ सकता है; फिर भी, एक को इस विकास पर नज़र रखनी चाहिए और इसे बढ़ावा देना चाहिए, या, इससे भी बेहतर, जो बन रहा है और साकार हो रहा है उसे स्वीकार करना चाहिए। वास्तव में, तब भी, ' '—यह ईश्वर ही है जो कार्य करता है, क्योंकि उसके बिना हम कुछ भी नहीं हैं; फिर भी मनुष्य कहता है: 'मैंने चुना, मैंने चाहा, मैंने परिश्रम किया, और ईश्वर ने मदद की।' इच्छा और चुनाव, और परिश्रम, सभी अच्छे कर्म हैं और, परिणामस्वरूप, ईश्वर के हैं; लेकिन मनुष्य, अपनी कठिनाइयों और प्रयासों के बीच, कल्पना करता है कि उसकी अपनी शक्ति वहीं निहित है। इसलिए, उत्साह से ईश्वर के प्रति उत्साही भक्ति तक का आंतरिक संक्रमण, हमारे भीतर ईश्वर की क्रिया का हमारे चेतन मन में प्रकटीकरण और प्रकट होना ही है, या कहें तो हमारे मोक्ष और शुद्धिकरण की प्रक्रिया में। उत्साही व्यक्ति को यह बात हर प्रयास के बावजूद बार-बार असफलताओं के माध्यम से, बिना किसी विशेष प्रयास के प्राप्त हुई अप्रत्याशित और बड़ी सफलताओं के माध्यम से, और गलतियों और गिरावटों के माध्यम से—विशेष रूप से उन गलतियों के माध्यम से जो एक सबक के रूप में काम करती हैं—अनुभव कराने के लिए कहा जाता है, मानो वे अनुग्रह से विचलन हों। ये सभी एक व्यक्ति को इस बोध और विश्वास की ओर ले जाते हैं कि वह कुछ भी नहीं है, जबकि सब कुछ ईश्वर और उनकी सर्वशक्तिमान कृपा है। ईश्वर के प्रति भक्ति के लिए तैयारी की प्रक्रिया का यह अंतिम चरण है। यह तभी संभव है जब कोई व्यक्ति यह महसूस करने लगता है कि वह कुछ भी नहीं है। अपनी ओर से, एक व्यक्ति निम्नलिखित कर सकता है: जैसे-जैसे घटनाएँ और परिस्थितियाँ सामने आती हैं, उनका परीक्षण करना, ताकि उनमें ईश्वर की शक्ति को महसूस किया जा सके; दृढ़ विश्वास के साथ, औचित्य की शर्तों में गहराई तक उतरना, जब तक कि *वे*पुकार न *उठें*: *'इन परीक्षणों के द्वारा ही, मेरा उद्धार करो';* शत्रुओं की अनगिनत भीड़ का दृश्य, मार्ग का अस्पष्ट हो जाना, आँखों के सामने अंधकार, अनगिनत चौराहे, ईश्वर की आज्ञाओं की अपार गहराई। ये मानसिक तैयारियाँ सक्रिय कर्मों से विशेष शक्ति प्राप्त करती हैं, अर्थात्: अपनी संपूर्ण संपत्ति का वितरण, सार्वभौमिक तिरस्कार के लिए स्वयं को समर्पित करना (एक पवित्र मूर्ख के वेश में), एकांतवास, और एक तपस्वी का जीवन। ये जीवन के ऐसे मोड़ होते हैं कि इनके बाद ईश्वर के सिवा और कहीं मुड़ने की जगह नहीं बचती। ऐसे सभी लोग स्वयं को सीधे ईश्वर के हाथों में सौंप देते हैं और वह उन्हें स्वीकार कर लेते हैं। इस संबंध में, एक आध्यात्मिक गुरु की मदद अनमोल होती है, यदि वह, जिसे मार्गदर्शन दिया जा रहा है, उसकी नज़रों से ओझल रहकर, उसे ऐसी परिस्थितियों में डाल दे जिससे केवल ईश्वर की अदृश्य सहायता ही उसे बचा सकती है। प्राचीन संतों ने कहा है: नवोदितों को मुकुट प्रदान किया जाना चाहिए। अपनी तुच्छता की यह भावना और ईश्वर के प्रति समर्पण, अनवरत दुःखों और विशेष रूप से ईश्वर द्वारा भेजे गए असाधारण दुःखों से सबसे अच्छी तरह से विकसित होती है, जिनका उल्लेख हमने ऊपर किया है।

जो व्यक्ति स्वयं को ईश्वर के हवाले कर देता है, या जिसे इस उपहार के लिए योग्य माना गया है, वह ईश्वर द्वारा प्रेरित होने लगता है और उसी में निवास करने लगता है। स्वतंत्रता नष्ट नहीं होती, बल्कि बनी रहती है, क्योंकि आत्म-समर्पण कोई

अंतिम, निर्णायक कार्य नहीं है, बल्कि यह एक ऐसा कार्य है जो अनवरत रूप से दोहराया जाता है। एक व्यक्ति स्वयं को ईश्वर के समक्ष प्रस्तुत करता है, और ईश्वर उसे अपना लेते हैं और उसके भीतर, या उसकी शक्तियों के माध्यम से कार्य करते हैं। यहीं में हमारी आत्मा का सच्चा, दिव्य जीवन निहित है। जो स्वयं को ईश्वर के हाथों में सौंपता है, वह ईश्वर से प्राप्त करता है और जो कुछ वह प्राप्त करता है, उसके माध्यम से कार्य करता है। यह एक जीवंत मिलन है, ईश्वर में जीवन, और अपनी संपूर्ण सत्ता के साथ उसमें प्रतिष्ठित होना: विचार, हृदय और इच्छा में। यह आत्मसमर्पण के माध्यम से होता है। लेकिन जैसे-जैसे आत्म-समर्पण धीरे-धीरे बढ़ता है, और वास्तव में उस पहले कार्य की प्रक्रिया में ही, वैसे ही ईश्वर की इस स्वीकृति और उसमें स्थिर रहने को भी ऊँचा उठाया जाना चाहिए। वास्तव में ऐसा ही होता है; यह स्वयं को ऊँचा उठाता है। फिर भी, हमारी ओर से भी, इसमें सहायता करने या इसकी परिपक्वता को तेज करने के लिए कुछ होना चाहिए। ईश्वर के साथ संवाद का क्षेत्र, वह क्षेत्र जिसमें यह बनता और कार्य करता है, बुद्धिमत्तापूर्ण आध्यात्मिक प्रार्थना है... जो प्रार्थना करता है, वह ईश्वर में निवास करता है और इसलिए ईश्वर का उसमें भी निवास करने के लिए पूरी तरह से तैयार और सक्षम होता है। लेकिन यह प्रार्थना केवल विनती नहीं है; यह एक विशेष आध्यात्मिक कृत्य है, जो मार्गदर्शित होने से कहीं अधिक, मार्गदर्शित होने वाले और मार्गदर्शन करने वाले दोनों के लिए अनायास परिपक्व होता है। इसमें, कहा जा सकता है, तपस्या के नियमों की अंतिम सीमा निहित है (देखें सिमियन द थियोलोजियन)। क्योंकि जब यह प्रार्थना स्थापित और पुष्टि हो जाती है, तो ईश्वर हमारी आत्मा के साथ एक हो जाता है। और नियम केवल इसकी शुरुआत से संबंधित हैं; लेकिन जब यह परिपूर्ण हो जाती है तो इसके भीतर जो घटित होता है वह छिपा रहता है, बादल के पीछे मूसा की तरह अदृश्य हो जाता है।

ईश्वर के साथ जीवंत संयोग मौन की उस अवस्था में होता है जो निर्लिप्तता की ओर ले जाती है

जिसमें ये अनैच्छिक आंतरिक हलचलें और ईश्वर की ओर यह आनंदमय उत्साह उत्पन्न होने लगे हों, और विशेषकर जिसमें ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण और अनवरत प्रार्थना प्रभावी होने लगी हों, वह मौन में प्रवेश करने के लिए तैयार और सक्षम है। केवल ऐसा व्यक्ति ही इस कठिन कार्य को सहन करने और इसे सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए पर्याप्त मजबूत होता है। ऐसे व्यक्ति को सामुदायिक आवास में और दूसरों की संगति में रखना असंभव है।

आर्सेनियस महान को लोगों से दूर किस चीज़ ने खींचा? यह ईश्वर की ओर यह आंतरिक आकर्षण ही था। वह कहते थे, "मैं तुमसे प्यार करता हूँ, लेकिन मैं ईश्वर और लोगों, दोनों के साथ नहीं रह सकता।" जॉन क्लाइमैकस कहते हैं, "सच्चा मौन-पुरुष, ईश्वर की मिठास से वंचित न होने की इच्छा से, सभी लोगों से दूर हो जाता है—उनके प्रति कोई द्वेष रखे बिना—ठीक उसी लगन से जैसे अन्य लोग उनके करीब आते हैं।"

आइए *द लैडर* के 27वें वचन से मौन की अवधारणा पर प्रासंगिक अंश का हवाला दें:

"एक बाहरी मौन होता है, जब कोई, सभी से अलग होकर, अकेला रहता है; और एक आंतरिक मौन होता है, जब कोई आत्मा में ईश्वर के साथ अकेला रहता है, प्रयास से नहीं बल्कि स्वतंत्र रूप से, ठीक वैसे ही जैसे छाती स्वतंत्र रूप से सांस लेती है और आँख देखती है। वे साथ-साथ चलते हैं, लेकिन पहला मौन दूसरे के बिना मौजूद नहीं रह सकता। इसलिए, सच्चा मौन-धारी वही है , जो एक अदेह प्राणी होते हुए भी, अपनी आत्मा को अपने देह रूपी निवास की सीमाओं के भीतर रखने का प्रयास करता है। मौन-धारी की कोठरी उसके शरीर को घेरे, और यह शरीर अपने भीतर मन के मंदिर को समेटे रहे।"

जो व्यक्ति अभी तक ईश्वर की मिठास का स्वाद नहीं चखा है, उसे मौन आकर्षित नहीं करेगा; और न ही जो व्यक्ति अभी तक अपने वासनाओं पर काबू नहीं पा सका है, वह इस मिठास का स्वाद चख पाएगा। आध्यात्मिक वासना से ग्रस्त और मौन प्राप्त करने का प्रयास करने वाला व्यक्ति उस व्यक्ति के समान है जो जहाज से खाई में कूद गया हो और यह सोचता हो कि वह एक लट्ठे पर सुरक्षित रूप से किनारे तक पहुँच सकता है।

जो लोग चिड़चिड़ापन और अहंकार, पाखंड और प्रतिशोधी प्रवृत्ति के शिकार हैं, वे कभी भी मौन की एक झलक देखने की हिम्मत न करें, अन्यथा वे मानसिक विक्षिप्तता में पड़ जाएँगे।

जो ईश्वर की मिठास का स्वाद चख चुका है, वह मौन के लिए प्रयासरत रहता है, ताकि वह बिना किसी बाधा के उससे असीम रूप से तृप्त हो सके, और अपने भीतर निरंतर आग में आग, उत्साह में उत्साह, और इच्छा में इच्छा प्रज्वलित कर सके। इसलिए, 'मौन व्यक्ति एक स्वर्गदूत की सांसारिक छवि है; लालसा के पांडुलिपि पर, परिश्रम की लिखावट में, उसने अपनी प्रार्थना को आलस्य और लापरवाही से मुक्त किया है... मौन व्यक्ति वह है जो आध्यात्मिक उत्साह के साथ पुकारता है: "*हे ईश्वर, मेरा हृदय तैयार है!* (भजन संहिता 56:8)। मौन व्यक्ति वह है जो कहता है: *'मैं सोता हूँ, पर मेरा हृदय जागृत है* (प्रेम गीत 5:2)।"

इस प्रकार, मौन व्यक्ति का एकमात्र कार्य एकमात्र प्रभु के साथ रहना है, जिनसे वह आमने-सामने वार्तालाप करता

है, ठीक वैसे ही जैसे राजा के प्रियजन उसके कान में बात करते हैं। हृदय का यह कार्य एक अन्य कार्य—विचारों की शांति को बनाए रखना—द्वारा संरक्षित और सुरक्षित रखा जाता है। विचारों का सुव्यवस्थित होना और दिव्य के अजेय विचार ही मौन और उससे भी अधिक, निश्चिन्तता का सार हैं। ऊँचे पर बैठकर पहरा दो—काश तुम जान पाते कि कैसे—और तब तुम देखोगे कि कैसे, कब, कहाँ से, कितने, और किस प्रकार के चोर दाख की बेलों के गुच्छों को चुराने के लिए घुसना चाहते हैं। जब यह पहरेदार थक जाता है, तो वह उठकर प्रार्थना करता है, और फिर बैठ जाता है और नई हिम्मत के साथ अपना पहला काम फिर से करने लगता है।

जो धन्य मौन से प्रेम करते हैं, वे आध्यात्मिक शक्तियों के कार्य को अपनाते हैं और उनके जीवन-पथ का अनुकरण करते हैं। वे सृष्टिकर्ता की स्तुति करके कभी भी, अनंत काल तक संतुष्ट नहीं होंगे; इसी प्रकार, जो मौन के स्वर्ग में आरोहण कर चुका है, वह भी सृष्टिकर्ता की स्तुति करके कभी संतुष्ट नहीं होगा।

लेकिन आलस्य से रहित प्रार्थना और एक शांत मन की रक्षा, दोनों ही तब तक प्राप्त नहीं की जा सकतीं जब तक कि पहले हृदय में पूर्ण निश्चिंतता स्थापित न हो जाए। अंतिम चरण को प्राप्त किए बिना कोई भी पहले दो चरणों में समझदारी से आगे नहीं बढ़ सकता, ठीक उसी तरह जैसे वर्णमाला सीखे बिना कोई पढ़ नहीं सकता। 'एक बाल आँख को परेशान करता है, और थोड़ी सी चिंता मौन को नष्ट कर देती है।' जो कोई भी ईश्वर को एक शुद्ध मन अर्पित करना चाहता है, फिर भी चिंताओं से अपना ध्यान भटकाता है, वह ऐसे है जैसे कोई व्यक्ति अपने पैरों को मजबूती से बाँधकर भी तेजी से चलने का प्रयास कर रहा हो। इसलिए, सच्ची मौनता ईश्वर के प्रति आत्मसमर्पण करने और हमारे प्रति उनकी देखभाल में दिल की गहरी आस्था रखने से शुरू होती है।

केवल वे ही मौन के सच्चे पुरुष हैं, जिन्होंने ईश्वर के प्रेम में आनंदित होने, इस प्रेम की अपनी प्यास बुझाने और इसकी मिठास से आकर्षित होकर मौन के साथ स्वयं को एक किया है। ऐसे लोग, यदि वे विवेक के साथ मौन का अभ्यास करते हैं, तो जल्द ही इसके फलों का स्वाद चखने लगते हैं, जो हैं: एक निर्विघ्न मन, शुद्ध विचार, प्रभु में आनंद, अतृप्त प्रार्थना, अटूट सतर्कता, निरंतर आँसू, और इसी तरह।

इस प्रकार, ईश्वर के सामने उस मधुर उपस्थिति के लिए एक आंतरिक तड़प ही मनुष्य को मौन की ओर खींचती है; इसका मार्ग सभी आध्यात्मिक संघर्षों के माध्यम से वासनाओं से शुद्धि द्वारा प्रशस्त होता है, जिनके द्वारा हमारे भीतर अच्छाई को बल मिलता है और बुराई का क्षय होता है; इसकी तत्काल दहलीज निश्चिंत विश्वास में ईश्वर के प्रति आत्मसमर्पण है; इसका सार हृदय में मन के साथ ईश्वर के समक्ष एक अटूट, प्रार्थनामय स्थिति है, जिससे अग्नि पर अग्नि प्रज्वलित होती है।

ईश्वर के स्पर्श से आत्मा का दहन अंततः एक व्यक्ति को शुद्ध करता है और उन्हें निर्विकारी अवस्था में उठाता है। इस अग्नि में, हमारी प्रकृति एक भट्टी में अपरिष्कृत धातु की तरह पुनः पिघल जाती है, और स्वर्गीय पवित्रता से दैदीप्यमान होकर उभरती है, जो इसे ईश्वर के लिए तैयार एक निवास स्थान बनाती है।

इस प्रकार, ईश्वर के साथ जीवंत मिलन के पथ पर, एक अपरिहार्य मौन है—यदि संन्यासी जीवन के परिचित रूप में हमेशा नहीं, तो हमेशा एक ऐसी अवस्था के रूप में जिसमें आत्मा, दिव्य आत्मा की अग्नि से एकत्रित और गहरी हुई, सेराफिक पवित्रता और ईश्वर के लिए तथा ईश्वर में जलने की अवस्था तक उठाई जाती है।

यह आग परिवर्तन के क्षण में पकड़ बनाती है और जैसे ही कोई व्यक्ति अपने व्रत के अनुसार परिश्रम शुरू करता है, यह काम करना शुरू कर देती है; लेकिन यह एक प्रारंभिक गर्माहट है, जो कभी आती है, तो कभी पीछे हट जाती है। यह हृदय को शुद्ध करने के पूरे परिश्रम के दौरान काम करती रहती है; अन्यथा, कोई व्यक्ति इन परिश्रमों को सहन नहीं कर सकता। फिर भी, उस समय यह अपनी पूरी शक्ति प्रकट नहीं कर सकती, क्योंकि व्यक्ति के भीतर अभी भी मौजूद वासनाओं की ठंडक के कारण। यह अपनी पूरी शक्ति केवल तभी प्रकट करती है जब वासनाएँ शांत हो जाती हैं। पहली गर्माहट गीली लकड़ी के जलने जैसी है, जबकि दूसरी उसी लकड़ी के जलने जैसी है जब आग उसे सुखाकर उसके सार में समा जाती है। एक अन्य तुलना करने के लिए, पहली गर्माहट उस पानी की तरह है जिसमें बर्फ का एक टुकड़ा हो जो अभी तक पिघला नहीं है: गर्माहट तो है, लेकिन पानी उबलता नहीं है और बर्फ पिघलने तक उबलेगा भी नहीं। हालाँकि, एक बार बर्फ पिघल जाने के बाद, गर्माहट, पानी के पूरे द्रव्यमान में व्याप्त होकर, उसे और अधिक तीव्रता से गर्म करती है; परिणामस्वरूप, पानी उबलकर शुद्ध हो जाता है। दूसरे प्रकार की गर्मी भी ऐसी ही है। आग के व्यवहार के अंतिम दो उदाहरण ईसाई पूर्णता के अंतिम चरणों में आध्यात्मिक दहन के कामकाज को दर्शाते हैं, जो पूर्ण शुद्धता और निर्लिप्तता की ओर ले जाता है।

"वासनाओं का सार, दिव्य अग्नि द्वारा भस्म हो कर, जला-भुना जाता है; और जैसे-जैसे यह सार मिटता है और आत्मा शुद्ध होती है, वैसे-वैसे वासनाएँ भी दूर हो जाती हैं।"

यहाँ *लैडर* के शब्द 29 में बताई गई निर्लिप्तता का अर्थ है: 'निर्लिप्तता शरीर के पुनरुत्थान से पहले आत्मा का

पुनरुत्थान है।'

आत्मा के पुनरुत्थान को पुराने स्वभाव से प्रस्थान के रूप में समझना चाहिए, अर्थात् जब नया मनुष्य अस्तित्व में आता है, जिसमें पुराने मनुष्य का कुछ भी नहीं होता, जैसा कि कहा गया है: *'मैं तुम्हें एक नया हृदय दूँगा, और मैं तुम्हारे भीतर एक नई आत्मा रखूँगा* (यहेजकेल 36:26) (देखें इसाक द सीरियन)।

प्रभु में सिद्ध हुए लोगों का यह पूर्ण और फिर भी निरंतर बढ़ने वाला परिपूर्णत्व मन को इतनी पवित्रता प्रदान करता है और उसे भौतिक दुनिया से इतना ऊपर उठाता है कि वह अक्सर शरीर में जीवन से परमानंद में स्वर्ग की ओर ले जाया जाता है, ताकि वह दिव्य दर्शन को देख सके।

प्रेरित ने उदासीनता का प्रदर्शन तब किया जब उन्होंने लिखा: *'हमारे पास मसीह का मन है* (1 कुरिन्थियों 2:16)। उस सीरियाई तपस्वी ने भी उदासीनता का प्रदर्शन किया, जिसने पुकारा: 'तेरी कृपा की लहरें मुझ पर बरसें!' (संत एफ्रेम)। वासनाओं को जगाने और पोषित करने वाली सभी वस्तुओं के प्रति उदासीन होकर, वह इतना असंवेदनशील हो गया है कि उन वस्तुओं का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, भले ही वे उसकी आँखों के सामने ही क्यों न हों। ऐसा इसलिए है क्योंकि वह पूरी तरह से ईश्वर के साथ एक हो गया है। वह एक वेश्यालय में प्रवेश करता है—और न केवल उसमें वासना की कोई हलचल होती है, बल्कि वह वेश्या को भी एक पवित्र और तपस्वी जीवन की ओर ले जाता है।

जो कोई भी इस अवस्था के योग्य समझा जाता है, वह यहाँ रहते हुए, नश्वर देह में लिपटे हुए, जीवित परमेश्वर का मंदिर बन जाता है, जो उसे उसके सभी वचनों, कर्मों और विचारों में मार्गदर्शन और शिक्षा देता है; और वह, आंतरिक प्रबोधन के बल पर, प्रभु की इच्छा को पहचान लेता है, मानो किसी आवाज़ को सुन रहा हो, और, सभी मानवीय शिक्षाओं से परे होकर, कहता है: *'मैं कब आऊँगा और परमेश्वर के साक्षात दर्शन करूँगा?*' (भजन संहिता 41:3), क्योंकि मैं अब अपनी इच्छाओं के कार्यों को सहन नहीं कर सकता, परन्तु मैं उस अमर भलाई की खोज करता हूँ जो तूने मुझ पर भ्रष्टता में गिरने से पहले प्रदान की थी। परन्तु इतना कहने की क्या आवश्यकता! निष्काम *व्यक्ति अपनी इच्छा से नहीं जीता, बल्कि मसीह उसमें जीवित रहते हैं*(गलातियों 2:20), जैसा कि कहा गया है: *'मैंने उत्तम संग्राम किया है, मैंने दौड़ पूरी कर ली है, मैंने विश्वास रख लिया है* (2 तीमुथियुस 4:7)।

वैराग्य दिव्य राजा का स्वर्गीय महल है। और इस प्रकार, अंततः, ईश्वर के साथ संचार और ईश्वर के साथ एकता—मानव आत्मा की खोज का परम लक्ष्य—जब ईश्वर उसमें है, और वह ईश्वर में है। अंत में, प्रभु की प्रसन्न इच्छा और उनकी प्रार्थना पूरी होती है, कि जैसे वह पिता में है और पिता उसमें हैं, वैसे ही हर विश्वासी भी उनके साथ एक हो जाए (यूहन्ना 17:21)। उनकी सांत्वना देने वाली यह गारंटी पूरी हुई है: 'जो कोई भी उसकी आज्ञा का पालन करता है, पिता उसे प्रेम करेंगे, और हम उसके पास आएँगे और उसके साथ अपना निवास बनाएँगे' (यूहन्ना 14:23)। जो लोग वासनाओं के लिए मरे हैं, उनकी प्रेरितों की परिभाषा पूरी हो रही है, अर्थात् कि उनका जीवन मसीह के साथ परमेश्वर में छिपा है (देखें कुलुस्सियों 3:3)। ऐसे लोग परमेश्वर का मंदिर हैं (1 कुरिन्थियों 3:16), और परमेश्वर का आत्मा उनमें वास करता है (रोमियों 8:9)।
जो इस अवस्था को प्राप्त कर चुके हैं, वे ईश्वर के रहस्यवादी हैं, और उनकी अवस्था वही है जो प्रेरितों की थी, क्योंकि वे भी सभी चीजों में ईश्वर की इच्छा को पहचानते हैं, मानो कोई आवाज़ सुन रहे हों, और, अपने इंद्रियों को ईश्वर के साथ पूरी तरह से एक कर लेने के बाद, उन्हें स्वयं ईश्वर द्वारा गुप्त रूप से उनके वचन सिखाए जाते हैं। इस अवस्था की विशेषता प्रेम की ज्वाला है, जिसके द्वारा वे साहसपूर्वक घोषणा करते हैं: *'हमें कौन अलग कर सकता है?*' (रोमियों 8:35)। और प्रेम भविष्यवाणी का दाता, चमत्कारों का कारण, प्रबोधन का गहन सागर, दिव्य अग्नि का स्रोत है, जो जितना अधिक बहता है, उतनी ही अधिक वह उसकी प्यास को प्रज्वलित करता है जो इसकी लालसा करता है।

चूँकि यह अवस्था विवेक के साथ अभ्यास करने पर मौन का फल है, इसलिए जो लोग मौन का पालन करते हैं, उन्हें ईश्वर हमेशा के लिए मौन में नहीं छोड़ते। जो लोग मौन के माध्यम से निर्लिप्तता प्राप्त करते हैं और इस प्रकार ईश्वर के साथ सबसे सच्ची संगति और दिव्य निवास के योग्य बन जाते हैं, उन्हें वहाँ से मोक्ष की तलाश करने वालों की सेवा के लिए प्रेरित किया जाता है और वे उन्हें ज्ञान प्रदान करके, मार्गदर्शन करके और चमत्कार करके उनकी सेवा करते हैं। और महान एंथनी को, ठीक वैसे ही जैसे मरुभूमि में जॉन को, उनकी मौन में एक आवाज़ ने उनसे कहा, उन्हें मोक्ष के मार्ग पर दूसरों का मार्गदर्शन करने के श्रम के लिए बुलाते हुए—और उनके श्रम के फल सभी जानते हैं। यही कई अन्य लोगों के लिए भी सच था।

हम पृथ्वी पर इस प्रेरित पद से ऊँचा कोई अन्य पद नहीं जानते। यहीं पर, ईश्वर को प्रसन्न करने वाले जीवन के क्रम का हमारा सर्वेक्षण समाप्त होता है।